विराग-सेतु

(महाकाव्य खण्ड2)

अनुक्रमणिका

छव्वीस विरागो	:	221
सत्तावीस-विरागो	:	227
अट्ठावीस-विरागो	:	233
उणत्तीस-विरागो	:	241
तीस-विरागो	:	249
इकत्तीस-विरागो	:	257
बत्तीस-विरागो	:	266
तेत्तीस-विरागो	:	275
चोत्तीस-विरागो	:	282
पैंत्तीस-विरागो	:	290
छत्तीस-विरागो	:	297
सेंत्तीस-विरागो	:	304
अड़तीस-विरागो	:	310
उणचालीस-विरागो	:	315
चालीस-विरागो	:	320
इगतालीस-विरागो	:	324
बयालीस-विरागो	:	332
तैंयालीस-विरागो	:	338
चवालीस-विरागो	:	347
पेंतालीस-विरागो	:	355
छियालीस-विरागो	:	360
सेंतालीस-विरागो	:	367
अडतालीस-विरागो	:	376
उणचास-विरागो	:	385
परिशिष्ठ	:	390

छव्वीस विरागो

पणविवि उस उसहप्पहो उसहपगासहो विहुणिद-जालहो पुरूपुरिसु।
भविजण सुह-कारणु दुक्ख-णिवारणु, तुह विराग-पहि हि चारिउ।।1।।
सो दुक्खजयी वि दुक्खखयीं वि सो मोक्खपधो हि मोक्खपधी हि।
चंदप्पहपेहि चंछ छवी वि सेयंसु सिवी हि सेय धरी हि।। 2।।
चिट्ठे विरागउ-विरागउ मंतएज्जु आदिच्चु रागउ विरागउ तेउपुंजु।
दोसारी राग-रउ मोहरि-मेह-धंसु लालिच्चु दाणु सम-संति-पदाणु सूरू।। 3।।
गच्छेउ गच्छ-गण-गाम-गुणाणुदेउं छण्णेउ जाबलिउरे सम-सिंचहेउं।
जप्पादि-पिच्छिचरिउट्टण-धम्म-खेउं संगेलणं हवदि तत्थ ससंघ-साहू।। 4।।
सममेद-सागरे-मुणी समदप्पमाणो सम्मेदणं समिद-दाण-पमाण-हेदुं।
कप्पहुमो विसद-देसय-खुल्ल-मज्झे कार्टंगि-अंगि-विणओ विणएज्ज दाउं।। 5।।

मैं उसहप्रभु (वृषभप्रभु) को प्रणाम करके उत्तम मार्ग के प्रकाशक, तीनों लोकों के कर्म समूह के नाश करने वाले पुरु पुरुष को प्रणाम करता हूँ। वे भव्यजनों को सुख देने वाले और दु:ख के निवारण करने वाले हैं। उन्हीं के विराग पथ में चलने वाले का चरित्र विराग मार्ग की ओर ले जाएगा। 1।। वे उपसर्गजयी, तो संसार के अनेक दु:ख क्षयों में लीन हैं। वे मोक्ष पथ पर चलते हुए मोक्ष बुद्धि देते हैं अर्थात् कर्मों से मुक्त होने के लिए जन-जन के लिए सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र की बुद्धि देने वाले हैं। वे चन्द्रपथ के प्रेक्षी चन्द्र छवि देते हुए श्रेय रूपी अंसु को लेते है और श्रेयधारण के लिए शिवमार्ग पर चल रहे हैं।। 2।। वे विराग, विराग के मंत्र युक्त आदित्यराग/सूर्य की लालिमा युक्त तेजपुंज पर स्थित होना चाहते हैं तभी तो दोषों रूपी शत्रु जो, राग की रज, मोह के आरे और मेघों की कालिमा को नष्ट करने लालित्य का दान कर रहे हैं तथा वे सरी सूर/प्राज्ञावंत समभाव एवं शान्ति के लिए गमनागमन कर रहे हैं।।3।। वे नाना क्षेत्रों में विचरण करते हुए मानों प्रत्येक ग्राम गण अर्थात् गण्धर रचित गुणों से युक्त अर्हत्पदों के भाव युक्त पद दे रहे हों। वे 1996 में जबलपुर में एसी समत्व की वर्षा करते हैं, वर्षावास में। जहाँ अनेक जाप्यानुष्ठान, पिच्छि परिवर्तन आदि के कार्य धर्मवर्धन के लिए ही होते हैं। वहाँ ही संघ के अनेक साधुओं का मिलन भी होता है।।4।। मुनि सम्मेदसागर, समतासागर और प्रमाणसागर मानों समिति समूह के दान और प्रमाण-प्रत्यक्ष और परोक्ष मान को देने ही आए हो। 'विशदं प्रत्यक्षम्' विशद तो प्रत्यक्ष है इसलिए विशदसागर का मिलन तो कल्पद्रुम की तरह विशद्दान देने में समर्थ हुआ। कटंगी में क्षुल्लक विनयसागर में विशद् का अंगीभूत होकर विनायाचार का पाठ पढ़ाया।।5।।

बाबाजगे दु इगमेव पुरुत्तणाधो सो कुंडले सदद-कुंडल-कुडलेज्जा।
उत्तुंग-आसण-सु-अक्खि-विसाल-कायी पुव्वासगं पश्य-आसण-सड्ढ-सव्वे।। 6।।
जत्थेव णिण्णयमुणी विउलो वि विस्सो खुल्लो संक-गद-संक-सिकुंद-कुंदो।
साहू-विसुद्ध-सुधि-अज्जिग-अज्जिगाओ विज्जा-विधा-विधि-विभाविस-विंझ-विण्णा।। 7।।
कम्माण कूरगदि - सूल-सदा पदेंति एगा भग्गिण्ण-भगिणी पडदे वि कूवे।
बाबा विराग-कुसलो कुसलेदि लाए सोम्मो हि सम्म-सद-कुंडल-कुंडगेज्जा।। 8।।
सिद्धंत-मूल-सुद-सुत्त-सुअत्थ-भावं जाणत्थ-जाणग-विराग-सदा हि लीणो।
सज्झाय-अज्झयण-चिंतण-हेदुं णिच्चं आवट्टणं च परिपुच्छ-वायणादिं।। 9।।
खेत्तो इमो सयल-धण्ण-धराइ णंदं दाएज्ज जो किसग-खेत्त-जणाण जत्थ।
सत्ताणवें परमतच्च-समिक्खणत्थं सम्मेलणं विधि-विधाण-विसेस-भत्तिं।। 10।।
पट्ठाण-ठाण-गदिमाण-इमो दु संघो सज्जे-दमोह-पथरिज्ज-गणी-सुखेत्तं।
धण्णो हवेदि णयणागिरि-रम्म-भागो णीरंचलो सरवरो इग-मंदिरो त्थि।। 11।।

इस जगत् के बाबा, एक मात्र बाबा कुंडलपुर के बाबा पर्वत के शिखर पर स्थिर मानो अपने कुंड/जन समूह को कुंडल-स्वर्णमयी कुंडल से युक्त आभा को प्रदान कर रहे हैं। उत्तुंग आसन, उत्तम अक्षि एवं विशालकाय बाबा की पद्मासन मुद्रा सभी को श्रद्धा प्रदान करती है। जैसे मैं कायोत्सर्ग मुद्रा से युक्त खड़ा हूँ वैसे ही हे कुंडलगिरि के कुंड/आराधक, साधक चारों ओर के घेरे से युक्त स्वर्ण/विशुद्ध विराग कुंडल पर विचार करें।।6।। कुंडलपुर में मुनि निर्णयसागर, क्षु. विपुलसागर, क्षु. विश्वशील, क्षुल्लक विशंकसागर, क्षु. कुन्दकुन्दसागर, मुनि विशुद्धसागर आदि ज्ञान की प्राप्ति वाले तथा श्रुतज्ञान में निमग्न विद्याश्री, विधा श्री, विभाश्री, विशाश्री, विधिश्री, विन्ध्यश्री एवं विज्ञाश्री आदि आर्यिकाएँ बाबा की विद्यमान विद्याओं की विधा, श्रुत की विधि एवं विन्ध्याचल की आभा को ही लेना चाहती है।।7।। कर्मों की गति क्रूर होती है जो सौम्य एवं सम्यक् भाव युक्त एक विचलित दीदी कुंड/गहरे कूप में गिर जाती है, पर बाबा की कृपा और विराग की कुशल क्षमता उसे कुध/शल्य बनाने में समर्थ होती है सो ठीक है। कुंडल की परिधि में बाबा के कुंड भी व्यक्ति को कुशल बनाते हैं।।8।। वे विरागसागर विराग में लीन सिद्धान्त के मूल में प्रवेश करने के लिए श्रुत के सूत्र, मूल, सिद्धान्त के सम्यक् अर्थ की इच्छा युक्त स्वाध्याय को महत्त्व देते हैं। वे अध्ययन, चिंतन, आवर्तन, परिपृच्छन और वाचनादि को नित्य करते हैं।।9।। यह कुंडलपुर क्षेत्र सकल धाान्य धरा से युक्त उसी तरह आनंद को प्रदान करता है, जैसे कृषक जनों को धान्य से पूर्ण खेत। 1997 में इस क्षेत्र रूपी धरा पर सम्मेलन, विधि-विधान एवं विशेष भक्ति रूपी धान्य को रोपा गया।।10।। यह संघ नित्य गतिमान दमोह की ओर प्रस्थान कर जाता है जहाँ पर धर्मध्यान करते हैं, फिर आचार्य श्री कण-कण में विराजमान क्षेत्र पथरिया को धन्य करते हैं। नयनों को उन्नत एवं रम्य बनाने वाले नैनागिरी का वह रम्य भाग भी धन्य होता है जहाँ नीर से पूर्ण सरोवर हैं, उसमें एक जलमंदिर है।।11।।

पक्खालदे चरण-णिच्च-णदी वि णंदे वाणप्फदी-धुणिद-मत्थग-सव्व-काले।
बंहोरि सेदु-उदयो रणं विरागो पत्तेज्ज सावग-सिरिं विउलं पवित्तं।।12।।
पासाणजुत्त-करिसावग-सम्म-भागो जो अत्थि साहगढ-णाम-गुणेण साहो।
सीदम्हि सीदसुद-दाइ-पवाहणाए णाणामिदं परम-दाण-पहा-सुत्तं।।13।।
गच्छेदि एस सिरि-संघ-अणेग-गामं पत्तेदि सो करगुवं रमणिज्ज-भागं।
पुण्णादु जोग-कुमुदो गणि-णंद-णंदी सिद्धंत-सूरि-इलगो सुह-सागसे वि।।14।।
पुज्जो त्ति सम्मइगणी गणरम्म देसं दाएज्ज सूरि-सयलं गुण-अंकली यं।
पासो वि अज्जि-विजया तिणमुत्थ-पुव्वे आराहदे पण-पणं मुणि-पिच्छि-सव्वे।।15।।
सिद्धंत-सागर-णिमग्न-गणी वि साहू चत्तेंति णो पवयण घुवार-खेत्तं।
आसीस-पावण-मुणीस-विराग-मग्गे णेणा जणाण अणुपेरदि साहु-दिक्खं।।16।।
आयारिओ दु तवसी गणि सम्मदी सो आसीसजुत्त-सयला अणुपेरिदा ते।
बड्ढे वि टीगमगढे अणुसुत्तमाणा पुप्फस्स पुप्फ-जय-सागर-सद्द-उच्चे।।17।।

नैनागिरी की नदी उसका नित्य प्रक्षाल करती है। वहाँ की वनस्पतियाँ प्रति समय मस्तक झुकाती है। वहाँ से 17 कि.मी. दूर बम्हौरा ग्राम है, जहाँ के निवासी उदयचंद्र जैन ने विरागसेतु की रचना की। वहाँ के प्रत्येक श्रावक-श्राविका तो उनकी काव्यश्री को नहीं जानते हैं, फिर भी उनके प्रति अत्यधिक श्रद्धा रखते हैं।।12।। शीलकाल में शीत/सरल परिणामों को देने वाली श्रुत प्रभावना के लिए ज्ञानामृत रूपी परमदान सूत्र की वाचना हुई। जिससे शाहगढ़ के गुणों से पाषाण युक्त भाग श्रावक रूपी करि/हस्ति का सम्यक् भाग हो सका।।13।। आचार्य विराग सागर का यह श्री संघ अनेक ग्रामों को प्राप्त होता है। इसमें भी वह करगुवाँ के रमणीय का भी, जहाँ पुण्ययोग से आचार्य कुमुदनंदी, आचार्य सिद्धान्तसागर, ऐलाचार्य शुभसागर भी इस नंद/ज्ञान के आनंद में निमग्न कुमुद रूपी सिद्धान्त से आनंदित होते हैं।।14।। आचार्य सन्मतिसागर सभी के लिए पूज्य थे, इसलिए उनके विचारों को आधार बनाते, उनके आदेश का पालन करते। उनकी आज्ञा से छह आचार्यों का संघ आचार्य आदिसागर अकंलीकर का गुणानुवाद करते हैं। आचार्य पार्श्वसागर तो पार्श्वप्रभु की उपासना युक्त थे, आर्यिका विजयमति माताजी तथा 55 पिच्छि का संघ भी आराधना को महत्त्व देता है।।15।। वे सभी आचार्य सिद्धान्त रूपी सागर में निमग्न साधु सम्यक् क्रियाओं को नहीं छोड़ते हैं, वे घुवारा क्षेत्र को प्रवचन का लाभ पहुँचाते हैं। विरागमार्ग में निमग्न मुनिवरों एवं आचार्यों का आशीष सर्वत्र था, इससे अनेक लोगों को प्रेरणा मिलती हैं कुछ लोग साधु दीक्षा की ओर उन्मुख होते हैं।।16।। आचार्य सन्मतिसागर तो तपस्वी गणि थे, वे सन्मति युक्त ही सभी को आशीष देते हैं। वे मुनिजन उनके आशीष युक्त सूत्र ग्रन्थों की साधना करते हुए बड़ागाँव होते हुए टीकमगढ़ में प्रवेश कर गए। जहाँ पुष्प गुलाबचंद जी का पुष्प का पुष्प-पुत्र जयकुमार निशान्त आदि जय शब्द के उच्च भाव से स्वागत करते हैं।।17।।

अत्थे विराग-गरिमा तध मुक्खमंती सिंहो वि दिव्विजय-अज्ज-विधायगेहे।
सुस्सी उमा वि दरवारिसुविण्ण-सेट्ठी कल्लायगे वि विमलो विमलंजगत्थं।।18।।
जाणाण बाहण-गदीण पहो वि सुट्ठू हत्थीण जोग्ग-रह-सम्म-पहो वि सेट्ठो।
दो-मग्ग-तिण्णि-चदु-लंकिदइंद-पोरो णंदेति वंदणसिरी अहिवंदणत्थं।। 19।।
दिक्खेदि खुल्लग-विणीद-विसाल-णामं जाएज्ज आणुज-जयंत-अपुव्व-घोसे।
विम्मोचणं परम-आगम-जयंत-अपुव्व-घोसे गिम्हस्स वायण-पणं पण-सत्थ-सत्थं।।20।।
संघ अणेग-भगिणी अदि भत्ति भाऊ दीदी भग्गिण्ण-भइया-वइवेच्च-सीला।
रोगेहि पीडिद इणं गुण ओसहं च दाऊण संत-सम-रोग-जणा वि अत्थि।।21।।
लोए जणा परिभमंत-विचारसीला पुव्ववव्वदा ण धरएंति पलेंति णो ते।
के ई त्ति मादु-ममदा अणुरोहएंति भादू पिदु त्ति मणुजा मणखिण्ण भूदा।। 22।।
संसार-राग-परिवार-जणाण खेत्तो बाहुल्ल-दुक्कर-किदीण मदीइ कूरा
चिंतेंति ते ण हु मुणीण पदे ण लाहो खाएज्ज पिव्व-समयो समयं ण जाणे।।23।।
भिंडप्पदेस-बहुसस्स-सुणीर-पुण्णो पुण्णाण माणुज-मदीण-सुसड्ढमाणो।
भीदाजणा परिकहेंति वि चंबलो त्ति कूराण कूर-हिदएसु वपेंति धम्मं।। 24।।

जहाँ विराग की गरिमा थी, वहाँ मुख्यमंत्री दिग्विजयसिंह तो शासन की सिंहवृत्ति युक्त आज विधायक गोयल जी के साथ थे। सुश्री उमा भारती, डॉ. दरबारीलाल जी आदि अनेक विज्ञजन, श्रेष्ठीजन और पंचकल्याण के हितैषी पंडित विमल कुमार सौरया सर्वत्र विमल भावना हेतु यह कार्य करने में लीन थे।।18।। यानों, वाहनों की योग्य गति के लिए अच्छे मार्ग तैयार किए गए। गजरथ हेतु उत्तम मार्ग बनाया गया, दोराहे, तिराहे, चोराहे आदि इंद्रपुरी की तरह सजाए गए और लोगों के अभिनंदनार्थ वंदन-मालाएँ लगाई गई।।19।। दीक्षा भी होती है, क्षु. विनीतसागर और क्षु. विशालसागर नाम जन समूह के अपूर्व जयघोष के साथ दिया गया। डॉ. दरबारीलाल द्वारा 'आगम चक्खू साहू' ग्रन्थ का विमोचन किया गया और टीकमगढ़ में पाँचवी वाचना ग्रीष्म काल में सिद्धांत शास्त्र की हुई।।20।। संघ में अनेक बहनें जिन्हें दीदी कहते और भक्ति भाव युक्त भाईयों को भैया कहते हैं। इनके रोग पीड़ित होने पर उचित उपचार लोगों द्वारा कराया जाता है।।21।। कुछ लोग पहले धर्म की ओर अग्रसर होते, पश्चात् विचारों में भ्रम युक्त हो जाते हैं। कोई माता के ममत्व पर इस मार्ग से भटक जाते और कभी-कभी भाई-पिता एवं परिजनों के आक्रोश से धर्म मार्ग छोड़ देते हैं।।22।। यह संसार राग रूपी परिवार के लोगों का क्षेत्र है, इसमें है, बहुलता दुष्कर करने वालें की, मति से क्रूर व्यक्तियों की। वे मुनियों के पद यही चिंतन करते कि इससे कोई लाभ नहीं है। खाने-पीने का समय है, इसलिए वे 'समय' समत्व/समता को नहीं जानते हैं। समय/सिद्धान्त को नहीं समझते हैं। वे समय-आत्मा है, इस पर विचार नहीं करते हैं।।23।। भिण्ड प्रदेश शस्य एवं नीर पूर्ण क्षेत्र पुण्यात्माओं, बुद्धिमानों तथा श्रद्धवंतों की श्रद्धा का केन्द्र है, यहाँ चंबल है, चं+बल क्रूरों की क्रूरता का क्षेत्र है, फिर भी उनके हृदय में विरागसागर जैसे संत के बीज बोते हैं।।24।।

विज्जा-विसा-अवि-विधा उवसंघ-इच्छु एसो विसाल-मुणिसंघ-विचार-सीलो।
किं किज्जएज्ज समएज्ज समिज्ज-संघे संतो सम्मेज समयं अणुखील णेज्जा।।25।।
जाएज्ज जो वि इध चिंतमणे ण णेंति सोणागिरिस्स पडिपंत-गहीर-सोही।
णं सोण-तित्थ-सुद-तित्थ-सुसत्थ-लेही जाए विराग-कण-पत्थर-बल्लरी वि।।26।।
तित्थे अणेग-मुणि-णायण-पास-पासो चेत्तो वि खुल्लग-धरी मणुजा सदा हि।
णेदुं च सोण-सुरहिं च जलं च इच्छुं पारोप्परो वि मिलणो इध होहिदि हि।।27।।
आयारिओ दु विमलो इध तिण्णिय-चादुमासो जाएज पोम्मवदि-मंदिर-गुज्झठाणं।
भव्वादिभव्व-रमणिज्ज-मणुण्णहारी सव्वाण आगद-जणाण सुसड्ढ-यारी।।28।।
गामाणुगामचरमाण-मुणीस-संघो धम्माणुलाह-डबरं दयमाण वणेज्जा।
णंदे गवालियर-सिंचिय-गोव-सेलं साहिच्च-संगिअ-कलं बहुमुत्ति-खेत्तं।।29।।
गोवाचलस्स णिवड्डूगरसिंह-दिट्ठी आगास-तुल्ल-बहु-वावाग-सम्म-भत्ती।
साहा-विसाल-णिव-तोमर-वंस-वंसी वीरोद्धारो विकम-वीरम-गण्णदेवो।। 30।।

विद्याश्री विधाश्री, विशाश्री, आदि आर्यिकाएँ उपसंघ की इच्छा करती हैं, इस पर यह संघ विचारशील, क्या किया जाए, क्या समाधान है। संत शान्त, इसका समाधान खोजते हैं।।25।। इस संघ में इस पर विचार नहीं किया जाता, और मन में इस प्रकार का विचार नहीं लाया जाता। संघ विहार करता हुआ सोनागिरि के अंचल को प्राप्त हो जाता, जहाँ के प्रत्येक प्रान्त में आगम रूपी स्वर्णाक्षरों की पंक्तिबद्ध उच्च शिखर वाले सोधी/मंदिर मानो तीर्थ पर श्रुत रूपी उत्तम स्वर्ण और सिद्धान्त युक्त शास्त्र की ओर इंगित कर रहे हों और कह रहे हों कि हे विराग! इन पत्थरों के प्रत्येक भाग में तीर्थ है, वे उत्तम वर्ण/ज्ञानियों के ज्ञान से युक्त हैं और यहीं की बल्लरियाँ मानों निरन्तर विराग की सूचना दे रही है।।26।। इस तीर्थ पर अनेक मुनिजनों, आचार्य पार्श्वसागर का पार्श्व के सामीप्य मिलन होता है, क्षु. चैत्यसागर का भी। बहुत से दर्शनार्थी भी सोनागिरी के स्वर्ण और सोन नदी के जल की इच्छुरस लेने के लिए पार्श्व-पार्श्व करते हैं। फिर इस क्षेत्र पर आचार्य विरागसागर और आचार्य पार्श्वसागर का परस्पर में तो मिलन होगा ही।।27।। आचार्य विमलसागर जी के इस क्षेत्र पर तीन चातुर्मास हुए, उन्होंने यहाँ पद्मावती पोरवाल मंदिर और गुफा आदि को भव्य से भव्य बनवाया, वे स्थान अत्यंत मनोज्ञ एवं रमणीय हैं, जो आगतजनों के लिए सभी तरह की श्रद्धा उत्पन्न करते हैं।।28।। आचार्य संघ अनेक ग्रामों के पश्चात् डबरा को भी धर्मलाभ पहुँचता है, यही अंचल ग्वालियर गोपाचल और सिंधिया का स्मरण कराता है। ग्वालियर को साहित्य, संगीत, मूर्तिकला का विशाल क्षेत्र माना जाता है।।29।। राजा डूंगरसिंह की दृष्टि विशाल थी, वे गोपाचल शाखा के चतुर्थ राजा व्यापक दृष्टि, सभ्य भक्ति से पूर्ण तोमरवंश के वंशज की विशाल परम्परा के नायक थे, उसी वंश में वीरसिंह, उद्धरणदेव, विक्रमदेव, वीरमदेव, गणपतिदेव आदि राजा हुए।।30।।

गोवाचले अरूण-पत्थर-मुत्ति-णेगा ते भंग -भंगिम-गदा-अणुचिंतणिज्जा।
साहस्स-संख-कर-मत्थग-पाद-हीणा भग्गाण कोस-अणुकोस-मुहादु जाए।।31।।
वासाइ-वास-चदुमास-जिणस्स भत्तिं सत्थाण वायण-सदा - सिविराण लाहं।
झाणे वि पूजण-सुदे-अहिसेग-कित्तिं सावण्ण-भद्द-समणाण विसेस-दाणं।। 32।।
अस्सिं विणिचछइलगो विहवो विमस्सो तच्चत्थ-सुत्त-रदणादुं विसिट्ठ-मुत्तं।
णेदूण दंसण-सुणाण-चरित्त-चित्तं होज्जं च ते रदण-सम्म-सु-सच्छ-सत्तं।। 33।।
गीत - तुह भव्व जणेज्ज, दहलक्ख सुणेज्ज। सम खम्म धरेज्ज, माण-कसा चत्तेज्ज।।
मद्दव तुं गिण्हेज्ज, सरलत्त कुणेज्ज। अज्जक ज जहेज्ज सुहगारू भवेज्ज।।
सच्चउ सच्च-सच्चे, संजम-जम-पच्चे। सील-सलिले वेच्चे, अप्पउ पक्खलच्चे।।
तुं तउ पालिज्जेज्ज, चदु-दाणं दिण्णेज्ज। संग सव्व मुत्तेज्ज, बह-धम्मं चरेज्ज।।
इध चिंतज्ज साहू ते, आद-गुणामउि-सायरं। पुर-णयर-गामिल्ले, विराग-वीदरागए।।34।।
सदा पसण्णो सुद-सत्थ-जुत्तो विराग-पुणो सुदराग-पत्तो।
सु संत संतो उदयो सु सुत्तो तवेण तत्तो उवसग्ग-जेत्तो।35।।

गोपाचल पर, अरूण पाषाण की अनेक मूर्तियाँ खंडित, खंडगत दयनीय है। वे हजारों की संख्या में कर, पाद, मस्तक आदि से विहीन उन क्रूर पुरुषों को आगत मनुष्य कोसते रहते हैं।।31।। 1997 भिण्ड वर्षावास के प्रवास में चार महीने तक जिनदेव की भक्ति, शास्त्रों की वाचना, शिविरों के लाभ को दर्शाते हैं। श्रावण और भाद्र मास में ध्यान, पूजन, श्रुतमंथन, अभिषेक और श्रमणों के विशेष दान की कीर्ति को (700 मुनिराजों के अवदान की कीर्ति) उपस्थित करते हैं।।32।। इस वर्षावास में ऐ. विनिश्चयसागर, ऐ. विभवसागर, ऐ. विमर्शसागर आदि तत्त्वार्थसूत्र के तत्त्व के सार, रत्नकरण्ड को विशिष्ट आचार मुक्ता रूपी सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र के चित्र को लेकर चलते, तब जन समूह (शिविरार्थी) रत्न के सम्यक् स्वरूप और उसकी स्वच्छ सत्ता को समझते हैं।।33।। दशलक्षण पर्व पर भव्यजनों को समझाते कि आप लोग दशलक्षण धर्म को यथार्थता से सुनो ! क्षमा से सम को धारण करें, मान कषाय को छोड़ दें। मार्दव को ग्रहण करें, आर्जव से ऋजुता प्राप्त करें। इससे सुख होगा, सरलता के परिणाम बनेंगे। सत्य के आदर्श पर दृष्टि दें, संयम, यम में प्रवृत्त हों, शील के सलिल में स्नान करें ताकि आत्मा विशुद्ध हो सके। तप को दीप्त करें, चार प्रकार के दान देकर दीनता को समाप्त करें। सर्वसंग से मुक्त हो और ब्रह्म धर्म की ओर प्रवृत्त हो। वे साधु ऐसा साधु चिंतन देते कि आत्मा में अनंत गुणों का अमृत है जिसे अमृत सागर की तरह समझें। ऐसा पुर, नगर एवं ग्राम आदि में विराग से वीतराग का मार्ग दिखलाते हैं।।34।। आचार्य विरागसागर सदा प्रसन्न श्रुत शास्त्र में निमग्न, श्रुत के प्रति राग होते हुए भी विरागपूर्ण, शान्त अतिशान्त संत थे, वे उदय हैं, क्योंकि सूत्र वचन हैं और तप से तप्त उपसर्गों को जीतने वाले हैं।।35।।

इदि छव्वीस विरागो समत्तो।

सत्तावीस-विरागो

सम्मउ-सुद-सायरू, गुण-मणि पूरउ अणुवमु सासणु चरचरिउ।
परिपुण्ण समिद्धउ वण्णहि सुद्धउ अत्थ अरह पहु सुद-समिउ।।1।।
संसारए चदुगदी भमए हि जीउ णाणा-विहण्णु-तणु घेत्तउदुक्खु णंतु।
आउस्स खीयइ मुअंजउ ताइ णिच्चं देवे णरे तिरिउ जोणि णिमज्ज किच्चं।। 2।।
आराम-गेह-रदणत्तयस्स य सामिच्च-भाव-इरिया दि-समित्त-जोगे।
अब्भास-पाढ-पढणं गुरु-णाण-देसं णो बाहिराण मणुजाण मुणिस्स काले।। 3।।
आराम-गेह-रदणत्तयस्स य सामिच्च-भाव-इरिया दि-समित्त-जोगे।
अब्भास-पाढ-पढणं गुरु-णाण-देसं णो बाहिराण मणुजाण मुणिस्स काले।। 4।।
साहिण्ण-भाव-जय-जणाण सुसासणं च साहेज्ज साहण-सुहं ण हु भंत-भावो।
लोगेसणाइ परिणाम-सदा ण सम्मो उड्ढेज्ज पंछि पुणु जाल-कदा हवेस्सा।। 5।।

जो उत्तम चर्या के चरित्र वाले हैं, वे गुणों रूपी मुक्ताओं से पूर्ण होते हैं, ऐसे हैं उत्तम/सुशास्त्र जो सागर की तरह अनेक रत्नों से पूर्ण हैं, शुद्ध वर्णों अर्थात् जिसके एक-एक अक्षरों से शुद्ध भाव निकलते हैं, वे अरहंत के अर्थ प्रभुता वाले हैं और समत्व को दर्शाने वाले हैं।।1।। संसार की चारों गतियों में जीव भ्रमण करता है, वह नाना प्रकार के शरीर सम्बन्धी अनंत दु:ख पाता है। आयु क्षीण हो रही है, वह जीवन का परित्याग कर रही है। देव, नर, तिर्यच आदि योनियों में आना-जाना हो रहा है।।2।। संघ में आचार्य शास्त्र के विविध विचारों को समझाते, तभी तो वे विरागभाव को प्राप्त होते हैं। इससे प्रभावित लोग साधु दीक्षा के लिए निवेदन करते रहते हैं, वे आचार्य दीक्षा के लिए कहते नहीं है क्योंकि दीक्षा के पश्चात् ऐसा भी होता-जो अपने बाप का नहीं, वह दूसरे बाप का कैसे हो सकता है ?।।3।। संघ रत्नत्रय का आराम गृह होता है, इसमें स्वामित्व भाव/आचार्य द्वारा निर्दिष्ट ईर्या आदि समिति और योग में प्रवृत्ति प्रमुख है। सदैव पाठों का अभ्यास पठन एवं गुरु देशना को/गुरु आज्ञा को पालन करना समत्व को ही देता है। इस मुनि अवस्था में बाहरी क्रियाओं से प्रभावित हो जिन लोगों ने संग छोड़ा उसका योग नहीं किया जाता है।।4।। संघ का सम्यक् शासन सुखमय साधन की ओर ले जाता है। लोगों को सहिष्णु बनाता है, परीषहजय की दृष्टि उत्पन्न करता है, परन्तु जो दिग्भ्रमित होते है, वे लोकैषणा के परिणाम को कभी नहीं जान पाते हैं। जैसे जाल में आया पंछी यदि उड़ जाता है, तो वह पुन: उसमें नहीं आता।।5।।

अस्सिं जगे विविह पीढयसल्लिहणाए विज्जा-विसेस-गुणठाण-बहुल्ल राजे।
जो सिक्खणं च अणुसासण-णाणदाणं सूरी विराग-इणमें बहुमाण-देंति।।6।।
अज्झप्प-तच्चरुचिजुत्त-रमेसचंदो तत्त्थसार-समयं समयं समिक्खे।
तं दंसणं च कुणमाण -विसेसणंदे तं णाण-पुण्ण-वयणादु णमेज्ज तस्स।। 7।।
दिक्खं णएज्ज हवदे अवि खुल्लगो सो विस्सो वि एलग-तधा-मुणि-दिक्ख-सिक्खं
पत्तेदि साहु-गुणणं गणणं विरागं संघस्थ-धम्मवदबंह-समाहि-जादो। 8।।
भिंडे खरोअ-लमचू अवि गोल गोले खंडेलवाल-पहुडी बहु-धम्मसीला।
धम्मेरदा हि सयला जुजएंति कप्पं वीरस्स जम्म समए पण अज्जि-दिक्खा।।9।।
णिस्सा विसिट्ठ-सुसमा वि विगास-अज्जी होज्जा विदूसि-सुमणा वि विभूदि-रोसी
सावित्ति जादि विजया वि विरत्त-जेणी ताओ विराग-मदिमादु-विराग-पादे।।10।।
सिप्पी अणेग-जगदै मणुजा संबधं एगो सुरेस सरलो सरलं कध-णेह-लेहं।
पत्तेदि संत विविहं अवि विराग-पक्खी णिप्पेहिसंत-रयणाइ सुमाण-पत्तं।।11।।
डागूण खेत्त-इणमो भय-जुत्त-जुत्तो आदंग-पुण्ण-पडिदिण्ण-जणा कघेंति।
रत्तीइ सावग-जणा विरमेंति णो ते सूरिस्स संघ-भय-मुत्त'पसण्ण-सुत्ता।।12।।

इस जगत् में अनेक पीठ है, उत्तम सल्लेखना/कम्प्यूटर के विद्या स्थान उसकी विशेषताओं को प्रतिपादित करने वाले हैं। परन्तु आचार्य विरागसागर अनुशासन की शिक्षा देने वाले विद्या केन्द्र हैं, जो बहुमान देते हैं।।6।। अध्यात्म तत्त्व रूचि युक्त पंडित रमेशचन्द्र तत्त्वार्थसूत्र, समयसार के समय/सिद्धान्त की समीक्षा को सुनते हैं। वे विरागसागर के दर्शन को प्राप्त विशेष आनंद में निमग्न उनके ज्ञानपूर्ण वचनों से उन्हें नमन करते हैं।।7।। पंडित रमेश ग्वालियर दीक्षा लेते ही क्षु. विश्वलोचन बन गए, वे ऐलक के पश्चात् मुनि दीक्षा को प्राप्त होते हैं, और साधु के गुणों और विराग गणन को महत्त्व देते चल पड़ते हैं। ब्र. धर्मचन्द्र जी. मुनि विग्रहसागर जी बनकर संघ में समाधि को प्राप्त हुए।।8।। भिण्ड में 1998 में वीर जन्म जयंति के समय पाँच आर्यिका दीक्षा और एक क्षु. दीक्षा होती है। इस क्षेत्र के खरौआ, लमेचू, गोलालारे, गोलसिंगारे, खंडेलवाल आदि लोग धर्मशील, धर्म में रत कल्पद्रुम महामंडल विधान को करवाते हैं।।9।। बाल ब्र. निशा (हरदुआ) आ. विशिष्ट श्री माताजी, सुषमा (खबरा) विकास श्री माताजी, सुमन (टीकमगढ़) विदुषी श्री माताजी, रोशनी (छतरपुर) विभूति श्री माताजी, सावित्री (सागर) विजय श्री माताजी और जैनमति (छतरपुर) क्षुल्लिका विरक्त श्री माताजी हुई। वे सभी विरागमति युक्त विराग के चरणों में आर्यिका जैसे पद से अलंकृत होती है।।10।। यहाँ अनेक शिल्पी हैं, प्रबंधकार भी हैं, परन्तु सुरेश सरल, एक ऐसा सरल परिणामी व्यक्ति सरल कथा के लेखन में प्रवीण अनेक प्रकार के कथाशिल्प की रचना करते है। वे आचार्य विरागसागर के प्रेक्षी 'निस्पृही संत' के कथा शिल्पी भिण्ड में सम्मान को प्राप्त करते हैं।।11।। यह क्षेत्र डाकुओं का है। यह भयजन्य क्षेत्र है, आतंक से पूर्ण है, प्रतिदिन यही चर्चा रहती है। यहाँ रात्रि में (उदी ग्राम के आस-पास) कोई नहीं रूकता। फिर भी आचार्यश्री का संघ भयमुक्त प्रसन्न ही विश्राम, ध्यान आदि को प्राप्त होता है।।12।।

सिंहो समो परम-सूरि-जणो हि णिच्चं आराम-रम्म-चरिए रमदे सदा हि।
आयार-पूद-पहुदी सददं सदासं दाएज्ज पाणि-मणुजाण सुसीस-लाहं।।13।।
भिंडे वि एलग-सुदिक्ख-विहिं च सत्तं विस्सो य विस्स-विहिओ विमदो वि विस्सो।
संघे विणीदय-विलोग गुणेण जादि सव्वाण मंगल-मदिं पदएज्ज इत्थं।।14।।
अट्ठाणिवे हि चदुमास-इधेव ठाणे अच्चत-णंद-गुरु-गारव-मंगदायी।
सम्मासणादु सिविरत्थि-उवासणाए जाएज्ज सावग-गुणं सुद-भावणं च।।15।।
वत्थुव्विदो ण हु इधेव सुपीढ-मालं वेदीइ गोण-गुण-णायग-दार-दंसं।
संमेद-संरयण-दंसि-जणा पसण्णा किं णो हवेस्सदि गणी-गणणार अपुव्वो।।16।।
मुत्तिस्स भव्व-रजदस्स सुसम्मदाणे सो डालचंद-समणारद-सावगस्स
भा. भावणा परमवेदि-विदं च भावं पत्तेदि सूरि-वयणेण भयादु चोरा।।17।।
सव्वे जणा परम-अच्छरिआ हि अत्थि जे धम्म-कज्ज-अधुणा सयला सुरम्मा।
कोडी-सुसत्त-लह-सुसत्त-सुसत्त-सत्तो जावेण भेदिणि-जणा बहुलाह-मुत्ता।।18।।

सूरी तो सिंह के समान होते हैं। वे परम आराम-विशुद्ध आत्मा में स्थित उत्तम चर्या में रमते हैं, क्योंकि वे आचार की पवित्रता वाले उत्तम आशीष को लेते हैं और वही समस्त प्राणियों को लाभ रूप में आशीष से हस्त ऊपर करते हैं।।13।। भिण्ड में विधिवत् सात ऐलक दीक्षाएँ हुई। जिसमें श्रु. विपुलसागर ऐलक विश्वभूतिसागर, क्षु. शीलसागर, ऐ. विश्वशीलसागर, क्षु. विहितसागर, ऐ. विहितसागर, क्षु. विमदसागर, ऐ. विमदसागर, क्षु. विश्वलोचन ऐ. विश्वलोचनसागर, क्षु. विनीत ऐ. विश्वयश, क्षु. विलोक ऐ. विलोकसागर, नाम से संघ में सभी की मंगलमति के कारण बनते हैं।।14।। भिण्ड में 1998 के चार्तुमास में गुरु पूर्णिमा आनंद गुरु गौरव प्रदान करने वाला तभी बनता है, जब उचित अनुशासन से शिविरार्थी श्रुत प्रशिक्षण को प्राप्त करते हैं, उपासना के पूर्व पर्यूषण के समय श्रावक गुण और श्रुतभावना को प्राप्त होते है।।15।। यहाँ पर एक मनोज्ञ वेदी, गोमुखी, गुणज्ञायक द्वार सभी को आकर्षित करने वाले हैं। सम्मेदशिखर की संरचना लोगों को प्रसन्न करती हैं जो किसी वास्तुविद अभियंता का संकेत नहीं, अपितु प. पू. आचार्य विरागसागर की अपूर्व कल्पना है, जो प्रसन्नता क्यों नहीं प्रदान करेगा ? गर्षण की गणना/विचारों का सामंजस्य अपूर्व ही होगा ?।।16।। जिसकी उत्तम भावना होती है वह भा-भास्कर रूप भा-दिव्य तेज को देती है। डालचंद जैन (गौलालारे) की भावना रजत मूर्ति के मूर्त के लिए उत्तम दान के लिए थी, जो आचार्य श्री के इस कथन से परिवर्तित हुई थी, इस जगत् में चोरों के भय से रक्षित रहेगी क्या ? अर्थात् नहीं । अतः उत्तम वेदी के भाव को मानो एक वास्तुविद आचार्य द्वारा दर्शा दिया तभी तो ऐसी मनोज्ञ वेदी भिंड में बनाई गई।।17।। सात करोड़, सतर लाख, सत्ततर हजार, सात सौ सत्ततर (777,77,777) नवकार मंत्र के जाप से जनमेदिनी मानो बहुलाभ रूपी मुकामों से युक्त हो गया था, यहाँ जो भी कार्य हुए वे सभी परम आश्चर्य युक्त थे।।18।।

आराहणा-परम-जावपहावणाए साला वि धम्म-रयणा विहि पुव्व-जादा।
खित्ताजणी मदविहीण-मिदादु रक्खे जाएज्ज धीर-मणुजा मणखम्म-जुत्ता।।19।।
गामे मह दु मह-दिक्ख-महत्त-दाणं भीमाजणाण भयमुत्त-विसेस-भावे।
कूरा ण कूरमणसा परिचत्तएंति ते अज्ज आइरिय-पादरदे ण खिण्णा।।20।।
भीदं जणेंति अवहार-जणाण किच्चा आदंग-खोह-रहिदा कध भासएंति।
जत्थे विराग-दिणणाध-तधा ण किंचिं कूरा वि सूरा परम-पारग-आद-वीरा।।21।।
एलो विसल्ल-विहवा य विमस्स-साहू एलो विहास सुविहास-विणिच्छयो वि
विस्सो दु सील-विहिदो विमदो दु विस्सो विस्सो दु खुल्लगय-संजम-विस्स-विस्सो।।22।।
दाणीण दाण-महदी किवभावणाए णाणाविहाण-विहि-पूजण-जिण्ण-जिण्णं।
अच्चंत-णव-महगाम-महखेत्त-रूवं पत्तेदि भिंडणयरे पुण धम्म-भावं।।23।।

णमोकार मंत्र की आराधना और परम जाप की प्रभावना से शान्ति ही शान्ति, परम शन्ति, धर्मशाला का विधिवत् निर्माण सरस्वती शाला के अन्यत्र स्थानान्तरण होने पर ही होता है। एक विक्षिप्त महिला मत्यु के काल से रक्षित हो जाती है। अर्थात् जो महिला अपनी जीवन लीला समाप्त करना चाहती है, वह आचार्य के नवकार मंत्र जाप से बच जाती है, इससे जहाँ लोगों के मन धीरता वाले होते, वहीं आपसी क्लेश से रहित क्षमा भाव वाले होते हैं।।19।। आचार्य संघ का विहार एक ग्राम से दूसरे ग्राम में हुआ, जो नाम से छोटा पर 'वरासो' की संज्ञा युक्त अनेक दीक्षओं का दान दे गया। डाकूओं का भय क्रूर, क्रूरमन से अब वे आचार्य के विशेष आयोजन से उनके चरणों में रत अपने कृत्य पर पश्चाताप ही कर रहे हो ऐसा प्रतीत हुआ। अर्थात् क्रूर भी क्रूरता से रहित होते है ऐसी प्रतीति करा देता है।।20।। जहाँ पर विराग रूपी दिननाथ उदित हो, विरागसागर जैसे तेजस्वी आचार्य वहाँ कुछ नहीं हो सकता है। लोगों का अपहरण करे भय फैलाने वाले, या आतंक उत्पन्न करने वाले भी विराग की प्रशंसा करते हैं। ऐसा लोग कहते हैं कि क्रूर तो सूर परम आत्मा युक्त है, वे आत्मवीर है, वे भी परम पारक जनों के समीप उस विराग की रज चाहते हैं जिससे वे क्रूर कषाय छोड़कर शूर-विशुद्ध आत्मा की ओर प्रवृत्त हुए।।21।। यथार्थ में विश्व तो आदित्यनाथ, आदिनाथ, पुरू है, वे पूर्ण शल्य रहित, विभव युक्त, विहर्षपूर्ण, विनिश्चय भी हैं। इस संघ में ऐसे ऐलक विशल्यसागर मुनि शिल्यसागर, ऐ विभव विभवसागर, ऐ. विमर्श विमर्शसागर, ऐ. विहर्ष विहर्षसागर, ऐ. विनिश्चय विनिश्चयसागर, ऐ. विश्वभूति विश्वभूतिसागर, ऐ. विश्वशील विश्वशीलसागर, ऐ. विहित विहितसागर, ऐ. विमद विमदसागर, ऐ. विश्वयश विश्ययशसागर, ऐ. विश्वलोचन विश्वलोचनसागर, क्षुल्लक संयम सागर विश्वधैर्यसागर, ब्र. रमेश विश्ववीरसागर साधु तो साधु बन गए।।22।। दानियों की महती कृपा से नाना प्रकार के विधि-विधान पूजन पूर्वक जीर्णोद्धार के कार्य हुए। नई वेदियाँ, नए-नए आयोजन आदि से महगाँव तो मानो महान्/बड़ा क्षेत्र ही बन गया, फिर आचार्यश्री भिंडनगर में धर्मभाव की प्रभावना करते हैं।।23।।

राकेससिंह-सुदधम्म-सुकम्मसीलो भिंडे विधायक-पदे अवचिट्ठमाणो।
आहार-दाण-पडगाहण-कम्म-जुत्तो भादू मुकेस-णयरस्स जयं जएज्जो।।24।।
इत्थेव पुप्फ-बहुपुप्फ-मुणीहि संगे एगे विराग-बहुराग-विमुत्त-साहू।
सूरिस्स एग-विमलस्स सुसत्थ-हत्थी आदिच्च-तेज-विमलं विमलं कुणेदि।।25।।
पारोप्परं च मिलएंति मुणीस-अज्ज गां-सरस्सइ-समा समभाव पुण्णा।
मंगिल्ल-आदर-समादर जण्ण-भत्ती एगेव थल्ल-पदखालण-पण्ण-सत्ती।।26।।
मासो वि पुप्फमहुमास-वसंत-संतं पस्सेज्ज अज्ज समयं समयं पदेक्का।
उच्चासणे समइगं थिरभूद-सूरी जम्मे वि दिग्विजय-पुप्फ-विराग-सिक्खा।।27।।
सूरी सुपुप्फ-चदुसंघ-सुपट्ट-चिट्ठे पाढं पढंत-गदमाण-मुणीण दिट्ठे।
मासेज्ज सो समय-विज्ज-सुभूमि-चिट्ठे भूमिं मुणे व्हि विणयं अहिमाण-पट्टो।।28।।
जोगादु जोग-पडगाहण-एग-ठाणे चोक्केव एग-असणं मणुजेहि दंसे।
सो अज्जमेव पढमो हि पसण्ण-दाई वच्छल्ल-सेव-सुद-वायण-मंग-जुत्ता।।29।।

भिंड में विधायक पद पर स्थान राकेशसिंह चौहान तो धर्म एवं कर्मशील आचार्यश्री के आशीष से आहार दान, पडगाहन जैसे कर्म में भी लीन हुए। उनके भाई चौधरी मुकेशसिंह नगरपालिका में विजयश्री को प्राप्त करते हैं।।24।। इस भिंडनगर में आचार्य पुष्पदंत अपने पुष्पों युक्त थे, यहीं राग मुक्त आचार्य विरागसागर अपने साधुओं के साथ एक आचार्य विमलसागर के शास्त्र/सिद्धान्त में प्रवीण मानो अपने आदित्य रूपी तेज वाले विमल आचार्य विमलसागर की विमल भावना को फैला रहे थे।।25।। आज भिण्ड में एक ही गुरु के दो शिष्य आपस में गंगा-सरस्वती के समान समभाव पूर्ण मिलते हैं। गंगा भी पावन और सरस्वती भी। दोनों सम, मंगलदायी हैं। इसलिए लोगों का मांगलिक आदर, समादर और भक्ति भाव भी अपूर्व था। दोनों ही का पाद प्रक्षालन एक ही थाली में हुआ।।26।। जनवरी का महीना पुष्पमास, मधुमास वसंत रूपी संतों को शान्त, समय समय/सिद्धान्त के एक ही पद वाले स्थिरभूत सूरी उच्चासन पर सामायिक के लिए स्थिर चित्त बैठ गए ताकि आचार्य पुष्पदंत सागर के जन्मदिन पर पुष्प विराग-प्रस्फुटित विराग का सीख दिग्विजय दिला सके। मुख्यमंत्री दिग्विजयसिंह को प्रतीत हुआ कि आचार्य पुष्पदंत और आचार्य विरागसागर तो समभाव की शिक्षा देने वाले हैं।।27।। एक दिन आचार्य पुष्पदंतसागर जी ने जब चतुर्विध संघ को पाटे पर बैठकर अध्ययन करते देखा तो सबको विनय का पाठ सिखाते हुए कहा कि विद्या का अर्जन पाटे पर बैठकर नहीं भूमि पर बैठकर होना चाहिए। भूमि विनय का तथा पाटा अभिमान का प्रतीक है।।28।। आचार्य पुष्पदंत एवं आचार्य विरागसागर एक स्थान पर पडगाहन को योग से प्राप्त हुए। वे एक चौके में आहार लेते हुए मनुष्यों द्वारा देखे गए जो आज अपूर्व प्रसन्नता प्रदान करता है। दोनों का वात्सल्यभाव, श्रुत सेवा और वाचना की मंगल कामना वास्तव में सुखद अनुभव देती है।।29।।

किंचिं च पच्छ-मुणिसंघ-सुदं पदिट्ठं दादुं च सम्म-मणणं गदिमाण-साहू।
साहु त्ति णिण्णय-णयादु सु-चत्त-सीलो संघे भगिण्ण-भग-बुद्धि-विघाद-यारी।।30।।
सो णिण्णयो जणमणे वपएंति भावं अम्हे दु दंस-सिविणे इध खेत्त-णेगा।
देवाण मुत्ति - रदणाण अवस्स-अत्थि खण्णेज्ज किण्णु णिसरेज्ज ण केई मुत्ती।31।।
पाखंड-खंड-महि-मंडिद-माणवा दु णेगा जगे कध करेज्ज कदा ण किं किं।
अच्छेरियं च कुणएंति जणाण धुत्तं पाढं पढेंति ण हु विचिंतगदा गदीए।।32।।
गदि-गद-रदि-रत्तो-कम्म-धम्मो विमुत्तो हिद-अहिद-विहीणो संचरेदि हि लोए।
सम-सुद-सम-भावो किच्च-कम्माण किच्चो ण हु परि-परि पारे छिद्द-जुत्तो कि णावो।।33।।

कुछ समय पश्चात् मुनि संघ श्रुत प्रतिष्ठा और उचित मनन को महत्त्व देने के लिए प्रवृत्त हुआ। मुनि निर्णयसागर नय से परे थे, वे भी भिंड में श्रुत प्रभावना करते हैं। उनके संग की बहिनें भंग विचार एवं विघातकारी श्रुत की उपेक्षा करती है।।30।। मुनि निर्णयसागर चमत्कारों को जनमन में भरते हैं, वे इस क्षेत्र में स्वप्न में दिखे अदृश्य को दृश्य रूप में प्रस्तुत करते हैं। वे लोगों को समझाते कि इस क्षेत्र में रत्नमयी देवों की प्रतिमाएँ हैं। इसे खोदा जाए, लोगो ने ऐसा करवाया, फिर भी कोई भी मूर्तियाँ नही मिली।।31।। इस संसार में अनेक प्रकार के लोग हैं, पाखंड के खण्ड (विचार) युक्त, महिमा को भी पाखंडपूर्वक मंडित करने वाले हैं ? कहो ! वे क्या-क्या नहीं करते हैं। वे चमत्कार उत्पन्न करते और लोगों को धूर्त बनाते हैं। वे धूर्त, धूर्तता का पाठ स्वयं पढ़ते हैं, वे गति की चिंता नहीं करते हैं। वे उससे परे एक ही चिंतन करते कि हमारी गति/पहचान लोगों को धूर्त बनाने में हैं।।32।। जन्म-मरण की गति तो गतिमान है, गति तो एक के बाद एक प्राप्त होना ही है जब तक गति है तब तक कर्म है। जो धर्म विमुक्त हैं। वे हित-अहित से विहीन इस संसार में परिभ्रमण करते हैं, वे संसार सागर से पार नहीं हो पाते हैं सो ठीक ही है - छिद्र युक्त नौका क्या पार लगा सकती है ?।।33।।

इदि सत्तावीस-विरागो संमत्तो।

अट्ठावीस-विरागो

इध भव-जणेहिं वादेहिं मुणी मण-दूसिदो हरिणी तव-गुण-विघादं साहूणं छविं परिदूसणं।
पुर-णयर-गामे पादे साहणे सम-वादणे ण हु परि-परेहिं चित्तेहिं विचित्त-कुसासणं।।1।।
साहु त्ति साहणरदो णिय-सम्म-रूवं चत्त विचित्त-मणि-मंत-चमक्कचित्तं।
दंसेज्ज माणव-हिदं णयएज्ज सोक्खं रत्तो दु किं भुवण-पुज्ज-कदा गणेज्जा।।2।।
लोए दु इट्ठ-परमो परमोदयारी साहूण जोग्ग-जदणो मह-रक्खणो हि।
ते भव्व-भव्व-जिणसासग-सम्मवादी मंतेहि संति-जगदे भवदे ण किंचि।।3।।
मंतादु इट्ठ-विहवो सुह-सुति-सव्वे अत्थि त्ति अत्थ-परिपुण्ण-अरोग्गलाहो।
दिग्घाउ-भोग-सयलाणि कुले वि जम्मो सुंदेर-देह-रदि-णंद-जणा कि णंदे।।4।।
णत्थि त्ति कारण विणु कज्ज-सुसम्म-रीदी दीवं विणा ण हु जगे वि पगास-किंचि।
बीजं विणा ण कध अंकुर-अंकरेज्जा मेहं विणा ण वर-बुट्ठि-कदा हवेज्जा।।5।।
धण्णो ण जायदि धराइ वि ऊसरम्हि छाया ण छत्त-वरणादु विणा ण दंसे।
संसार-सागर-तरं तरणिं विणा णो जाएज्ज किं सुद विहीण-कदा पहावो।।6।।

इस जगत् में अनेक प्रकार के लोगों द्वारा मुनि मन दूषित हो, ऐसा विचार रहता है।, वे उनके तप गुण के घात, छवि को दूषित करने को पुर, नगर, ग्राम आदि के प्रत्येक स्थल पर साधुओं की साधना में खोट निकालते हैं। इससे ही उन्हें संतोष नहीं होता तो वे नाना षड्यंत्रों से उत्तम अनुशासन को कुशासन बना देते हैं।।1।। यदि इस लोक में साधनारत साधु अपने सम्यक् रूप/महाव्रत के रूप को छोड़कर नाना प्रकार के मणि, यंत्र, तंत्र, मंत्र आदि के साथ चमत्कार उत्पन्न करने लगें तो मानव हृदय को वह प्रसन्न कर सकेगा ? इस तरह का राग क्या भुवन में पूज्य बना सकेगा?।।2।। इस संसार में जो इष्ट है, वही परम है, वही दूसरों को भी आनंद देने वाला है। साधुओ की सम्यक् चर्या, उनका सम्यक् यत्न तो महाव्रतों का रक्षण है। वे उसी से भव्य होते हैं। वे ही भव्य जिनशासन के श्रेष्ठवादी हैं, परन्तु जो मंत्रों से जगत् में शान्ति है, ऐसा विचार कते हैं, वे क्या भला कर सकते हैं ?।।3।। मंत्र से उत्तम वैभव, सुख-शान्ति सभी कुछ है। अर्थ की परिपूर्णता, आरोग्य, लाभ, दीर्घ आयु, समस्त भोग, उत्तम कुल में जन्म, सुन्दरता, देह में रति का आनंद क्या लोगों को आनंद दे सकता है।।4।। इस जगत् में कारण के बिना उचित कार्य विधि नहीं हो सकती है? दीपक के बिना प्रकाश नहीं हो सकता है? बीज के बिना अंकुर नहीं फूट सकते है? मेघ के बिना उत्तम वृष्टि भी नहीं हो सकती है?।।5।। ऊसर जमीन कभी भी धान्य बिना धन्य नहीं हो सकती है? छाया भी छत्र के बिना नहीं आ सकती है? संसार सागर के पार बिना तरणी के क्या किसी ने देखा है? उसी तरह श्रुतविहीन क्या मणि, मंत्र या चमत्कार से श्रुत की प्रभावना कर सके?।।6।।

आणंदएज्ज अगणी जणमाण-जाला किं सोक्ख-सोम्म-समदा विणु धम्मएकां।
मित्तीइ मंत-अणुसासण-तंत-धम्मे जत्थे हवेहिदि तधेव सदा हि संती।।7।।
धम्मादु अब्भुदय-सग्गसुहं च भावं सिद्धिं च मोक्ख-पुरिसत्थ-समित्त-सत्तं।
आदिच्च-दित्ति-महिदं च अणंत-तेजं होज्जेज्ज साहु-मह-मंत-गुणोत्तरो हि।।8।।
पाणीण सत्त-सयलाण सदाणुकंपा मूलोदया परमधम्म-पदाणुसंसा
पाकित्ति-उज्जलमदी गुण-णंत-मंता भासेज्ज खम्म-परमो अणुपेक्ख-सिक्खा।।9।।
पुव्वाणुपुव्व-अणुगामि-मुणीहि लोए वेरग्ग-दाण-दमणं दंमणिज्ज-इंदं
सीलं तवं भुरिदझाण-मुणाण-छंद चिंतेज्ज साहु-मणसा मणसासणत्थं।।10।।
मिच्छामदी कुस-कुसग्ग-सदा विकिण्णे जण्णे जदी जदण-जादि-जवं वपेदि।
मे वीदरागि-सुद-सत्थ-विचारधारी मे मे कुणंत-समणो समणो ण जादि।।11।।
जत्थे जधा धणुसणिस्सय-बाण-अग्गे गच्छेंति वेधद-जणाण मणाण सिग्घं।
णिस्सास-वाग-वयजा णहु पच्छ-गच्छे आगच्छएंति ण मुणेज्ज गुणीस-पंथे।।12।।
मूलोत्तरे हि अवचिट्ठ-समत्त-सीलो धम्मो अहिंस-तव-संजम-उत्तमो हि।
किण्णु त्ति सो जदिजदी जिद-जेद-जेत्तं चत्ता चरिदि चारिदं चयमाण-चित्तं।।13।।

जलती ज्वाला युक्त अग्नि क्या आनंद दे सकती है? क्या धर्म के बिना सुख सौम्यभाव और समता हो सकती है? मैत्री के मंत्र, अनुशासन तंत्र तो धर्म में है, जहाँ धर्म होगा, वहाँ शान्ति होगी।।7।। साधु का मंत्र महाव्रत मूलोत्तर गुण है, वही आदित्य के सदृश दीप्ति, अपूर्व महिमा और अनंत तेज को प्रकट करता है। उससे समत्व सत्त्व मोक्ष पुरुषार्थ की सिद्धि होती है। ऐसे धर्म से ही अभ्युदय स्वर्गसुख आदि भाव को प्राप्त करते हैं?।।8।। प्राणियों, सभी सत्त्वों के प्रति अनुकंपा मूलोत्तरधारी में होता है, इसलिए उनका प्रथम धर्म दया है, जो परमधर्म पद की विशेष शोभा है। कीर्ति उत्तम मति और अनंत गुणों का मंत्र इसे कहा गया है। क्षमा, अनुप्रेक्षा और शिक्षा इसके परम आधार हैं।।9।। यह सत्य है कि साधु मन से अनेक तरह के शासनार्थ ही शील, तप, ध्यान, ज्ञान आदि के कारणों पर प्रकाश डालते हैं? तभी तो लोक में उन मुनियों के द्वारा पूर्वानुपूर्व के अनुगमन से वैराग्य का दान तथा इन्द्रिय दमन की प्रवृत्ति को सार्थक बनाया जाता है?।।10।। इस संसार में मिथ्यामति तो कुशासन रूपी कुशाग्र से सदा भरे होते हैं। अर्थात् जो सदा कुश के अग्रभाग की तरह तीक्ष्ण होते हैं वे यति, जाति रूपी जब जो को बोते हैं। वे ही, मैं वीतराग मार्गी हूँ, श्रुतशास्त्र का ज्ञाता हूँ। ऐसा अहं-अहंकार करता हुआ श्रमण समत्व वाला नहीं हो सकता है। मैं श्रमण हूँ ऐसा शब्द ही समत्व का निषेध कर देता है।।11।। जैसे धनुष से निःसृतवाण आगे सीधे जाता है, वह लोगों के मन/हृदय को घायल कर देते हैं, परन्तु वे पुनः तरकस में नहीं आते, वैसे ही जिव्हा से बोले गए वचन पीछे अपने स्थान पर नहीं आते, ऐसा गुणों के मार्ग में अर्थात् विवेचन से प्रकट होता है।।12।। मूलोत्तरों में स्थित समत्व शील श्रमण जो श्रम करता है, वह श्रम उत्तम अहिंसा धर्म है, उत्तम तप है और उत्तम संयम है। किन्तु यति/श्रमण का यत्न इंद्रिय जय को छोड़कर चरित्र में दोष लगाने के लिए होता है तो वह उसका धर्म कहाँ रहेगा?।।13।।

वादि त्ति भूद-सयला पुडविं जलं च वाउं च अग्नि-परमं मुणएदि णिच्चं।
आद त्ति एस इणमादु विणिम्म-सीलो अत्थित्त-हीण-जगदे-कध के मुणेंदि।।14।।
धम्मीभवादु जगदे इध धम्म-जादि णत्थि त्ति आदगुणसिद्धिकधेव धम्मो।
आगास-पुप्फसम चेदण-देहरित्तो आएज्जदे इध कुणेज्ज भवं च भव्वं।।15।।
जाणेदि सो सुह-फलं असुहं फलं च सोक्खो हवेज्जदि सुहेण मुणेदि णिच्चं।
दुक्खो सदा हि असुहेण गुणेज्ज सच्चं तत्तो वि बुब्बुद-जल व्व खणे विलीणो।।16।।
जाणेज्ज मे मणुजराज-णराहियारी पत्तिल्ल-मूल-गुण-कज्ज-चमक्क चित्ता।
आगच्छ-गच्छ-गण-गारव-माणवा ते वंदे णमोत्थु रहिदा बहुपंत्ति-जुत्ता।।17।।
पासंस-संस-अणुसंस-सुइच्छमाणा अत्थेव तत्थ बहुला परिदंसएज्जा।
वारेज्ज तं च परिवार-जणेहि सम्मं चित्ते णएंति णय-हीण-धणीय मुत्तं।।18।।
जे अज्ज णाण-किरिया-विमुहा जणा ते मारुत्थले रजकणे जल-सम्म-मण्णे।
धावेंति चित्तमिग-तुल्ल सुहं च दंसे जम्माजरादु कध मुत्त-मणा हवेंति।।19।।
तत्त्वण्हु तत्त-परमं रदणं च मण्णे अत्तागमं पवयणं सुद-सत्थ-णीरं।
णेदूत मूल-गुण-उत्तर-समित्त-सीलं कल्लाण-अप्प-पर-माण-कुणंत-दंसे।।20।।

भूतवादी पृथ्वी, जल, वायु और अग्नि को मानते हैं। इसी से आत्मा/चेतन है, इसके अस्तित्व के नाश होने पर कुछ नहीं होता है।।14।। पृथ्वी आदि के संयोग से चेतना उत्पन्न होती है। इसलिए देह के नाश होने पर वह भी नहीं रहती है। धर्मी होने से धर्म होता है, जब धर्मी ही नहीं तो आत्मगुण रूप धर्म कैसे सिद्ध हो सकता है? वह तो आकाश पुष्प की तरह है। इसलिए इस संसार में अपने को भव्य बनाने के लिए ही लोग कार्य करते हैं।।15।। शुभ और अशुभ फल जो जानता है, वह शुभ से सुख और अशुभ से दु:ख की वास्तविकता भी जानता है। फिर भी उस सत्य से विहीन नहीं मानता है कि देह के नाश हो जाने पर जल के बुलबुले की तरह सब कुछ नष्ट हो जाने वाला है।।16।। जो आगे के जन्म के विषय में नहीं सोचते, वे ही अपने को प्रतिष्ठित करने में लगे रहते है, मेरा अधिपति, अधिकारी आदि नाम लें, मेरे चित्त चमत्कार युक्त कार्यों को समाचार-पत्रों के मुख्य पृष्ठ पर नाम हो, लोगों का समूह आते रहें ताकि मेरा गौरव भी बढ़ सकेगा। वे पंक्तिबद्ध नमोऽस्तुते से रहित मुझे नमन करते हैं।।17।। वे प्रशंसा, शंसा, अनुशंसा आदि की इच्छा युक्त सर्वत्र दिखाई दे जाते हैं। उन्हें परिवार से घिरा हुआ अच्छा लगता है। वे लोगों को चित्त में बसाते और नयहीन धनिकों को प्रोत्साहन देते हैं।।18।। जो भी आज ज्ञान और क्रिया रहित लोग हैं, वे मरुस्थल की रजकण में जल की कल्पना कर रहे हैं वे चंचल मन की तरह उसी में सुख देख रहे हैं। अत: कहिए ऐसे मन वाले जन्म जरा से मुक्त हो सकते हैं?।।19।। तत्त्वज्ञ, परम तत्त्व रत्नत्रय को महत्त्व देते हैं, वे आप्त, आगम, प्रवचन, श्रुत शास्त्र रूपी नीर लेकर मूलोत्तर गुण, समत्वभाव और शील को लेकर अपना और दूसरों दोनों का सम्मान करते हुए देखे जाते हैं।।20।।

संघे विराग-मणुजाण सदा हि सम्मं होज्जेदि वास-पडिवास-णिणाणकाले।
एगादु एग-परमागम-वायणादी पंके णिमग्ग-बहुला जुव-जोदि-जग्गे।।21।।
पिच्छिल्ल-मोर-करूभाग-सुसोहमाणा पस्सेज्ज माणवमणा इध चिंतएंति।
मे मग्ग-सम्म-इणमो जस-कित्ति-दाई संतिप्पदाइ-परमागम-सुत्त-राजीं।22।।
अत्तागमा दु परमागम-सव्वदंसी आयार-दंसण-मदी-मुणणस्स वंसी।
पंकावली-भवकली, कलणेज्ज कंसी कासाय-कंस-दुह-णंत-किदंत-मंतीं।।23।।
सत्तम्मि सेट्ठ-मुउडो मुणएज्ज सूरी अस्सिं च खुल्लविणओ मुणि-विस्सपुज्जो
बंहेयरी वि अरविंद-मुणी विकम्मो जो पंकजो इलविणग्ग-विकस्सो वि।।24।।
फूलो वि हीरय-असीस-हवेंति खुल्लो विस्संत विस्सय-विवेग-विवेगसीलो।
अज्जेव अज्जिय-विणीद-सिरी हवेज्जा खुल्ली विहाण-सिरि-सत्थ-गुणे रद त्ति।।25।।
सत्तल्ल-वास-परिजंत-वदी सुकण्णा पालेंति सावगवदं मुउडा विहिसेहरी वि।
ताओ त्ति पीदिजगदे अदि-संसणीदा सीलंधरी मुणि-जणाण गुणाण भत्ती।।26।।
उज्जाण कीलण-गदा उभया हि कण्णा सप्पेण दंस-चिद-सुण्ण-पसणा।
जावं कुणेंति णवयार-परं च मंतं पूजं जिणं च जवएंति जिणेस आदिं।।27।।

इस संघ में सम्यक्, विधिपूर्वक, वर्षावास आदि में मनुष्यों के लिए विराग की ओर अग्रसर किया जाता है। सभी ओर से परमागम की वाचना आदि पंक में निमग्न बहुत से युवाओं को परमागम के मार्ग की ज्योति दिखलाई जाती है। सन् 1999 के समय में।।21।। पिच्छि परिवर्तन के समय मयूर पिच्छि के कर भाग वाले अत्यंत ही शिक्षा देने वाले होते हैं। वे पिच्छि से शोभायमान मानवमन को इस चिंतन को प्रदान करते हैं कि मेरा मार्ग यही है, इसी से यशः कीर्ति है, यही शान्ति प्रदान करने वाला है। इसी मार्ग से परमागम के सूत्र की ओर दृश्टि हो सकती है।।22।। यह मार्ग आप्त आगम, परमागम आदि सभी कुछ दिखलाने वाला है। यह आचार-ज्ञानाचार, दर्शनाचार, चरित्राचार, तपाचार और वीर्याचार का दर्शन कराने वाला है। यह मति/बुद्धि तत्त्व रूपी मनन की वंशी है। यहीं से पंकावली संसार रूपी कली को नष्ट किया जा सकता है। कषाय रूपी कंस के कसने और दुःखों का अंत करने के लिए वृतांत है और मंथन के लिए भी यही सार्थक पद है।।23।। 1999 के वर्षावास में मुकुट सप्तमी मनाई गई। इस अवसर पर क्षु. विनयसागर मुनि-विश्वपूज्य सागर बने, ब्र. अरविंद-विक्रमसागरमुनि, पंकज-ऐ. विनर्ध्यसागर और दीपक-ऐ. विकर्षसागर हुए।।24।। इसी समय फूलचंद, हीरालाल, आशीष क्रमशः क्षु. विश्रान्तसागर, क्षु. विश्वधर्मसागर, क्षु. विवेकसागर आदि विवेक शील हुए। आर्यिका विनीतश्री, क्षुल्लिका विधानश्री आदि शास्त्र गुणों में रत होने के लिए प्रवृत्त हुई।।25।। मुकुट सप्तमी मुकुटशेखदी और विधिशेखरी को प्रीति, संयम, शील आदि की भावना से श्रावण शुक्ला सप्तमी को कुमारी कन्याएँ मनाती है, वे इस समय उपवास व्रत रखती और श्रावकव्रत का पालन करती है।।26।। एक समय दोनों कन्याएँ उद्यान में क्रीड़ा कर रही हैं, जहाँ से वे प्रसन्न मन वाली सर्प के डसने से चित्तशून्य हो गई थी। वे तब से सात वर्ष तक प्रोषध करती, नवकारमंत्र का जाप करती और आदिनाथ के मंत्र के साथ जिनपूजा करती हैं। मंत्र- ओ. ह्रीं वृषभतीर्थंकराय नमः।।27।।

कल्लाण-पंच-दुवसाहास-काल-जादि होएज्जदे गजरहो तव-सम्म-भावो।
पंचेव दिक्ख-समयं समयं दएंति झासीपुर विहरदेजण-लाहणत्थं।।28।।
खुल्लो विसाल-अवरो अवि विस्सधम्मो दिक्खेज्ज साहु-परमादु मुणिं च णंदं।
अज्जी-पदं च सविदा अवि संगि-अंगी विण्णी-विपस्स-सरजू वि विलक्ख-खुल्ली।।29।।
भव्वादिभव्व-जण-मोदग-मोदयारी भिंडस्स राजसम-दिस्स-मणुण्णहारी।
णेगाजणा पद-विहार-पवास-काले भासेंति धम्म-गीण-गण्ण-पहावयारी।।30।।
रण्णस्स पादव-विणीद-सिरस्स कूडं णम्मेंति साहु-चरणेसु सुसाहु-हेदुं।
णीराधरी णदणदी पद-खालणं च हत्थग्ग-पुण्ण-कलसव्व णएंति चिट्ठे।।31।।
जिण्णाणि वत्थ-इग-जुत्त-जणा णमोत्थु कुव्वेंति एलग-धरी वदहीण-सव्वे।
इच्छेंति णं मुणिवदं तवहीण-तत्ता मंसं महुं हणण-पत्थ -सुचत्त-हेदुं।।32।।
सामण्ण-सागह-मुणी विमदो विसुद्धो सुद्धोवजोग-परिसीलण-कुंद-खुल्लो
एगं च एग-गुण-णेग-गुणी हि साहू पारोप्परं सुहद-पुच्छ-पसण्ण भूदा।।33।।

सन् 2000 में पंचकल्याणक एवं गजरथ तप युक्त उचित भावों वाला था, उसी समय पाँच दीक्षाएँ सिद्धान्तानुसार होती हैं, पश्चात् संघ झाँसी की ओर जन-जन को धर्मलाभ हेतु विकार कर जाता है।।28।। क्षुल्लक विशालसागर, क्षु. विश्वधर्मसागर सम्यक् साधना रूप मुनि पद को प्राप्त हुए। सविता, संगीता बनी आर्यिकाएँ विनतश्री, विपश्पना श्री एवं सरजूबाई बनी क्षुल्लिका विलक्षणाश्री हुई।।29।। भिंड के गजरथ में राजाओं के समान दृश्य लोगों को प्रसन्न कर रहे थे, क्योंकि वे एक से एक अत्यंत मनोज्ञ थे। पद विहार के समय अनेक लोग उसी दृश्य को कह रहे थे और यह भी प्रतिपादित कर रहे थे कि आचार्य विरागसागर के संघ की इस तरह की प्रभावना।।30। अरण्य के पादप उच्च सिर की विनम्रता इन साधु चरणों में इसीलिए प्रकट करते हैं कि हे साधु ! आप सिरमोर हैं। हमारे सिरमोर के कूट को आप जैसे साधु ही बचा सकते हैं। नीर को धारण करने वाली नदियाँ पाद-प्रक्षालन को हस्ताग्र से पूर्ण कलश की तरह इसलिए खड़ी है कि आप जैसे संत ही हमारी प्रशान्तधारा को सदैव प्रवाहशाली बनाए रख सकती है।।31।। अरण्य के मध्य जीर्ण एक वस्त्र युक्त जैसे ही **नमोऽस्तुते** करते, वैसे ही ऐसा प्रतीत होता है, मानो वे ऐलक व्रत से हीन ऐलक पद चाहते हों। वे तप्त, क्षीण कायतपी है, तपव्रत से रहित, मुनिव्रत की इच्छा करते हैं, इसलिए आचार्यश्री के चरणों में आकर मांस, मधु, शिकार आदि को छोड़ने के लिए प्रार्थना करते हैं।।32।। श्रमण्य की साधना अर्थात् श्रमण के मूलोत्तरों से गुणी, साधना से मुनि विमद और विशुद्ध होते हैं। मुनि विशुद्धसागर, मुनि विमदसागर, क्षुल्लक कुन्दकुंदसागर आदि शुद्धोपयोग के परीशीलन से कुन्द/धवल बनना चाहते हैं। वे कुंद-कुंदाचार्य के एक से एक गुणों से पूर्ण गुणी साधु बनना चाहते हैं तभी तो वे सुहृद भावपूर्वक मिलते और प्रसन्नता के साथ एक दूसरे की साता पूछते हुए शुद्धोपयोग की दृढ़ आस्था की कामना करते हैं।।33।।

साहुत्त-मूल-गणिसंघ-णिवास-वासे सम्मं मदिं च परमत्थ-पगास-दाइं।
जाएज्ज सम्मदि-मुणीसर-ताव-णिट्ठं चिट्ठेज्ज काणउर-पुरे समिदेज्ज णिच्चं।।34।।
सो सम्मदी जय-जयी वि परीसही वि आवास-सुण्ण-परिसुण्ण-जणाण खेत्तं
पत्तेदि तत्थ बहु-डंसय-कट्ठ-छिण्णं सम्मो स भिच्यपताडण-सेट्ठ-गेंही।।35।।
एगो वरेण्ण-तव-णायण-अण्ण-सूरी सम्मां-विराग-अणुलेहण-अज्ज-लेहीं
सड्ढा-विराग-रस-राज-विमुत्त-पेक्खी दंसेज्ज सावग-सुही जय-संसएंति।।36।।
सच्छे दु णीर-पउरे अवगाहणेज्जं गंगा समं सलिल-सागर-वीदरागं
किं णो कुणेज्ज परमं अदि-पावणं च अप्पासमा कुणदि अप्पा-पवाह-णिच्च।।37।।
पत्तेज्ज सो लखणउं तध जेण-पत्तं तं सेट्ठि सावग-जणा पद-पक्खलेज्जा।
सामिप्पमेव पुर-संगह-पण्णरस्सं साहस्स-मुत्ति-मण-मुत्ति-सुणंदजुत्तो।।38।।
अस्सिं पुरे तिरियगेह-इगो हि हत्थी सो सावणो बहुदुही माणखिण्ण-पुण्णो।
तत्थे विराग-वरूणा णवयार-मंतं सुण्णेज्ज लाह-भव-इट्ठ-पसाहणत्थं।।39।।

साधुता तो संघ के साथ रहने में हैं, उनके समीप वास करने से आत्म-वास/आत्मा का परम निवास होता है, उनके होने पर मति सम्मति को प्राप्त होती है, जो परमार्थ प्रकाश दायी होता है। आचार्य सन्मतिसागर तपस्वी हैं, वे तप निष्ठ कानपुर में रहते हुए समित्व का संदेश देते हैं।।34।। वे आचार्य सन्मतिसागर जयजयी, परीषहजयी, आवास से शून्य, लोगों की परिचर्या से रहित क्षेत्र को प्राप्त होते हैं। आगम का स्वागत तो डांस मच्छर कष्ट देकर उन्हें सताकर करते हैं पर वे शान्त, श्रेष्ठीजन के प्रताडन से नौकर चाकर अशान्त, दु:खी, पर आचार्य सम्यक्भाव से यही कहते, इनका कार्य ताडन/सुरक्षा करना है, अत: इन्हें मत प्रताडित करें।।35।। आचार्य सन्मतिसागर तपनयन सूरी थे, दूसरे आचार्य विरागसागर विराग की समीक्षा उसका अनुलेखन एवं उसके वास्तविक स्वरूप की ओर अग्रसर आज विराग श्रद्धा का रहस्य इस कानपुर के उत्तर प्रदेश के राज में विमुक्त/खुलकर विराग और तप के दर्शन कर रहा था, श्रावक, सुधीजन आचार्य सन्मतिसागर की जयनाद करते और विराग की श्रद्धा पर भी जयकार करते हुए दोनों की प्रशंसा करते हैं।।36।। गंगा के समान वीतराग रूपी सलिल तो समत्व के सागर को दर्शाता है। उसके स्वच्छ नीर में अवगाहन जो भी करेगा? वह गंगा उसको परम पावन क्यों नहीं करेगा। जिसका जल प्रवाह पवित्र है, जो स्वयं पवित्र है, वह पवित्र भी अपने समान ही करता है यह लोक में प्रचलित है।।37।। संघ लखनऊ को प्राप्त हुआ, जहाँ जैन गजट कार्यालय को देखा, वहाँ पर श्रेष्ठीजनों एवं श्रावकों ने पाद प्रक्षालन किया। फिर समीप में स्थित पुरा संग्रहालय का अवलोकन किया। जहाँ पन्द्रह सौ मूर्तियाँ लॉकर में बंद है, वे भी अतिमनोज्ञ आनंददायी हैं।।38।। लखनऊ के चिड़ियाघर में एक हाथी का बच्चा बहुत दु:खी, खिन्न युक्त था, वहाँ पर आचार्य श्री विरागसागर जी की करूणा णमोकार मंत्र को श्रवण कराती ताकि वह भवलाभ को प्राप्त हो सके।।39।।

मज्झं च पच्छ-बहुधण्णधरापदेसी अत्थिं त्तिं उत्तर-पएस-पयाग-पूदो
आउज्ज-हत्थि-महुरा पुरचंद-सिंहो वाराणसी वरद-सीस-सुपास-पासो।।40।।
धण्णा तिसट्ठी-पुरिसा इध खेत्तपूदा सड्ढाइ तित्थ-परमा परमत्थ-दाई।
जत्थेव पत्त-मुणि-णायग-सम्मदी वि सूरी विराग-मुणि संघ-विराग-पेही।।41।।
वाराणसी-णयर-आगद-संघ-तुट्ठो अण्णो वि राजजस-सूरि-पसंत-संतो।
एगादु मंच-विचिट्ठ-जणाण बोहे धम्मो अहिसं-परमो सयलाण णंदो।।42।।
मंसो महू य सुर-आवस-जूय-जुत्ता अस्सिं जुवा जदि चएज्ज तधा हि अम्हे
गेहे कुले वि परिवार-जणाण मज्झे तोसो सुसासण-अदीवसणेह-दंसे।।43।।
वाराणसी परम-पावण-कासि-णामा सिंचेदि णाण-चरियं बहु दंसणं च।
अत्थेव वास-पहु-दंसण-पूद-भावो होस्सेदि एरिस विसास-जणाण अत्थि।।44।।
भट्टारगो धरमकित्ति इधेव चिट्ठे विज्जालए णय-सियाद-सुवाद-णाणं
सिद्धंत-आगम-पुराण-परं च अत्थं लब्भेदि पागिद-सु-सक्किद-भास-णीरं।।45।।

मध्यप्रदेश के अनन्तर उत्तर-प्रदेश की धरा जहाँ प्रयाग, अयोध्या, हस्तिनापुर, मथुरा, चन्द्रपुरी, वाराणसी, सिंहपुरी आदि के स्थल पवित्र हैं। जिसे सुपार्श्वनाथ, चन्द्रप्रभ, पार्श्वनाथ आदि ने पवित्र बनाया।।40।। इस क्षेत्र के सभी तिरेसठ शलाका पुरुष धन्य हैं, जिन्होंने इसे पवित्र बनाया। वे तीर्थ, परम तीर्थ हैं, श्रद्धा के केन्द्र हैं, जो परम अर्थ-वीतराग के दर्शन कराने वाले हैं। परमार्थ तो परम तीथ्र पर ही है। जहाँ पर आ. सन्मतिसागर सन्मति को प्राप्त होते हैं और जहाँ पर आचार्य विरागसागर और उनका संघ विराग की प्रेक्षा करता है।।41।। वाराणसी नगर में आगत संघ अति संतुष्ट था। राजयश सूरी भी प्रशान्त तो थे ही, ये प्रशान्त संत हैं, ऐसा एक समय मंच पर स्थित हुए, लोगों को समझाते हैं। सम्पूर्ण प्राणी मात्र के लिए आनंद करने वाला 'अहिंसा परमोधर्म:' है।।42।। आज इस समय मांस, मधु, शराब, जुआ आदि युक्त युवा हैं, वे यदि इन व्यसनों को छोड़ने का संकल्प लेते हैं तो हमारे घर, कुल और परिवारजनों के बीच की दूरियाँ कम होंगी, आपसी संतोष, सुशासन और परस्पर में एक दूसरे में स्नेह भी दिखाई देगा।।43।। यह तो निश्चित है कि वाराणसी वारा और अस्सी दो नदियों का क-जल आसी-राशि, का-गंगा, असि-अस्सी दोनों ही नदियाँ अत्यंत पावन है, जो जलसिंचन तो करती ही है, परन्तु वे नदियाँ ज्ञान, चरित्र और श्रद्धान की प्रमुखता का भी सिंचन करती हैं। इसलिए लोग यहाँ प्रभु दर्शन के लिए निवास करते हैं और गंगा के जल की तरह पवित्र भाव रखते हैं। यही विश्वास लोगों का है कि जहाँ गंगा का नीर है, वहाँ पवित्र भाव होगा ही।।44।। श्रवणवेलगोला के भट्टारक धर्मकीर्ति भदैनी क्षेत्र में स्थित स्याद्वाद महाविद्यालय में मानो स्याद्वाद से उत्तम नय और उत्कृष्ट विचारों का ज्ञान ले रहे थे। वे सिद्धान्त, आगम, पुराण आदि के अर्थ का लाभ ले रहे थे। वे प्राकृत और संस्कृत भाषा के नीर को भी प्राप्त कर रहे थे।।45।।

भट्टारगो गुरुवरं अविदंसिदूण वेय्याइवच्च-परमं करिदूण धण्णो।
जाएज्ज तच्च-परिशीलण-सुत्त-क्षारं सिद्धंत-आगम-पुराण-पमाण-वारं।।46।।
सिंहेपुरे विजय-अज्जिय-संघ-जुत्ता आसीस-पत्त-परमागम-णंद-मुत्ता
णेज्जे विराग-सुदसार-सुणाण-लाहं आसास-सासण-जिणं चरियं पवित्तं।।47।।
पमुदिद-वदणा विजयामदी कर-गहिद-पिच्छेण णमोत्थु तं।
सुद-णिहिद-पदं अणुजाणए दिणयर-सम-भासिद-भासदे।।48।।

भट्टारक धर्मकीर्ति गुरूवर के दर्शन कर उत्तम वैय्यावृत्ति करके धन्य हुए वे आचार्य विरागसागर से तत्त्व परिशीलन सूत्रों के सार, सिद्धान्त, आगम, पुराण आदि के प्रमाण से पार को /सम्यक् अनुशीलन को प्राप्त हुए।।46।। आर्यिका विजयमति माता सिंहपुरी में आगत आचार्य विरागसागर से आशीष युक्त परमागम रूपी आनंद की मुक्ताएँ लेती हैं, वे विराग, श्रुतसागर, सम्यग्ज्ञान के लाभ को प्राप्त करते हैं। उनका संघ सुख साता पूछता है जिनशासन और चर्या की पवित्र भावना को।।47।। आर्यिका संघ प्रमुदित और गणिनी आर्यिका विजयमतिमाताजी कर में गृहीत पिच्छी से उन्हें 'नमोऽस्तु' करती, फिर श्रुत प्रतिपादित पद को जानती हैं तब मानों सूर्य की आभा, भा-उत्तम विराग, भा-वाणी रूपी भा-दीप्त किरणें ही प्रकट कर देता हो ऐसा प्रतीत होता है।।48।।

इदि अट्ठावीस विरागो समत्तो।

उणत्तीस-विरागो

प्रमिताक्षर जगदे जणा विविह-घादगदे मुणिवेस-धार-धरणी-खरदे।
वय-बाण-छिण्ण-मण-खिण्ण-पदे रद-रत्त-पत्त-गुण-दोस-किदे।।1।।
दोसेहि मुत्त-चरियं समिदे वि मूले रत्तो ण पावदि सुहं मण-खिण्ण-जादे।
अप्पं च अप्प-किरियं मुणिदूण णिच्चं गच्छेदि गच्छ-णिलए णिलए हि चिट्ठे।।2।।
जस्सिं पा दोस-मद-मोह-कुगंथ-भावो मग्गी-कुमग्गि-मणुजा णद-सील-सेवी।
आयार-णिट्ठ-परिपुण्ण-विराग-णेही वाहं च चत्त-चरिया-चारिया पउत्ते।।3।।
मग्गे अणेग-णद-णीर-पवाहिणी वि आदिल्ल-इल्ल-मणुजा णर-णारिबाला।
बालो त्ति अम्ह इध बोह मुणीसरो तुं अम्हाण णत्थि विणयंजलि-किंचि भत्ती।।4।।
विज्जा-विही महुर-हास-णदीण-दाणी बाला कुमारि-कमणीय-कुणंत-कंती।
चुक्केज्ज णो चरिय-मग्ग-पदूसणत्थे तत्तो णयाणयपही गदि-सील-सेलं।।5।।

इस जगत् में नाना प्रकार के लोग हैं, कोई घात की ओर अग्रसर, कोई मुनिवेषधारक धरणी पर क्षार पैदा करते अर्थात् आपसी मन-मुटाव को धारण कर मुनि पद की गरिमा में दोष लगाते, वे वचन रूपी बाण फैंकते, छिन्न करते मन, पद को। जो राग में रंगे हुए होते हैं, वे पात्र तो गुणों के साथ दोष ही पैदा करते जाते हैं।।1।। दोषों से रहित चर्या, समिति के मूल में यदि स्थित है तो सुख पाती है, अन्यथा नहीं, मूल में स्थित होने वाले का मन खिन्न नहीं होता। इसलिए कहा जाता है कि अपनी क्रिया को छोड़कर अपने आपके गच्छ में वही रह सकता है, जो गच्छ के निलय में अपने क्रियाओं को करता है, अर्थात् मुनिसंघ आचार्य के निर्देशानुसार ही अपने पद की गरिमा बढ़ा सकता है।।2।। जिसमें किसी तरह का दोष, मद, मोह, कुगंथ भाव आदि नहीं होता है, वे मार्गी विरागमार्गी हैं। परन्तु मार्ग में कुमार्ग वाले लोग नतशील, सेवाभावी तभी होते हैं, जब वे आचारनिष्ठ हो, विराग के स्नेही आचार्य विरागसागर इसकी पूर्णता को प्रकट करते हैं। वे मार्ग में आने वाली बाधाओं को छोड़कर एक मात्र चारित्र की चर्या में प्रवृत्त रहते हैं।।3।। वाराणसी के पश्चात् मार्ग में चलते हुए तालाब, नदियों का नीर, नत होकर मानों अपने प्रवाह से प्रवाहिनी रूप चाहते हैं। आदिवासी लोग, नर, नारी, बालक आदि कहते - हे मुनिश्वर ! हम बाल हैं, हमे बोध दें। इस विनयांजलि में हमारी भक्ति भी नहीं।।4।। वे गतिशील, नयमार्गी, कुनय को महत्त्व नहीं देते, अपितु वे अपनी मुनिचर्या से युक्त, सदैव गतिशील शैल/सम्मेदगिरी की ओर प्रस्थान कर जाते हैं। विद्या, विधि की मधु हास परिहास नदी की तरह नत ही अज्ञानता को प्रकट करता है। उस मार्ग में अनेंक बालाएँ, कुमारियाँ अपनी कमनीयता की कान्ति प्रकट करती, पर उस मार्ग में प्रवृत्त प्रदूषण को नहीं देखते हैं।।5।।

केई त्ति काम-कमणिज्ज-जणी दु मण्णे अम्हाण कम्म-सयला णिय-संस-भावा।
इत्थे कुणेंति तध रागि-परे वि दोहो मोहारि-वारि-वर-वारण-झुंसएंति।।6।।
सेलव्व सेल-वद-पालग-सम्मलेही सम्मेद-मेद-हणणे अणुगच्छएदि।
संसादु मुत्त-परमत्थ-सुतित्थ-इच्छी पत्तेज्ज सेह-सिहरं च विराग-पुण्णं।।7।।
णेगा-तवी-थल-थली वण-रूक्ख-पंती अज्जे थिरा हि अणुपासदि पास-जेत्तुं।
पासाण-पावण-पही परमेसरत्तं दाणं च उच्च दिढ-सिंखल-णंदएज्जा।।8।।
आराहगा तण-लदा अणुपंस्स-माणा तं सागदं उभय-हत्थ-पसार-भूदा।
आलिंगएंति वणराजि-पहाण-वक्खं भासेंति ते जगजणा इध तावएंति।।9।।
जम्मत्थली परम-पावण-वीर-भूमी धम्मप्पहू वि रदणो रदणत्तयाणं।
कुंडो कुणेदि वइसालि-विसाल-खेत्तो पावापुरी/गेह-गिहि त्ति सुरागजगेही।।10।।
आरा-सरस्सई-गिहो पुर-संपदाणं संरक्खणस्स महदत्थल-पोत्थागारो।
माणिक्क-वण्ण-रजदाणसुवण्णगाण मुत्तीण ठाग-महिलासम-देव-भागो।।11।।

इस जगत् में नाना प्रकार के लोग होते हैं, नाना प्रकार की नारियाँ भी, काम से कमनीय, अपने को महत्त्व देने वाली, अपने कर्म में लीन, प्रशंसा की इच्छुक इधर से उधर करती रहती हैं, वे रागी, अन्य में द्रोह उत्पन्न करती हैं। वे मोह रूपी शत्रु की वारि उत्तम बाढ़ को भी ध्वंस कर देती है।।6।। जो व्रत पालक होते हैं, वे उनकी सम्यक् समीक्षा करती हैं। वे व्रतों में शैल की दृढ़ सम्मेद शिखर पर मेद-राग-द्वेष एवं मोह को नाश करने के लिए ही पहुँचते हैं। वे शंसा-प्रशंसा से दूर परमार्थ एवं उत्तम के इच्छुक विराग-पूर्ण शैलशिखर को प्राप्त हुए।।7।। यह अनेक साधकों की तपस्थली है, यहाँ की वनस्पतियों के प्रत्येक वृक्ष पंक्तिबद्ध आज भी स्थिर तपस्वियों की प्रतीक्षारत हैं, वे पार्श्व-अपने को जीतने के लिए उन्हें देखती हैं जो तप करते हैं। यहाँ के प्रत्येक पाषाण पावन हैं, मार्ग पथिक बना हुआ परमेश्वरत्व को दर्शा रहा है और उच्च दृढ़ श्रृंखलाएँ आनंदित कर रही हैं।।8।। आराधक तृण, लताएँ उन्हें देखती हुई दोनों हस्त प्रसारित बनी मानो उनका स्वागत ही कर देती हैं। वे तृण, लताएँ वनराजियों को आलिंगगित करती तथा पाषाण को वक्षस्थल से लगाती हुई यही कहती हैं यहाँ जो भी लोग आते हैं, वे तप अवश्य करते हैं।।9।। इस क्षेत्र में परम पावन भूमियाँ हैं। वीर, धर्मनाथ आदि तीर्थंकर यहीं हुए, उन्होंने रत्नत्रय की प्रभा फैलाई। रत्नपुरी के रत्न धर्मप्रभु, वैशाली के विशाल क्षेत्र के रत्न स्थल कुंडपुर भी यहीं है, पावापुरी, पावन गृहों से युक्त, उत्तम राज से राजगृही पवित्र हुई।।10।। इसी शैल के निकट 'आरा' तो सरस्वती भवन के लिए जाना जाता है। यहाँ अनेक पुर संपदाओं (पाण्डुलिपियों, अभिलेखों, पत्रों आदि) को सुरक्षित किया गया, यहाँ का वृहद् पुस्तकालय इसी के लिए विख्यात है। यहाँ पर माणिक्य, रजत, सुवर्ण, आदि मूर्तियों का भी संरक्षण है। यहाँ का महिलाश्रम भी देव भाग है।।11।।

सूरी कुसग्ग-सम-संघ-अणंद-जुत्तो पत्ते विराग-सुद-राग-पसण्ण-मुत्ति।
पारोप्परं च परमं जद-जोग्ग-ठाणं दादूण अक्खअ-णिहिं अणुदाण-सुत्तिं।।12।।
विज्जस्थलं अणुवयं तव जोग्ग-ठाणं णिव्वाण, झाण-मअ-वाद-सओ परो त्ति।
सुद्दंसणं रदि-विहीण-परं च खेत्तं णालंद-णंद-पुर-णाण-विसाल-खेत्तं।।13।।
भादु त्ति बे वि अकलंक-कलंक-सुणो विज्जा-विवेग-णिकलंक-समप्प-जुत्तो
दाऐदि सासण-जिणं णिय-जीवणं च तक्का-वितक्क-जिण-दंसण-दसंएज्जा।।14।।
पोम्मालए पउम-पेम्म-पदावलिं च पोम्माइ संग-पउमा-सारि-पम्म-सारं।
दंसेदि तं च अकलंक-सरं सरीए वादीण वादि-परिवादि-विहंडणत्थं।।15।।
बोद्धे मदे मद-मदे वि अणेग-रूवे विक्खाद-लोग-पर-देस-जणा कहेंति।
सुण्णो खणिक्खय-विणाण-अणप्पवादी धम्मे रदा किरिय-सील-तरी वियारी।।16।।
पुण्णो विहार-उवरज्ज-विराग-जुत्तो णिव्वाण-ठाण-बहुणायग-णाण-मुत्तो।
विज्जाथली महद-विज्ज-विणाण-केंहो तं खंड-खंड-अवसेस-कहां बुहेंति।।17।।

आरा में आचार्य कुशाग्रनंदी भी अपने संघ के साथ आनंद युक्त विचरण कर रहे थे, वे एवं आचार्य विरागसागर तो श्रुतराग युक्त आपस में परम पद योग्य स्थान सहित प्रसन्न मूर्ति को ध्यान में रखकर वे मानो अक्षयनिधि एवं उत्तम सूक्तियों का दान देते हैं।।12।। विहार अंचल में अनेक विद्यास्थल, अनुपम तप योग्य स्थान को प्राप्त होते हैं। निर्वाण, ध्यान, मत, वाद, स्वमत ओर परमत भी यहीं देखे जाते हैं। सुदर्शन मुनि की निर्वाण स्थली, रतिविहीनता के परम आदर्श को दर्शाती है। यहाँ के नालंदा का पुराज्ञान भी अपनी विशालता के परिचय को देता है।।13।। यहीं पर कलंक से शून्य, सभी विद्याओं में निपुण अकलंक और निकलंक दो भाई जिनशासन और जैनदर्शन के प्रति समर्पित थे। निकलंक तो जिनशासन के लिए अपना जीवन ही नष्ट कर देता है।।14।। जिस स्थान पर अनेक पद्मालय थे, उन पद्मालयों में अनेक पद्म प्रेम की पत्रावलि को लेकर पद्म के साथ पद्मा और सरस्वती के पद्म सदृश परा के सार को दिखला रहे थे। वहीं पर सरस्वती पुत्र को शरण मिलती है, तभी तो वादियों, परवादियों के वाद को खंडित किया जाता है।।15।। बौद्ध मत में अनेक मत हैं, अनेक विचारक हैं, वे लोक और परदेश में भी विख्यात हैं, ऐसा कहते हैं लोग। उनमें कोई शून्यवादी, क्षणिकवादी, विज्ञानवादी, अनात्मवादी भी हैं। वे धर्म में रत क्रियाशील, तपस्वी एवं अनेक विचार वाले हैं।।16।। विहार का सम्पूर्ण क्षेत्र, राज्य विराग युक्त था तब, अब आचार्य विरागसागर के विहार से भी हो रहा। बिहार अनेक महापुरुषों का निर्वाण स्थान, ज्ञायक आत्म स्वरूप का प्रतिपादक, ज्ञान का मूर्त रूप है। यहीं था विश्वविख्यात विश्वविद्यालय, नाना प्रकार की विद्याओं, विज्ञान आदि का केन्द्र। उन खंड/भागों के खण्डहर, अवशेष कह रहे हैं कि कोई तो इन स्थलों से खणु अनेक प्रकार के मत-मतान्तरों से परिचित हो।।17।।

वेसालि-सालि-गणरज्जं-गणीण विज्जा गणी कुणेज्ज गुणएज्ज सुकीलणं च।
वीरस्स कुंडलपुर-पत्त-सुधण्ण-मण्णे णिव्वाण-ठाण-पुर-णेग-सुरम्म-पावं।।18।।
वंदेज्ज संघ-गण-णायग-साहु-संता संतं-पसंत-जल-पुण्ण-सरं च पादं।
सव्वत्थ अत्थ परमो अदि वीदरागो भावो हि दंसि सयला विरमेंति अज्ज।।19।।
अज्जीग-संतिमंदि-मादु-इधेव पावे आगच्छिदूण परिवंददि सूरि-णंदं।
पच्छाचरेदि पुरिराजगिहिं च संघो कूडाण पंचकमसो दिवसे दिवंगं।।20।।
वीरस्स देवस-विउलाचल-भव्व-खेत्तो संतिप्पसाद-सरईइ सरे सुभव्वा।
मुत्ती कुणेज्ज मणुजाण मणुण्ण-संतिं साहूण देसग-गिरिं विउलं पदेंति।।21।।
वेभार-कूड-सददं अणुभासदे हि भो संत ! तुम्ह वाइभार-विराग-पुण्णा।
दिक्खंगणे परम-दिक्ख-खणे पइण्णं कीएज्ज तं ण विसरेज्ज इणं च देसं।।22।।
कूडो त्ति रम्म-रदणागिरि-रत्ति-दिण्णे णाणं च दंसण-चरित-पहाण-मग्गं।
आराम-गेह-परमत्थ-पगास-दीवो आसाय-वास-णिलयो गदिसिद्ध-खेत्तो।।23।।

वैशाली के विशाल गणराज्य में धान्य ही धान्य, समृद्धि ही समृद्धि तो थी, पर गणियों के गण यहाँ विद्या से अपने को गणी/गीण बनाते, वे गुण ग्रहण करते। इन क्रीडन एवं विद्या केन्द्र के पश्चात् आचार्य श्री वीर के जन्म स्थान कुंडलपुर और निर्वाण स्थान पावापुर दोनों को प्राप्त होती हैं जो अत्यंत रमणीय हैं।।18।। यहाँ पर शान्त, प्रशान्त, जल से पूर्ण सरोवर के मध्य चरणारविंद की वंदना करते, संघ के सभी साधु, आचार्यश्री भी, ताकि शान्त बने रहें। यहाँ सर्वत्र परम वीतराग अब भी है, जिसे देखकर लोग आज भी शान्त भाव हेतु ठहरते हैं।।19।। पावापुर में आर्यिका शान्तिमति माताजी यहाँ आकर सूरि वंदना को करती है। इसके पश्चात् संघ राजगृही को प्राप्त होता है। जहाँ के पंच कूटों की वंदना पांच दिन में क्रमशः की जाती है, ताकि अपने शरीर को दिव्य बना सकें।।20।। महावीर की देशना का क्षेत्र विपुलाचल अति भव्य क्षेत्र है, जहाँ पर साहू शान्ति प्रसाद की स्मृति में स्मारक में चार भव्य मूर्तियाँ हैं, जो लोगों के मन को मनोज्ञता और शान्ति प्रदान करती है। यही स्थल साधुओं के लिए देशकगिरि-देशना की वाणी भी उत्तम वीतराग भावों की देशना के विपुल परिणामों को उत्पन्न करती है। अर्थात् विपुलाचल पर्वत का देशना भाग मानो यही कह रहा हो कि अपनी वाणी में वीतराग वाणी को अचल स्थान दें।।21।। द्वितीय वैभारकूट तो लोगों को यही कहता रहता है कि भो संत! आप लोग वइभार-भार से रहित-संग परिचत्ता, परिभग्गह-मुच्छ-विरता विरागपूर्ण हैं। क्योंकि आप लोगों ने दीक्षा के प्रागंण में परम दीक्षा लेने पर जो प्रतिज्ञा की, उसे मत भूल जाना और इस वेश-निर्ग्रन्थ परम्परा को बनाए रखना।।22।। तृतीय रम्यकूट रत्नकूट-रत्नगिरी तो रात-दिन ही देशना दे रहा है कि सम्यग्ज्ञान, दर्शन और चारित्र मार्ग आरामगृह है, विशुद्ध आत्मगृह है, जो परमार्थ रूप है, पूर्ण प्रकाशवान् दीप-केवलज्ञान है। इसका आधार, इसका वास आश्रम वास, आशाओं के निलय नहीं, अपितु उत्तम गति-सिद्धगति का क्षेत्र है।।23।।

कूडो चदुत्थ चदुवास-चदुत्थ-दाणं दाएज्ज सो परिणिसेह-विराम-रामो
आदंग-तक्कर-जणाण णिवास-कदा हवेज्जा जाणेज्ज रक्खण-णएज्ज-कदा हवेज्जा।।24।।
कूडे वि पंचम-थले बहुभत्ति-जुत्ता संघस्स साहू-सयला समदा-विरत्ता।
दंसेज्ज दंसग-सिरि पडिमाण भव्वं सोवण्ण-मोत्तिग-मणीण मणुण्ण-पत्ता।।25।।
कित्तिं महं च णिलयं महवीर-कित्तिं णिम्मेज्ज जस्स विमलेण सरस्सइं च।
णेगं च खंडहर-गुंफ-पहाण-खेत्तं वीरायणं च परिदंसदि चंदणाए।।26।।
सज्झी सिरिचंदण-चंदणाए अत्थे विराग-परिसिंचण-देसणाए।
अत्थं पदेज्ज परमत्थ-पगासणत्थं लाहं कुणे पवयणांदु गणी-वएणं।।27।।
लब्भेज्ज तत्थ अदिरम्म-रमा-गुणावं तं पच्छ सो सिहर-सेल-पडिं पदं च।
एगं पुरं च महविज्जलए णिवेसे सम्माण-णीलम-णियायगणी कुणेंति।।28।।
सूरि-विराग-पद-राग-पराग-पुण्णा जत्थे पडेंति तध पोम्म-समा किदी हि।
जाएज्ज आगद-जणण वि सागदो वि किं णो हवेज्ज परमाणि दिवेस-फुले ? ।।29।।

चतुर्थ कूट चतुर्थ आसीन तपस्थान तो सदैव चातुर्य दान देता है, परन्तु यह रम्य आरामों का राम क्षेत्र, निषिद्धक्षेत्र बना हुआ है। इससे यही आशंका बनी रहती कि जो तप का आराम था, वह आतंक, तस्करजनों का आराम स्थल कब हो जाए यही आने वाले दर्शनार्थी में बनी रहती है। जिसे रक्षा दी जाए ताकि विराग की शय्या पुनः आराम दे सके।।24।। आचार्य संघ के समस्त साधु समत्व युक्त, विरक्त, बहुभक्ति भाव तथा मनोज्ञ परिणाम को प्राप्त पंचम कूट पर भी तो पंचमगति का ही दर्शन करते हैं, वे भव्य दर्शन श्री वाली प्रतिभाओं को देखते हैं, वहाँ पर स्वर्ण, मणि, मुक्ताओं आदि की प्रतिमाओं के दर्शन करते हैं।।25।। राजगृही में आचार्य महावीर कीर्ति को स्थायित्व देने के लिए आचार्य विमलसागर श्री द्वारा सरस्वती भवन को बनवाया गया। यहाँ साध्वी श्री चंदना का वीरायतन तो वीर के समस्त आयतन को दिखला रहा था, यहाँ के अनेक खंडहर एवं गुफा प्रधान क्षेत्र को प्राप्त आचार्य विरागसागर का संघ महावीर की कीर्ति, सरस्वती के स्वर और अनेकता के सूत्र में बांधे रखने वाले वीरायतन को दर्शन करता है।।26।। साध्वी चंदनाजी-सज्झी-सुलझी धी-बुद्धि वाली, चंदना की तरह चंदन और उसकी श्री-समित्व श्री दिखलाने के लिए प्रयत्नशील है, यहाँ विराग के सींचने के लिए विराग देशना को महत्त्व देती है, क्योंकि उनके अर्थ में - प्रयोजन में परमार्थ प्रकाशनार्थ अर्थ को महत्त्व दिया जाता है। उसी के लाभ के लिए आचार्यश्री के प्रवचन से अर्थ-तत्वार्थ के रहस्य को स्पष्ट किया जाता है।।27।। उसके पश्चात् अतिरम्य रमा सदृश गुनावा को प्राप्त होते हैं। वहाँ से एक नगर के गर्ल्स कॉलेज में स-सम्मान स्थान प्राप्त करते हैं। वह कॉलेज नीलम और उनके पति वकील साहब द्वारा विश्राम के लिए दिया गया। फिर शिखरजी की ओर पद चल पड़े।।28।। आचार्य विरागसागर के चरणकमल तो राम/लालिमा से परागपूर्ण थे, वे जहाँ पड़ते वहाँ पद्म समान आकृति बन जाती है। जो आगत जनों के लिए स्वागत गुण भरती है। सो ठीक है-क्या दिपेश के उदित होने पर पान नहीं खिलते हैं।।29।।

संड्ढेज्ज भत्त-सयला मणुजा हवेंति ते सिक्ख-हिंदु-सिव-सिंधिय-सुद्द-खत्ती।
खत्तं मुणेंति गण-णायग-माण-दिण्णं मज्झं च मंस-विसणं चय सिक्खएं ति।।30।।
आगारि-विज्ज-परिवार-पफुल्ल-जुत्ता सक्कार-सम्म-अणुदास-गहेज्ज सुत्ता।
आसीस-पत्त-सयला परिवार-मुत्ता अत्थे विहार-विहरेज्ज णिसंक-साहू।।31।।
ते माणवा मणु-मणुहार-विमुत्त-जुत्ता सिक्खाण सिक्ख-अदिवीर-सु-बुद्ध-बुद्धा।
सम्माण-हीण-अणुसासण-रित्त-भुत्ता दिव्वाण दाणव-मणा वि छुहा कुणेदि।।32।।
भूख बनाती दानव, मनु मन को। सूत्र सुहाती तापस, तप तन को।।
मेहादु वारि-परि पुण्ण-णदी सरी वि बुद्धीधणी वि धरणी-अहि-णंद-भूदा।
अप्पंगणे सुहद-विंदुय-सिंधु-तुल्लं जाणंत-णद-मुणमाण-सुहिं लहेंति।।33।।
ते वारि-वारिधर-वारिद-वारिवाही कूडेसु अग्ग-तवसीण भणेंति णिच्चं।
तत्ती तुहं कध अहं मह-सेव-मेहा सिंचेति रूक्ख-वण-राजि-तधेव-चिट्ठे।।34।।
मे गंठ-गंठ-कर-गेहि-इधे तधेव मेहा अहं च मणुजाण वि मेह एंति।
ते पस्स पस्स अहिलेह-सदा कुणेंति एसो करी हरिवरो धरएंति अण्णं।।35।।

इस जगत् में सभी श्रद्धालु भक्त होते है। वे सिक्ख, हिन्दु, शिव, सिंधि, शूद्र, क्षत्रिय आदि सभी हो सकते हैं। यह सिक्ख परिवार क्षेत्र-क्षत्रिय भाव को समझता है, तभी तो आचार्यश्री का मान-सम्मान करता है और वही मद्य, मांस आदि व्यसन को छोड़ने की प्रतिज्ञा लेता है।।30।। समस्त आगारी विद्यालय परिवार प्रसन्न था, वह संस्कार, सम्मान आदि के बदले अनेक सूत्र प्राप्त कर गया, उस परिवार की सभी मुक्ताएँ मानों मुक्ताओं का आशीष प्राप्त कर यही कामना करते हैं कि इस विहार क्षेत्र में जहाँ आतंक की आशंका है, वहाँ नि:शंक विचरण कर रहे हैं।।31।। बिहार में मानव हैं, मनु हैं, मनुहार आदि भी हैं, परन्तु आतिथ्य से रहित भी हैं, ऐसा नहीं था, क्योंकि यहाँ बुद्ध और महावीर की शिक्षा और पाटन साहर जैसे सिक्खों की शिक्षा भी है, कुछ लोग सम्मानहीन, आदिवासी अनुशासन से रहित भूखे हैं। वे देवों की धरा पर दानव बन जाते हैं।।32।। मेघों के बरसने से नदी, नद, तालाब आदि जल से पूर्ण हो जाते हैं, यह बुद्धिमान, धनिक, धरणी पर शयन करने वाला आदिवासी एवं धरा पर रेंगने वाले सर्प आदि प्रसन्न हो उठते हैं। वे अपने-अपने आंगन में वारि की सुखद बूंदों से अमृत प्राप्त करते हैं तथा उसे जानते, हर्ष मनाते हुए आनंदित होते हैं।।33।। वे वारि, वारिधर, वारिवाही तो वारि लिए हुए सबसे पहले कूटों पर स्थित तपस्वियों को ही सदैव कहते हैं कि आप तप्ति/तपस्वी हैं। हम आपकी महनीय सेवा करना चाहते हैं, कहिए मेरे लिए क्या है? पर आप वृक्ष की तरह स्थित रहते हैं। इन वृक्षों के समूह को जब सींचते हैं, तब भी आप रा-राग से जि-जयी, रूक्ष न होते हुए भी व णर-उत्तम मनुष्य की तरह दिखते हैं।।34।। आप निर्ग्रन्थ हैं, हम भी। पर हम एक दूसरे के कर को पकड़कर इधर-उधर होते रहते हैं। इसलिए गांठ/बंधन युक्त हो जाते हैं। हम मेधा हैं इसलिए मनुओं के लिए प्रसन्न करते हैं। आप मेह-मेधावी/तपस्वी हैं, इसलिए मनुष्यों को मेघ संस्कार का दान करते हैं। ये धरणी के मनुष्य हमें देखते हुए कहते हैं कि यह मेघ हाथी है, यह सिंह है, यह मृग है, इत्यादि होते हुए अन्य रूप धारण कर लेते हैं।।35।।

सप्पा बिलादु णिसरेंति चरेंति सीदे अण्णा सरिप्पसर-धावगदा सरेंति।
मग्गे चलायगद-जाण-गदीइ घादं पाणं चएदि परिसुण्ण-हवे छुहेदि।।36।।
पस्सेंति साहु-सयला इग-सप्प-खिण्णं तं पस्सद मुणिवरो अदि-सोग-पत्तो।
जीवो त्ति जीवण-सुहेच्छु हं च अत्थि साहस्स-आयुस-इमो लहुकान-खीणो।।37।।
चित्ते विराग-अधुणा णवकार-मंतं जप्पेदि तं अहिमुहे अहिलाह-हेदुं।
मंतप्पहाव-जध होदि तधा स सापो चेद त्ति जुत्त-इणमो परिसंचरेदि।।38।।
जे मावणा मदिविहीण-सदा-वसेंति ते तं च दिस्स-परिदिस्सगदा मुणेंति।
साहु त्ति साहु-तवसी मणि-मंत-णाणी माणीपमाणि-गुण-खाणि-चरित-धाणी।।39।।
पच्चेग पच्चय-चए चरमाणसूरी पत्तेदि पावण-पहीजण-माणसाणं।
पस्सेंति ते सदद-णम्म-णिवेद णं च कुव्वेंति देसणचयं महु-मज्झ-सीलं।।40।।
णम्मी-णदी-णद सु-णीर-समा इमे तु पीऊस-पूद-परमं पडिपाण-कुव्वे।
अज्जेव हे सुहद-जीवण-जीविगं च धण्णं धणं धरणि-धारण-धीर-वीरा।।41।।

इन मेघों की बरसात से सर्प बिल से निकल पड़ते हैं और वे शीत में घूमने लगते हैं, अन्य सरिसृप भी दौड़ते हुए जीवन, आदि मार्ग में चलते हुए वाहनों से घायल हो जाते हैं। कुछ प्राण छोड़ देते हैं और कुछ तड़पते रहते हैं।।36।। इधर बिहार में विहार करते हुए साधु एक व्याकुल, तडफते हुए सर्प को देखते हैं, उसे मुनिवर भी देखते हैं, वे देखकर शोक का अनुभव करते हैं और सोचते हैं कि जीव यह भी है और मैं भी हूँ। यह भी जीवन चाहता है, सुख भी चाहता है। यह हजार वर्ष की आयु वाला कुछ समय में जीवन समाप्त हो जाएगा।।37।। आचार्य विरागसारगर के चित्त में इस समय वि-विशेष-प्रशस्त राग था इसलिए वे उसी समय उसके सम्मुख जन्म लाभ हेतु नवकार मंत्र को जपते हैं। जैसे-जैसे मंत्र पढ़ा जाता है, वैसे-वैसे वह मंत्र के प्रभाव से चेतना युक्त होता जाता है और वह उसी समय चल पड़ता है।।38।। इस जगत् में अनेक प्रकार के लोग हैं, पर जो इस समय गतिविहीन ग्रामीण जन हैं, वे उस प्रभाव को देखकर चिंतन करते हैं कि साधु तो साधु हैं, तपस्वी है, मणि, मंत्र आदि के ज्ञानी है, वे मानी, प्रमानी, गुणों के खान एवं चारित्र पथगामी है।।39।। प्रत्येक भाग चाहता था त्याग। इसलिए गतिमान सूरि बुद्धि की निर्मलता युक्त लोगों को सहज प्राप्त हो जाते हैं। वे नम्र, सतत् नम्र उन्हें देखते और निवेदन करते उपदेश के लिए। ताकि मधु, मद्यशील सभी इन्हें छोड़ सकें।।40।। कहते हैं कि वे नदी, नल के नीर के समान नम्रीभूत परम पीयूष पान के इच्छुक आज सुखद जीवन और जीविका को प्राप्त हो रहे हैं। वे धान्य, धन युक्त धरणी पर धीरता से कार्य कर रहे कृषक, कृषि से वीर हो रहे हैं।।41।।

उच्चे पदे परम-ठाण-लहे इमो वि उच्चाहियारि-जण-सासग-णेत्तु-सव्वे।
पादारविंद-णद-णम्म-सदा सुसेवी आरक्खि-रक्ख-परमाउह-संग-चारी।42।।
आसाहिलास-परदव्व-विचार-सुण्णं साहूण साहण-तवं चरियं विचारं।
चित्ते लहेंति अनुसंस-जणाण भासे णेरास-धण्ण-धण-इच्छविणा चरेंति।।43।।
एत्तिल्ल-बुद्धचरिया इध अम्ह खेत्ते सम्मा-विचारि-बहुजोग-साहू।
वीरो कुमार-तवसी-णिव-पुत्त-पंथी सिद्धत्थराय-तणयो पियदंसणीए।।44।।
णिग्गंथो परमो तवी मुणि-महेस-तत्तच्छ-दाणागदो वीराणमवि णंदणं परयरं मं देस-देसे पढं।
कुव्वेज्जा जदि वीर-बुद्ध-महवीर-कुव्वंत-णाणामिदं।
णिच्छेज्जा धर-धीर-माणस-मदी-सुअप्पढप-तुल्ला हवे।।45।।

इस प्रदेश में आचार्य श्री को उच्च आसन पर बिठाया जाता है, उच्चाधिकारी, जनसेवक, जनशासक (विधायक, सांसद, पंच, सरपंच, प्रधान) आदि सभी नेताओं द्वारा। वे इनके चरण कमलों में नत, नम्र सदैव उत्तम सेवी बने रहते हैं। आरक्षी समूह अपने उचित आयुध के साथ गमन करते हैं।।42।। आशा, परद्रव्य की अभिलाषा, परविचार/आलोचना से शून्य साधुओं की साधना, तपस्या, चर्या और विचार को लोगों के मध्य प्रशंसा करते हुए चित्त में धारण करते हैं और कहते हैं कि यह आशा/इच्छा से रहित धन-धान्य बिना ही लोगों की श्रद्धा के पात्र बन रहे हैं।।43।। यहाँ पर ऐसी ही चर्या बुद्ध की रही होगी, यहाँ सम्यक् विचारधारी, नाना योग विद्या वाले साधु ऐसे ही होंगे। वीर कुमार तपस्वी बना, वह राज पुत्र इसी पथ का मार्गी होगा, सिद्धार्थराजा और प्रियदर्शनी का यह पुत्र ऐसी स्थितियों में (विषम परिस्थितियों में) नग्न विचरण करते रहे होंगे।।44।। ये निर्ग्रन्थ तपस्वी मुनि तो महेश अत्यंत पूजनीय हैं, वे महा तत्वार्थ के दान हेतु यहाँ विचरण कर रहे हैं। ये सभी साधु वीरों के नंदन एक दूसरे तथा हमारे प्रत्येक प्रदेश में देशना के पद/प्रामाणिक सूत्र दे रहे हैं। ये यति हैं, वीर, बुद्ध और महावीर हैं, तभी तो ज्ञानामृत को देते हुए लोगों में धैर्यता उत्तम करा रहे हैं, ये मानसमति बन रहे हैं। अर्थात् मान सरोवर के हंस बने हुए अपनी तरह दूसरे को मान रहे हैं।।45।।

इदि उणत्तीस विरागो समत्तो।

तीस-विरागो

हरिणी-इध पद-पदे णीरंगंगी विभेंदि महंजणे हरिद-हरिदे कूडोण्णद्धे परिप्फुरदंसुगे।
सु-धरिद-धरा लीला कीला जणा कि ण धण्णगा सम-सम-समे सामण्णंगी धणेहि पराहीणा।।1।।
वर्ष गिरिंद्ध-सिहरे गिरिंद्द-इव ते चरेंति णिच्चं तवब्धि-सुचि-वारिहिं ससिसमा सुसंत-संता।
रिजू रज-रदा तयं रदण-जुत्त-सुत्त-सुत्ती णदीतड-तवं कुणेंततो रिजकूल-मूल-भागे।।2।।
वीरस्थली केवलणाण-रविस्स दित्ती सिक्खेज्ज अज्ज परमत्थ-विराग-कीत्ती।
तं णाण-सुत्त-परमं लहिदु तवेंति सो पालगंज-गिरिडीह-सुपंत पत्तो।।3।।
अत्थे विचिट्ठदि मुणीसर-भाउ-सोम्मो ते ही गुरु त्ति भरह-सागर-सागरो त्ति।
देहादु रोग-गथिदो ण हु सुत्त-वाही तं साद-लाह-पडिपुच्छ-गणी गणेज्जा।।4।।
पुव्वप्पवेस-णयरे जण-माणवेहिं अत्थागमे रदविराग-विराग-गुंजे।
होज्जा जएज्ज-सुद-संत-मुणीज अज्ज अज्जी सु-अज्जिग-गणी वि णमोत्थु सीला।।5।।

इसके प्रत्येक भाग नीर से पूर्ण अंगों वाले हैं, जो महाजन/उत्तम लोगों की प्रीतीति कराते हैं। यहाँ हरित वर्ण से आच्छादित कूट/पर्वत श्रृंखलाएँ एवं खेत तो कान्ति-नीर की कान्ति-जल बिंदुओं की प्रभा से प्रभावान् हैं। यहाँ के लोग लीला एवं क्रीडा युक्त धरा पर क्रीड़ा कर रहे हैं, फिर भी धन-धान्य क्यों नहीं। ये श्रम से सिंचित, सम में स्थित, सम को देने वाले अब श्रामण्यधर्म क्यों नहीं अंगीकार कर रहे हैं। श्रम कणों को व्यसनमुक्त होकर सींचा गया तो निश्चय ही वह धन से पूर्ण करेगा ? पृथ्वी ।ऽ। ।।ऽ। ।।ऽ। ।ऽ। ऽऽ 17 ।।1।। वे गिरीन्द्र शिखर पर गिरीन्द्र की तरह विचरण करते हैं वे तप रूपी समुद्र की पवित्र वारि से शशि सम शान्त, अति शान्त संत ऋजु परिणामी रत्नत्रय की रज में रत सूत्र ग्रन्थों की सूक्तियाँ ले रहे हैं। वे सूत्र ऋजूकूला नदी के तट पर तप करते हुए ही उन्हें सरल स्वभावी भी कर रहे हैं।।2।। ऋजुकूला नदी के तट पर भगवान महावीर स्वामी को केवलज्ञान प्राप्त हुआ था, जो केवलज्ञान सूर्य की दीप्ति की तरह आज परमार्थ रूप से विराग कीर्ति रूपी शिक्षा दे रहा है। उस ज्ञानसूत्र की शिक्षा प्राप्ति के लिए यहाँ आचार्य संघ सहित तप करते हैं, फिर वह संघ पालगंज होता हुआ गिरिडीह पहुँच जाता है।।3।। गिरिडीह में गुरु भाई परम पूज्य आचार्य भरतसागरजी स्थित थे, वे देह के रोग से पीड़ित थे, सूत्र व्याधि से नहीं। उनकी साता परस्पर दोनों आचार्य पूछते हैं।।4।। नगर प्रवेश पर जन मानवों के द्वारा अर्थागम/आगम के रहस्य में रत विराग की ओर अग्रसर आचार्य विराग जयवंत हों, सभी श्रुत में निमग्न अत्यंत शान्त मुनियों की आज जय-जयकार हो रही थी। आर्यिका स्याद्वादमति आदि आर्यिकाएँ भी गणि के प्रति नमोऽस्तु युक्त थीं।।5।।

आराम-खेत्त-इणमो जणमेदिणीए रूक्खाण लदाण खणिगाण जएज्ज रागो।
कूज्जेज कूजग-चडी-चडिगा सुणंदा सव्वे समाजपमुहा पमुदा हवेंति।।6।।
के णो त्थि अज्ज गणि-गारव-जाणणत्थं आयार-णिट्ठ-परमत्थ-रसे णिमग्गं।
सव्वाण साहु-चरियाण सुसण्णि-संघी पस्सेंति णेंति अदिविराग-विराग-सुत्तिं।।7।।
सूरि त्ति ते वि उहओ गुरुभाउ-साहू णेमित्तणाणि-विमलो विमलं पदेज्जा।
आहारएज्ज जुगलो जुगलो जएज्जा सम्माण-पुज्ज-मणुजाण कव भत्तिएज्जा।।8।।
झाणे रदा मुणण-चिंतण-णाण-दाणं रत्ता इमे रदण-सागर-सुत्त-पत्तुं।
साहिच्च-सिंच-भरहो भरहेक्क-सव्वे छत्तोवयारि-सुद-छत्ततए विचारी।।9।।
णिग्गंथ-गंथ-गथदं गुण-पुण्ण-सुत्तं पच्छा णएज्ज णय-मग्ग-पुरे वि गामे।
दाएज्ज दाण-सयलाण जणाण णिच्चं सेलेसु सेल-सिहरं अणुकूल-कूलं।।10।।
सेलो सदा हरिद-णिज्झर-णंद-णीरो वाणप्फदी-पउर-मेह-विराम-धीरो।
सो चंदसागर-मुणी-मणिगेग-अग्गी अत्थि त्ति सागर-सियाद-महुत्ति अत्थ।।11।।

इस गिरिडीह में आराम स्थल, जो अब जनमेदिनी से युक्त हो गए हैं। वृक्ष, लताएँ, खनिज सपंदाओं का राग जय-जय करने लगा, कूजित, चटिकाएँ चिड़ियाएँ आनंदयुक्त कूजने (गूजँने) लगी, तभी सभी समाज के लोग, प्रमुख जन प्रमुदित हो उठे।।6।। आज कोई भी ऐसा नहीं प्रतीत हो रहा था, जो गणाचार्यों के गौरव का गान न कर रहा हो? वे उनके गौरव जानने के लिए ही आज यहाँ उपस्थित थे। दोनों आचार्यों और सभी साधुओं का साधुचर्या के लिए सभी एक सूत्र में बंधे हुए थे। वह विराग सूक्तों को लेते हैं और विराग के भावों को देखते हैं।।7।। वे दोनों आचार्य गुरु भ्राता, गौरव की प्रतिष्ठा से भासमान साधु तो साधु थे। आचार्य विमलसागर तो निमित्तज्ञानी थे, तभी तो मल रहित जीवन जीने की इन्हें शिक्षा दे गए। वे दोनों युगल आहार करते और युगल जयकार को प्राप्त होते हैं। वे लोगों का सम्मान पाते और पूज्यताभाव तथा भक्ति भावों की भक्ति पाते हैं।।8।। वे दोनों ध्यान में रत मनन-चिंतन से ज्ञान दान देते हैं। एक रत्न के सागर के सूत्र प्राप्ति के लिए प्रयत्न करते हैं और दूसरे आचार्य भरतसागर तो भारतवर्ष के सभी लोगों को सूत्र साहित्य की बिन्दुओं को सींच रहे हैं। आचार्य भरतसागर तो छात्रोपकारी श्रुत का प्रकाशन करवाकर उन छात्रों को छत्रत्रय सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चरित्र के चिंतन की ओर अग्रसर कर रहे हैं और आचार्य विरागसागर भी भारत के प्रत्येक क्षेत्र में श्रुत के विचार रत्नत्रय आराधनापूर्वक दे रहे हैं।।9।। निर्ग्रन्थों का कार्य ग्रन्थ में ग्रंथित गुण पूर्ण सूत्र को लेना एवं देना दोनों ही होता है। तभी तो गिरिडीह के पश्चात् आचार्यश्री नयमार्ग की विधि पुर और ग्राम में ले जाते हैं अर्थात् सूत्र के रहस्य को सर्वत्र देते रहते हैं। वे सभी लोगों के लिए सूत्र दान करते हुए शैली में शैल सम्मेदशिखर के अनुकूल तलहटी के कूल/किनारे पहुँचते हैं।।10।। सम्मेद शिखर तो सदा हरित/हरियाली युक्त है, यहाँ नीर निर्झर से बहता हुआ आनंद देता है। यहाँ की प्रचुर वनस्पतियाँ मेघों को विश्राम देती और धीर नीर युक्त बनाती हैं। यहाँ आचार्य चन्द्रसागर मुनि चन्द्र किरणों के अग्रणी बनते हैं। मुनि स्याद्वादसागर और मुनि मधुसागर मधुवन में मधु/माधुर्य दे रहे हैं।।11।।

आणंदजत्ति-पद-गत्ति-जणा सऐक्का पंचे किलो मिडर-भत्ति-पवाल-सुत्ता।
घोसेज्ज घोस-जयघोस-विराग-साहू सम्मेद-मेदिणि-विराग-विराग-सुत्ता।।12।।
कल्लाण-मंदिर-कला कल्णेज्ज जुत्ता तं दंसएज्ज तड-मुत्ति-विराग-खेत्तं।
संघो कुणेदि जणमाणस-सुब्भसुत्ता सो सी दलधहु-पदे अदिमाण-मुत्ता।।13।।
सेले पपंत-बहुसाहु-अणेग-अज्जी अच्चंत-मुणीसर-सम्मदी वि।
मोक्खो णिरंजण-मुणी दिआदि-मादू कल्लाण-मुत्ति-सुरदणिम्मल-खुल्लिणंदी।।14।।
सूरी वि सीदल-सुदंस-सुसीदलं च साहू सुभद्द-सुदभद्द-गुणे गणेज्जा।
अज्जी गणिण्ण-गणिणी मदिणाण-मादू पुज्जा अणेग-सद-संघ-इधे-तवेंति।।15।।
पारोप्परे उहय-संघ-सुदत्थ-इच्छू तित्थत्थि-तित्थ-मणुजाण सुतित्थ-तित्थं।
सम्मेद-सेसेह-मद-चुण्ण-कुणंत-तावं आगत्त-माणुज-मण कुणदे हि माणं।16।।
अस्सिं च सेल-तड-बंधण-बंधणेज्जा उक्किट्ठ-ताव-विमलं च समाहि-ठाणं।
पत्तेज्ज गारव-गुरुं च लहेज्ज झाणं तित्थस्स सावग-सुही कुणएज्ज माणं।।17।।

पाँच किलोमीटर की पदयात्रा, आनंदयात्र तो मानों सौ से अधिक लोगों की भक्ति रूपी प्रवाल के सूत्र/आधार बन जाते हैं। वे सभी सूत्रबद्ध, एकता से जुड़े हुए लोग आचार्य विरागसागर की जय, मुनिसंघ की जय करते ताकि सममेदधारा के विराग स्थल, विराग ही विराग जीवन का सूत्र/लक्ष्य है ऐसा उद्घोष कर सकें।।12।। कल्याण निकेतन मंदिर कला से परिपूर्ण था, उसके दर्शन पूर्वक शैल की तलहैटी पर स्थित विराग की मूर्तियों के दर्शन करते हैं। संघ एवं शुभ्र वस्त्र युक्त जनमानस भी साथ चल रहा था। वह संघ शीतलनाथ मंदिर के पद में स्थित होते ही समाज के द्वारा सम्मानित किया जाता है।।13।। इस सम्मेदशिखर की तलहैटी पर अनेक साधु, आर्यिकाएँ, क्षुल्लिकाएँ आदि भी थी। आचार्य सन्मतिसागर, मुनि मोक्षसागर, मुनि निरंजनसागर, आर्यिका आदिमति, मोक्षमति, कल्याणमति, सुरत्नमति, निर्मलमति एवं क्षुल्लिका आनंदमति भी इस तपस्थली पर तप में लीन आत्म कल्याण चाहती हैं।।14।। इस क्षेत्र पर आचार्य शीतलसागर तो श्रुतांश से शीतलता दे रहे थे। मुनि सुभद्र सागर अपने भद्र परिणामों से गुणों को बढ़ा रहे थे। आर्यिका प्रमुख गणिनी ज्ञानमति माता तो अपने गण/संघ सहित ज्ञान वृद्धि में लीन थी तथा अनेक पूज्य साधु अपने-अपने संघ के साथ तप कर रहे थे।।15।। आचार्य शीतलसागर और आचार्य विरागसागर दोनों संघ परस्पर में श्रुतार्थ के इच्छुक बने रहते हैं। तभी तो इस तीर्थस्थल पर तीर्थयात्री संसार से पार होने के लिए तीर्थ-साधु-आर्यिका, श्रावक-श्राविका आते हैं। वे यहाँ सम्मेदशिखर की तीर्थ वंदना से मद की समाप्ति के लिए तप करते हुए सम्मेदशैल की तरह सुदृढ़ा होने के लिए ही आते हैं।।16।। यह क्षेत्र तट तो हमेशा ही बंधन को खोलते रहे हैं। यही आचार्य विमलसागर ने उत्कृष्ट तप किया ओर यहीं समाधि को प्राप्त हुए। जिस समाधि स्थल को यह संघ दर्शनार्थ गया ताकि गुरु गौरव और ध्यान को प्राप्त किया जा सके। यहाँ पर अनेक तीर्थ यात्रियों, श्रावकों एवं सुधीजनों ने सम्मान किया।। 17।।

कण्हेज्ज-केलसमसि-पण्ण-महाइवीरो सोगाणि रूव-बहु सावग-साविगाओ।
साहूण भत्ति-आदि रत्ति-विराग-सत्ती पादारविंद-णद-णीर-सुसंति-हेदुं।।18।।
जे साहु-अज्जिग-रिसी गणिणी मुणीसा जीवंतमुत्ति-गणणायग-तावसीसा।
देंति त्ति दाण-सुद-णाण-पमाण-मुत्ता तत्थग्ग-भूद मणुजा मणुजा-मणुत्ता।।19।।
णिच्चं विहाण-विहि-सिद्ध-णिहाण-पूजा सिद्धत्थ-सिद्ध-सहसं अणुचक्क-अट्ठं।
णेत्तु च सील-ससिमंडल सीलचंदो चादूसदं च मणुजेहि विराग-णंदं।।20।।
मज्झे तिजोग-परि-आसम-भाग-सिद्धो सिद्धे गुणे हि अणुपत्त-जणा समूहा।
जत्थे हवेदि जण-माणस-तत्थ सूरी तेजं पदेज्ज उदियो उदयो हि पूरी।।21।।
आयारिओ परम पावन-भाव-जुत्तो पत्तेदि संभव-मुणीसर-णंद-सम्मे।
सो संभवो सुद-सुधी वि विरागसूरि भादुत्त-पीदि-सुद-णीदि-पदीव-रीदी।।22।।
संघे विराग-मुणि-सत्थ-समुद्द-सुत्तिं पत्तुं च लग्ग-अणुलग्ग-सदा-विमुत्तिं।
इच्छेज्ज माणस-मणे सुद-सार-दाणं भावेज्ज संघ-उवसंघ-मुणी वि अस्सिं।।23।।

यहाँ कलकत्ता के कन्हैयालाल, औरंगाबाद के कैलाशचन्द्र, पन्नालाल आदि श्रेष्ठी, झरिया के महावीर प्रसाद, स्वरूपचंद सोगानी आदि श्रावक-श्राविकाएँ तो साधुओं की भक्ति के प्रति समर्पित मानों विरागशक्ति युक्त हो गए हो तभी तो सभी ने उत्तम नीर से चरण कमल प्रक्षालित किए और सम्यक् शान्ति के कारण की इच्छा को प्राप्त किया।।18।। इस वर्तमान युग में जो भी साधु, आर्यिकाएँ, ऋषि, गणिनी, आचार्य, गणनायक, तपस्वी आदि सभी जीवंत मूर्त्ति हैं विराग की। वे ही श्रुतज्ञान की प्रामाणिक मुक्ताओं का लाभ ले रहे हैं। उनके समक्ष मनुज तो मानों मनु की इस व्यवस्था से मनुष्यत्व को सुरक्षित रखना चाहते हैं।।19।। इस संघ द्वारा हमेशा ही विधि विधान, सिद्धचक्र विधान पूजा आदि कराए जाते हैं। सिद्धचक्र विधान सिद्धार्थ के एक हजार आठ सिद्ध गुणों की ओर ले जाने वाला है। जिसे शील चन्द्र नमक वालों की ओर शील रूपी शशिमंडल के किरणों के लिए चार सौ लोगों की उपस्थिति में विरागचंद्र विकसित करने के लिए कराया गया।।20।। सम्मेदशिखर पर मध्यलोक, त्रियोग आश्रम आदि स्थल है, वे सिद्धभाग मानों सिद्धचक्र के गुणों को देने के लिए हो रहे थे। जनसमूह, जहाँ भी आचार्यश्री को आमंत्रित करता वे वहाँ अपने उदित उदय रूप सूर्य बने हुए तेजस् भाव देने में समर्थ होते हैं।।21।। आचार्य परम पावन भाव युक्त होते हैं। वे आचार्य संभवसागर से आनदंपूर्वक मिलते हैं। जो संभव थे वे श्रुतसुधि विरागसूरि की ओर श्रुभावना युक्त मिलते हैं। उनमें तब मातृत्व के समान प्रीति, श्रुतनीति आदि तो प्रदीपरीति हो जाती है। अर्थात् एक दीप दूसरे दीप के कारण श्रुतनीति की आभा को अत्यधिक तेजस्वी बना देते हैं।।22।। संघ में विराग, मुनि श्री विरागभाव युक्त शास्त्र समुद्र की सूक्तियों को प्राप्त करने में प्रयत्न इसलिए रहते हैं ताकि विमुक्ति को पहचान सकें। वे मानवसरोवर के हंस मन में श्रुतसार के दान की पृथक् इच्छा रखते हैं ताकि संघ से पृथक् उपसंघ भी हो। इस समय में यही होता है।।23।।

वासा विजोग-समए हि हजारिबागो इच्छेज्ज ते विभवसागर-वास-हेदुं।
णमेज्ज णम्म-विणएज्ज जणा हि इच्छे आणा-विराग-गुरु-गारव-सम्म-अम्हे।।24।।
आदेस-पुव्व-विभवो मुणि-मंगणेज्जा आराम-दंसण-सुणण-चरित्त-ठाणं।
जुत्तो कुणेदि चदुमास-हजारि-बागे सुत्ताणुसार-सुदधार-सरिप्पवाही।25।।
सम्मेद-सेल-सिहरो ण अत्थि माणिक्क-माणस-मदी हि विचित्त-चित्ती
वावार-सुण्ण-ववसाय-जणा रमेंति साहूण सूरि-परमाण सुदाण -रत्ती।।26।।
तेसिं च संघ-ठिद-साहु-मुणीण सेवं कुव्वंत-माणुस-मणा मण-मोद-लाहं।
पत्तेंति सावग-सुधी-सद-साविगाओ आदीण-दाण-मणुहार-सुतित्थ-तित्थं।।27।।
सम्मेद-सेल-सिहरे त्ति विराग-सूरी आसाढ-सुक्क-चदुदस्स-सुहे हि काले।
मंगिल्ल-मंग-कलसस्स पदिट्ठ-कज्जे साहस्स-सावग-सुधी-मणुहारि-भावे।।28।।
पुण्णादु पुण्ण-गुरु-गारव-पुण्णिमाए पच्छा दु वीर-जिणसासण-जम्म-जम्मं।
णिव्वाण-मोदग-मुदी-मुउडो तिहीए दिक्खं सुभद्द-मुणि-अज्जि-सुवण्णा।।29।।
पुज्जो सिरी सदद-वंदण-जुत्त-सेले वेदेज्ज अट्ठमि-चदुस्स-दसिं च सव्वे।
कूडे ठिदे परम-साहग-सम्म-खेत्तं मासे चदु त्तिचटु-तित्थ-सरूव हेदुं।।30।।

वर्षावास के योग समय में हजारीबाग के लोग विनम्र, नमोऽस्तु युक्त मुनि विभवसागर के वर्षावास हेतु निवेदन करते हैं। वे आचार्य विरागसागर की आज्ञा को गौरवयुक्त मानते हैं और उचित इच्छा व्यक्त करते हैं।।24।। आचार्य के आदेशपूर्वक मुनि विभवसागर दर्शन, ज्ञान ओर चारित्र के स्थान आरम को पाकर सुखद अनुभव करते हैं। वे हजारीबाग में चातुर्मास करते हैं वहीं उनके द्वारा सूत्रानुसार श्रुतधार की सरिता को गति दी।।25।। सम्मेदशैल के उच्च शिखर तो लोगों के शिखर हैं, ऐसा नहीं, अपितु वे शिखर जो मानस मति हैं, उन्हें माणिक्य हैं, जहाँ विचित्र भाव हैं। लोग व्यापार, व्यवसाय से रहित यहाँ साधुओं के सभी दानों में रत रहते हैं।।26।। उस संघ में स्थित साधु मुनियों की सम्यक् सेवा करते हुए मनुष्यों के मन में हर्ष उत्पन्न करते, श्रावक, श्राविकाएँ एवं सुधी जन दीन भाव से रहित उत्तम तीर्थ पर इस तीर्थ की ओर अग्रसर होते हैं।।27।। सम्मेद शिखर में विरागसूरि तो आषढ़ा शुक्ला चतुर्दशी के शुभ समय में मांगलिक कलश की स्थापना के साथ हजारों श्रावकों एवं सुधीजनों के मनुहार को प्राप्त हाते हैं।।28।। इस समय पुण्य योग से गुरु पूर्णिमा का गौरवशाली दिन धन्य होता है। इसके पश्चात् वीरशासन जयंती मनाई जाती है। मुकुट सप्तमी के दिन निर्वाण लाडू और इसी तिथि पर आचार्य शीतलसागर जी द्वारा एक मुनि दीक्षा-मुनि सुभद्रसागर को भद्र बनाती है और सुवर्णमति माता आर्यिका पद भी सुभद्र होता है।।29।। सतत् वंदना युक्त सम्मेद शिखर पूज्य है, श्री समृद्धि युत है। यहाँ आचार्य श्री अष्टमी-चतुर्दशी के पर्व पर वंदना करते, वहाँ के चौपड़ा कुंड पर रूकते, वे परम साधक की तरह उत्तम क्षेत्र प्राप्त मानों चार गति के चक्र से दूर होकर तीर्थ स्वरूप गति की ओर होना चाहते हैं।।30।।

तत्थेव तित्थ-उवरिं असणं च सुपाण-चोकं कीएज्ज सम्म-विवरीद-ठिदीदू सम्मं।
बंगाल-पंत-जणमाणस-भत्ति-पुव्वा आहार-दाण-पमुहा सद-चत्त-जोगा।।31।।
सव्वे जणा मुणिगणा वि परिक्कमादो धण्णं कुणेंति णिय-आद-सरूव-सम्मं।
आहार-जोग्ग-जल-मंदिर-ठाण-पत्तुं देविदं सूरि-जिण-सासग-णायणा वि।।32।।
पारोप्परे सुद-सुधं णयादुं च णिच्चं णो केवलं कुणदि वंदण-मंथ-सत्थं।
लाहं णएंति जणमाणस-साहु-सज्झी णंदा हवेंति गुण-पावण-णीर-तुल्लं।।33।।
वच्छल्लएरस-गदी सयला दु पव्वे रखादु बंधण-सुधां अणुणायदे हि।।
सव्वाण रक्खण-मुणीण भगिण्ण-रक्खं वच्छल्लपव्व-इणमो आदि-रक्ख-पव्वो।।34।।
वच्छल्ल-पव्व-समए उहया हि साहू आमंतएज्ज दिग-सेद-मुणीस-साहू।
पूदो हवेदि महुवण्ण-महुव्व णंदो सव्वे ण काल-महुरो महुदायणी किं।।35।।
पज्जूसणो परम-पावण-पूद-भावी आदाणुसासण-जयी बहु-मेत्ति-दाई।
तावं जणेदि बहि-अंदर-अप्प-सोधी वासं कुणेंति उववास-णियं च पत्तुं।।36।।

इस स्थान पर साधुओं के असन-पान के लिए चौकों की व्यवस्था की जाती है। विपरीत स्थिति में बंगाल प्रान्त के लोग भक्तिपूर्वक इसमें सहभागी बनते हैं। वे लोग समागम 400 यात्रियों के भोजन की व्यवस्था भी करते हैं। आहार दान तो लोगों के आधारभूत है ही और वह सात्त्विक हो तो कहना ही क्या?।। 31।। इसी स्थान पर जलमंदिर में आचार्य विरागसागर योग्य आहार विधि एवं स्थान को प्राप्त होते हैं। जो श्वेताम्बर समिति के द्वारा करवाई जाती है। देवेन्द्रमुनि और उनके साधु-साध्वियाँ जिन शासन की गरिमा बढ़ाते हैं। सभी लोग, मुनिगण इस स्थान की परिक्रमा करते हैं तथा वे यहाँ अपने आत्मस्वरूप की ओर स्थित अपने आपको धन्य करते हैं।।32।। वे परस्पर श्रुत सुधा प्राप्ति के लिए मिलते हैं। आचार्य श्री न केवल वहाँ 27 वंदना व 2 परिक्रमा युक्त रहते हैं अपितु वे शास्त्र मंथन करते हैं। जन-मानस एवं साधु-साध्वियाँ भी लाभ प्राप्त करती हैं। वह परस्पर आनंद युक्त नीर सदृश पवित्र गुणों की ओर अग्रसर होते हैं।।33।। पर्व में कोई न कोई रस भाव होता है। यदि रक्षाबंधन पर्व जैसा पर्व हो तो यह वात्सल्यपर्व रक्षा की भावना को लाता है। यह भाई-बहिन के वात्सल्य के साथ-साथ मुनियों के प्रति, साधर्मी जनों के प्रति भी वात्सल्य भाव प्रकट करता है।।34।। वात्सल्य पर्व के समय में दिगम्बर-श्वेताम्बर (लगभग 250 साधु-साध्वियाँ) दोनों ही वर्ग के साधु इस वात्सल्य पर्व पर आमंत्रित किए जाते हैं। उनसे यह मधुवन तो मधुमास की तरह पवित्र एवं आनंद देने वाला होता है। यह स्थान सर्वकाल मधु की तरह मधुर है, फिर क्यों नहीं मधुवन मधुरता प्रदान करेगा?।।35।। पर्यूषण पर्व परम पावन पर्व है, दूतभावी, आत्मानुशासन, जयी, बहुभक्तिदायी है, इसमें लोग बाह्य और आभ्यंतर दोनों तप को प्राप्त होते हैं। इसमें व्यक्ति आत्मशोधी बनता है। जो इस पर्व पर उपवास करते हैं। वे आत्मवास को प्राप्त करने के लिए ही प्रयत्नशील होते हैं।।36।।

सम्मोवसम्म-उव-सम्म-उवासणाए णो सेद-सेद-दिग-अंबरसम्म-तावो।
सव्वे कुणेंति उववास-तिहीइ पव्वे चत्तेंति सत्त-रस-ऊणुदरिं च कम्म।।37।।
अस्सि विराग-सुधिसावग-साविगाओ सूरि त्ति साहग-तवी उववास-वासे।
चत्तरसी मउणि-मोण-मुणी पही वि घंटाइगे हरिद-चत्त त्ति अण्णे।।38।।
दासे रदा मुणि-जणा वय-धारमाणा झाएंति सोलह-यरं उववास-वीसं।
विस्सोमुणी पणवदी मुणिविस्सभूदि सत्तं वदे हि वि हिदो अड-विस्सम्मो।।39।।
उपेन्द्रव्रजा-वदे वदोचिं इव साहु-संता महावदाणं समिदिं समत्थं।
सिलव्व सम्मेद-गिरि-राजमाला पकिण्णदे वारि-वरं समंतं।।40।।
उपजाति-पीऊस-तुल्लं इव वारिधारा चंदंसु-तारा-णह-चामरादिं।
जिणग्धि-पेरंतमुवेच्च रेजे पकिण्णकाली गिरि-णिज्झराभा।।41।।
इन्द्रवंशावृत्तम-सम्मे तवे कूड-विराग-सेविदे एगावली-सिंह-उपत्त-कंतिगं।
वासे पवासे चदुमास-कोविदे वरेण्णमराहाहइदुं ठिदे समं।।42।।

सम्यक्, उपशमन, सम्यक् उपासना में है, इसमें श्वेताम्बर और दिगम्बर नहीं होता, अपितु धवल ताप ही होता है। इसलिए सभी पर्यूषण, उपासना के पर्व पर उपवास करते हैं। कुछ लोग सप्तरस विधिपूर्वक एकाशन को अपनाते हैं।।37।। इस पर्यूषण पर्व पर विराग सुधी, श्रावक-श्राविकाएँ, तपस्वी, साधक आदि आन्तरिक वास में स्थित होते हैं। आचार्य विरागसागर भी उपवास युक्त चारों अष्टमी-चतुदर्शी आदि में रस परित्यागी, एक घंटे का मौन, क्योंकि मनन ही मुनि है, उनकी प्रधी तो पूर्ण चिंतनशील रहती है, इसलिए वे चारों प्रकार से रसत्यागी व चार प्रकार के अन्न से अपने आत्म समीप स्थित होने के लिए प्रयत्नशील रहते हैं।।38।। वर्षावास में उपवास व्रतपूर्वक ही मुनिजन करते हैं। विश्वजीतसागर मुनि तीस उपवास सोलह कारणव्रत सहित पालन करते हैं। मुनि विश्वभूति 5 उपवास, विहितसागर सात एवं विश्वधर्मसागर भी आठ उपवास करते हैं।।39।। व्रत में रस व्रतों का सागर तो होता ही है, परन्तु व्रतों के समुद्र की तरह साधु शान्त चित्त महाव्रतों को और समिति को पूर्ण पालन इसलिए कर रहे हैं ताकि सम्मेदराज की श्रृंखलाएँ एवं शिलाएँ भी शिला की तरह/एक-एक पाषाण भी व्रती की तरह हो जाए तथा उत्तम वर्षा का जल सभी ओर अपनी श्री दिखला सके।।40।। इन मुनियों के व्रतों के साथ अमृत तुल्य वारिधारा आनंद देती है, चन्द्र किरणों के समूह नभ के ताराओं के साथ चमर हिलाने लगते हैं, वहीं जिन चरणों के समीप जाकर ऐसे सुशोभित होते हैं मानो किसी गिरी से झरते हुए निर्झरों की आभा हो।।41।। जहाँ वर्षावास पर मेघ चार माह पर्यन्त अपने पीयूष से सबको आनंदित करते हैं, वहाँ उत्कृष्ट आराधना के लिए स्थित श्रमशील साधक सम को सम्यक् तप में ले जाते हैं। वे समेद के कूट पर विराग सेवनार्थ मानो एकावली, रत्नावली, सिंह निक्रीडित आदि तप में स्थित होने के लिए ही वे प्रान्त वर्षा से कान्तिमय हो गए हों ऐसा प्रतीत हो रहा था।।42।।

जलोद्घतगतवृत-तविद-तवं ते सयला साहू समि-खम-मुत्ती सुद-वद-वित्ती।
णगर-पुरं गाम-गदं-पंतं चरिद-चरित्तं पवलं कंतं।।43।।

इस प्रकार सभी साधु तप से अपने आपको तपाते हुए चारित्र की उत्तम कान्ति को उस वर्षावास में चरितार्थ कर रहे थे, वे अब नगर, पुर, ग्राम आदि के प्रान्त को छोड़ इन कूटों पर तप करते हुए ही चारित्र को उत्कृष्ट बनाना चाहते हैं।।43।।

इदि तीस-विरागो समत्तो।

इकत्तीस-विरागो

नवमालिनीवृत्त ।।।।ऽ।ऽ।ऽ।।।ऽऽ = 12 वर्ष

सुद-परिगंधा-पुप्फ-सम-सव्वे पमुदिद-पण्ण-पण्ण-मह-सुत्त।
विणु णहु सत्थ-सत्थ-सुदसारो इध इध आगदा पवद-वारो।।1।।
आसोज किण्ह-सदमिं बहु-मण्ण-धण्णो संजाद-एग-विमलो विमलो हि पण्णो।
बालो पहाद-अरूणो अरूणारविंदो वे आदि संति-गरिमं गणणायगो सो।।2।।
सो सोम्म-सोम्म-विमलो अणमेदिणीए आदिच्च-वण्ण-पहु-भत्त-सदा हि णेही।
आगच्छएंति पद-पावण-संति-हेदुं आगार-सागर-समं गहिरं च सुत्तिं।।3।।
आणाणुसासण-सिरी-जुद-साहु-साहू सागार-चत्त-मणुजा अणगार-सोहू।
आसीस-पावण-विराग-विराग-लाहं पत्तेज्ज णो इग-बहुल्ल-पसंत-मग्गं।।4।।

जहाँ पर नव पुष्पों की गंध सर्वत्र रहती है, वहाँ प्राज्ञ प्रज्ञ जन अपने सूत्रों में प्रमोदभाव लाना ही चाहते हैं। क्योंकि प्राज्ञजनों के बिना शास्त्र रूपी शस्त्र के सार को समझना संभव ही नहीं। ये सरस्वती पुत्र जब भी ऐसे स्थलों पर आते हैं, वे पाते भी है और देते भी हैं।।1।। आसोज कृष्ण सप्तमी को लोगों द्वारा मान्य किया गया, उसे धन्य माना, क्योंकि इस दिन एक विमल मानो मल से रति प्रज्ञावान् बाल अरूण अरूणारविंद वाला/सूर्य काशी आदिनाथ का अरूण भी विमल/विमलसागर भी बन गया था जो गणनायक हुए, जिन्होंने चारित्र चक्रवर्ती आचार्य आदिसागर व आचार्य शांतिसागर की गरिमा को बनाए रखा।।2।। वे आचार्य विमलसागर विमल थे, सौम्य/चन्द्रसम जनमेदिनी पर विमल भाव युक्त थे। वे आदित्य वर्ण, प्रभु आदित्य के भक्त सदा ही अपने समीप आने वालों को सूर्य की तरह तेजस् वर्ण देते हैं। आगार तो सागर में समाहित गहरी सूक्तियों को प्राप्त करते हैं। अर्थात् जो भी आपके पवित्र चरणों में शान्ति हेतु आते, वे शान्ति पाते हैं।।3।। जो भी आपकी आज्ञा, अनुशासन रूपी लक्ष्मी युक्त होते, वे या तो साधु बनते या साधु हो जाते हैं। सागर श्री सागर घर का परित्याग करके अनगार बन जाते हैं ओर कुछ अगार में ही साधु/अच्छी प्रकृति वाले बन जाते हैं। ऐसे एक नहीं, अपितु अनेक लोग प्रशान्तमार्ग/वीतराग मार्ग को प्राप्त करते, विराग लाभ को प्राप्त करने वाले आचार्य विरागसागर इन्हीं से दीक्षित विरागमार्गी हैं।।4।।

जेणं च जम्म-सयलं सहलं कुणेज्जा तस्सिं च जम्म -जय-पूद-सदा हवेदि।
वे वीदराग-पध-गामि-गणी हि सव्वे पुज्जा इमो त्ति विमलो विमलं पएज्जा।।5।।
सड्ढाजणा समिद-सागर-मुत्त-सुत्तिं पत्तेंति पावण-विराग-विराग-मुत्तिं।
अज्जे सिरी महुवणेवि महुत्त-सोहा पण्णेहि पुज्ज-विमलासण-सम्म-चिट्ठे।।6।।
पण्णो रमेस-जय-सीदल-फल चंदो सेयंस-णाण जय-णिसंत-सुरिदं-विण्णो।
अस्सिं विणोद-सणदो विमलो सिवो वि राका वि माधुरिय-मुण्णि-मदी वि इंदू।।7।।
अज्झप्प-तच्च-विसयाण विसेस-गोट्ठी माहुत्त-दाइणि-इमा सुद-वाहिणी वि।
सल्लेहणा समि-समाहि-विचार-पुण्ण आचार-सावग-पही सद-पाविणी सा।।8।।
तिण्णित्ति-काल-भवणेक्क-विसाल-कक्खे सुद्धोवजोग-विसयस्स सुगंध-वादं।
णेदूण सम्म-सम-ईकखण-वायणाए सूरि त्ति सीदल-मदि त्ति णाणी।।9।।
मादुत्ति मादु-सुर-भाददी सारदा सा पगित्त-सक्किद-सुधी जिण-दंस-णेत्ती।
कव्वेरसे रद-सु-पोम्म-पधी सुपण्णी आयार-णिट्ठ-गणिणी गण एक्क-मोत्ती।।10।।

जिन्होंने अपना समस्त जीवन सफल किया, उनका जन्म सदा ही पवित्र होता है। वे वीतराग पथगामी समस्त गणी पूज्य हैं, परन्तु आसौज कृष्ण सप्तमी का दिन विमल हुआ आचार्य विमलसागर से, जो अब भी विमल बना रहा है, लोगों को।।5।। श्रद्धालु लोग समित्व/समता के सागर की मुक्ताओं एवं सूक्तियों को प्राप्त करते हैं। जो विरागपूर्वक पावन हुए वे विरागमूर्ति को चाहते हैं। इसलिए आज आचार्य विरागसागर के सानिध्य में वंसत की शोभा प्रज्ञाजनों के समागम से की जा रही हैं, जो सभी आचार्य विमलसागर के इस शासन में स्थित हुए पा रहे हैं।।6।। इस प्रसंग पर रमेशचन्द्र, जयकुमार, शीतलचंद, फूलचंद, श्रेयांस, ज्ञानचंद, जयनिशान्त, सुरेन्द्र, विनोद, सनत, विमल, शिवचरण आदि विद्वान थे। इसमें विजयकुमार, राका, (मुन्नी) (श्रीमती फूलचंद) उनकी पुत्री इंदु भी सहभागी थी।।7।। इस संगोष्ठि में अध्यात्म, तत्वज्ञान आदि विषयों का विवेचन मधुवन में मानो मधुमास/वसंतोत्सव का आभास कराने लगा था, यहाँ श्रुत-वाहिनी तो सल्लेखना, समाधि, समत्व की विचार दृष्टि श्रावकाचार का पथिक/मार्गदर्शी एवं सत्ता का पावन भाव दर्शाती है।।8।। संगोष्ठि तीन सत्र में भवन के एक विशाल कक्ष में होती है। उसी में आचार्य विरागसागर द्वारा लिखित शुद्धोपयोग ग्रन्थ के विषय को लेकर समीक्षापूर्वक वाचना को महत्त्व दिया जाता था, इसमें आचार्य शीतलसागर और आर्यिका ज्ञानमतिजी की उपस्थिति भी ज्ञान की ईहा करती थी।।9।। माता तो मातृत्व से होती है यदि वह स्वरमाता, भारती, शारदा है तो मात् का पद वाली प्राकृत एवं संस्कृत शास्त्र की ज्ञाता, जैनदर्शन की अनुप्रेक्षी अनेक प्रकार के काव्यरस में रत मानो पद्मासनी की प्रधी, प्रज्ञापनी, आचार निष्ठ गणिनी आर्यिका ज्ञानमति माताजी (शिष्या आचार्य सुमतिसागर) तो इस 20वीं के अन्तिम चरण और इक्कीसवीं सदी के प्रवेश में आचार-विचार की प्रतिष्ठा लिए हुए हैं।।10।।

तावत्थली रदण-जुत्त-तवी सुभूमि मोक्खामदि त्ति समिधी-समदंसिणी सा।
संबोहणे सम-विराग-अज्जी कल्लाण-अज्जिग-समाहि-असीस-तुज्झे।।11।।
चागीवदी-सुमदि-सागर-आसमम्हि बंही हवेदि विहि-सक्कर-उच्चरेणं।
दिक्खेज्ज णाणमदि-अज्जिग-अज्जिगाए पच्छा समाहि-समिदे इध खेत्त-सिद्धे।।12।।
णिट्ठावणं हवदि वाचसदू हि संघे तेरस्स-अंवरणवे दु-सहस्से-अट्ठे।
पिच्छित्तु-वट्टण-पदाइरियस्स रोहो संघस्स सव्व-अणगार-सुपिच्छि-जुत्तो।।13।।
अस्सिं च एलग-विणग्घ-विसंत-साहू जो खुल्लगो वि अणगारय-विस्स जोदी।
जाएज्ज सो विजय-एलगं-संजओ वि णामो विसाग-चिर-एव दिव्व-उत्तो।।14।।
संघे अणेगवद-जुत्त-सुबंह-भावी सज्झाय-सत्थ-अणुसासण-चाग-जुत्ती।
बाला-सिरी बाल-रवि-सावण-साविगा वि वस्सा वि सागरपुरी वि पवेस-पत्ती।।15।।
एगादु एग-समणा समिदिप्पिया ते संघत्थ-विस्स-अणुणाम-सुधीरवंतो।
तं सेव-साहु-णियमेण कुणेंति साहुं पादक्खयी चरदि धीरय-संति-भावी।।16।।
सल्लेहणा-धर-दुवालस-आसमे हि आराम-जुत्त-चरियं चरदे हि णिच्चं।
आहार-एग-अणुणेय-पुणो पुणो हि सम्माउ-सम्मदि-मुणीसर-आण-जत्ती।।17।।

सम्मेदशिखर का प्रत्येक स्थल रत्नत्रय युक्त तपस्थली है, यह उत्तम भूमि भी है। यहाँ आपके आशीष से आर्यिका मोक्षमति और आर्यिका कल्याणमति माताजी की समाधि हुई। समाधि समत्वदर्शिनी होती है, समत्व के सम्बोधन से और विराग के संमुख विरागशीलवंतों की विराग और कल्याण/मोक्ष का कारण बनती है।।11।। सम्मेदशिखरजी में एक त्यागी व्रती सुमतिसागर के आश्रम में एक ब्रह्मचारिणी आचार्य विरागसागर के विधि संस्कार उच्चारण के द्वारा आर्यिका ज्ञानमति से दीक्षा प्राप्त करती है, वही कुछ समय पश्चात् समभावपूर्वक सिद्धक्षेत्र पर समाधि को प्राप्त होती है।।12।। वर्षावास का निष्ठापन चतुर्विध संघ के समक्ष होता है। 13 नवम्बर 2000 को 8वाँ आचार्य पदारोहण समारोह पिच्छि परिवर्तन के साथ होता है। इसी अवसर पर सभी साधुओं की पिच्छि परिवर्तन की जाती है।।13।। इसी प्रसंग पर ए. विनर्घ्यसागर, ऐ. विश्रान्तसागर मुनि हुए। क्षु. विश्वज्योति भी अनगार बन गए। क्षुल्लक विजयसागर ऐलक हुए ओर ब्र. संजयजी ऐलक विशोक सागर हुए। यह इतिवृत्त बन गया सम्मेदशिखर में।।14।। इस संघ में अनेक व्रत युक्त ब्रह्मचारी ब्रह्मचारिणी आदि थे, वे स्वाध्याय, शास्त्र, अध्ययन, अनुशासन युक्त त्याग को महत्त्व देते हैं। अनेक लक्ष्मीवंतों की बालाएँ, बालरवि, श्रावक-श्राविकाएँ त्यागमार्ग की ओर अग्रसर होती हैं।।15।। आचार्य विरागसागर के संघ में एक से एक श्रमण थे, वे समिति प्रिय भी थे, संघस्थ विश्वधैर्य विश्वनाम में एक धैर्यवान थे। पैर के फेक्चर होने पर भी शान्त एवं धैर्य को धारण करने वाले थे, उनकी सेवा साधु नियम से करते हैं, उनकी साधुता के लिए।।16।। ये आचार्य तपस्वी सम्राट सन्मतिसागर की प्रेरणा के यात्री, एक दिन आहार, एक दिन पेय की क्रिया बारह वर्ष तक दर्शन, ज्ञान और चारित्र की चर्या में पालन करते, क्योंकि मुनि विश्वधैर्यसागर जी ने बारह वर्ष की सल्लेखना का नियम भी लिया था, उसी में वे सम/श्रमशील थे।।17।।

आचार-चारूचरियं परिपालमाणो आहीइ-वाहि-जुद-संत-पसंत-दाई।
सीसो त्ति सूरि-विमलस्स इगो त्ति सूरी सत्थाण पक्खि-भरहो भडएक्क-कूवे।।18।।
कूवे पडेंति भव-अंध-गदी-गदीए तं सेवहेदु-गिरिडीह-गदो त्ति सूरी
एगे दिवे तिस-तिसे ण हु मुच्छवंतो सेवं कुणेदि असण विहि-वंत-भूरिं।19।।
वच्छल्ल-भाव-गउ-तुल्ल-मुणीण अस्स देसो सदा मणुज-माणस-हंस-रंजे।
किं किं ण दाण-जिणा-सासग-साहु-साहू वंदीगिहे वि भव-बंधग-बंधुगाणं।।20।।
इत्थेव विस्स-धिरयो णियमाणु-रूवे आहार-चत्त-जल-मेत्त-पइण्ण-जुत्तो
सल्लेहणं कुणदि पुण्ण-समाहि-सम्मं जोगे दु जादि समणीस-विराग-भावी।।21।।
पुत्तो जदि त्ति जदणेण जदीण सेवी सो अप्प-आद-जणगस्स अवस्स-णेही
सड्ढा-सिरीर-सम-साहग-खेत्त-भावं णेदूण णिम्मयदि णेह-पदीग-ठाणं।।22।।
वीरिंद-पुत्त-परमोहि सुसड्ढ-सीलो अप्पाण-सेवि-जणगस्स-समाहिट्ठाणं।
कुव्वेदि तत्थ सरणेण सुरम्म-छत्तं आणंदएज्ज भुवणं भुवणेक्क-सीलं।।23।।

आचार की उत्तम चर्या को पालन करने वाले भी शरीर की आधि-व्याधि युक्त हो जाते हैं, परन्तु वे उस अवस्था में शान्त, प्रशान्त ही रहते। आचार्य विमलसागर के शिष्य आचार्य भरतसागर जो शास्त्रों के प्रकाशक के पक्षधर थे, वे एक दिन कूप में गिर पड़े।।18।। इस संसार में सर्वत्र गति है, गतियों के कूप अंधे होते हैं, वे लोगों को अंधा बना देते हैं और उसमें गिरा देते हैं। फिर भी जो सूर्य हैं वे तो ऐसा होने पर उन्हें बाहर निकालते हैं और तीस किलोमीटर की लम्बी यात्रा एक दिन में करके उनकी सेवा में पहुँचते हैं। वे गिरिडीह में मूर्छा रहित ही सेवा करते और साथ ही आहार आदि की विधि में सहभागी बनते हैं।।19।। आचार्य विरागसागर का वात्सल्यभाव गौ-वत्स की तरह मुनियों के लिए था, वे अपने उपदेश से सदैव मनुष्यों के मानस रूपी हंस को रंजित करते हैं अर्थात् वे मनुष्यों के मन को हंस की तरह धवल बनाते रहते है। जिनशासन के साधु तो साधु ही होते हैं इसलिए तो वे जीतने का दान देते अर्थात् इन्द्रियजय का उपदेश देते है। वे बंदीगृह में बंधन युक्त जनों और भवबंधन युक्त बंधुओं को सम्यक् उपदेश देते हैं।।20।। इधर नियम सल्लेखना वाले विश्वधैर्यसागर आहार परित्याग कर देते हैं, फिर मात्र जल की प्रतिज्ञा युक्त पूर्ण सल्लेखना एवं समाधि की किया को प्राप्त होते हैं। इसमें आपका सहयोग तो मानों योग में स्थित हो गया हो ऐसा प्रतीत होता था, सो ठीक है श्रम में सम तो विरागभावी होता है। आचार्य विरागसागर इस समाधि के प्रसंग पर श्रमणों में एवं सभी लोगों में विरागभाव उत्पन्न करते हैं।।21।। गृहस्थ अवस्था के पुत्र वीरेन्द्र जी यतिकों की सेवाभावी थे, वे अपने थल से अपने पिताश्री की स्मृति को बनाए रखते हैं। सो ठीक है सो श्रद्धाशील होते हैं, वे समत्व साधक के क्षेत्र को लेकर उस स्थान पर उनकी स्मृति में स्नेह स्थान को अवश्यक बनवाते हैं।।22।। मुनि विश्वधैर्यसागर के पुत्र वीरेन्द्र सूरत वालों की ओर से उनकी स्मृति में समाधिस्थान को निर्मित करवाया गया। वहाँ तेरहपंथी कोठी के समीप स्मृति से सुरम्य छतरी आज आनंद दे रही है और वह शील का एकमात्र कारण बनी हुई है।।23।।

पूदो इमो परम-रत्न-सुसिद्ध-सेलो साहस्स-वास-अधुणा वि सुसड्ढ-खेत्तो।
आगच्छएंति मणुजा णिय-जम्म-संतिं पुण्णंतिहिं च विमलं विमलेज्ज हेदुं।।24।।
पोम्माणुसासण-सुपोम्म-मुणी वि सव्वे सूरी विवेग-भरहस्स सुसाहु-वग्गे।
वेरग्ग-सागर-सहाव-जदी अणेगा छट्ठे तिहिं परम-पुण्ण-जणं जणेज्जा।।25।।
अप्पं गुरुं व विमलं च विरागसूरी जत्ती-णिवास-मुणि-वास-अणाह-केंदं।
णाणाविहं च समजोजण-जोग्ग-हेदं संबोहए सह-सदे-अवि-जीवणं च ।।26।।
पोत्थस्स भुत्ति-करूणा करूणं पदेज्जा पुज्जो सिरी गणहराइरियो हि कुंथूं।
कल्लाण पंचसमए कर-मोयणं च पत्तेज्ज कुंथगिरि-पंगल-सम्म-सुत्तं।।27।।
सूरी विराग-इणमे मह-णंद-भूदो सव्वाण- कूडझय-रोहण-भाव-जुत्तो।
अज्जीवि णाणमदि-पेरग-भाव-जुत्तो सव्वत्थ संति-परम पदएज्ज सुत्ता।28।।
एसो अपुव्व-समया अदिणंद-दाई संतिप्पदाइ-जण-मेदिणि-भत्ति-भाई।
कल्लाण-पंच-समए वि विवेगसूरी साहस्स-साहस-जणा जग-जोदि-जाई।।29।।
चंदो वि भाग-सुद-कण्ह-अजीद-सेट्ठी केलास-पण्ण-धरमी वि णवीण दीवो।
ते सेवगा सदद-भत्ति-परायणा वि पंथी वि-कुंड-समिदीइ समदस्स-णंदी।।30।।

यह पवित्र स्थान है, यह परम रम्य सिद्धक्षेत्र पर्वत है, जो हजारों वर्ष से अब तक श्रद्धा का केन्द्र बना हुआ है। यहाँ लोग अपने जन्म को सफल करने के लिए आते हैं। आज 6वीं पुण्यतिथि आचार्य विमलसागर को निश्चित ही निर्मलभाव प्रदान करेगी।।24।। आचार्य पद्मनन्दी और उनका पद्म शासन युक्त मुनि समूह, आचार्य विवेकसागर, आचार्य भरतसागर के समस्त साधु समूह, वैराग्यनंदि, स्वभाव सागर आदि अनेक संत छठी पुण्य तिथि को परम पुण्यशाली बनाते हैं।।25।। आचार्य विरागसागर अपने गुरु आचार्य विमलसागर को विमल रूप में देखते हैं। इसलिए उन्होंने कहा- इस पुण्यतिथि पर यहाँ यात्री निवास, मुनियों के आवास, अनाथ केन्द्र आदि निःशुल्क हों। उन्होंने उनकी जीवनी को सभी लोगों के समीप पहुँचाने के लिए भी योजना रखी, जो नाना रूप लेकर उपस्थित हुई।।26।। 'करुणा मूर्ति संत' पुस्तक तैयार की जाती है। जिसे आगामी समय में गणधराचार्य श्री कुंथुसागर के करकमलों द्वारा विमोचित किया जाता है। जब कुंथुगिरि में पंच कल्याणक हो रहा था, जो प्रांगण सम्यक् सूत्रों को देने वाला था।।27।। आचार्य विरागसागर सम्मेदशिखर के प्रवास पर अति आनंदति थे, आर्यिका ज्ञानमति माताजी की प्रेरक भावनाएँ तब मूर्त रूप ले सकीं, जब वहाँ के प्रत्येक कूट पर ध्वजारोहण सम्पन्न हुआ, इससे सर्वत्र परम शान्ति को उन्पन्न किया गया और शान्ति की मुक्ताएँ बिखेरी गई।।28।। यह अपूर्व समय अति आनंददायी था, यह जनमेदिनी का भक्ति और मातृत्व का सूचक शान्ति दे रहा था। जब आचार्य विवेकसागर भी पंचकल्याणक विधि हजारों लोगों के बीच सम्पन्न करा रहे थे जब ऐसा प्रतीत हुआ मानो जय/सम्पूर्ण लोक ही विराग की ज्योति से दीप्त हो गया है।।29।। ट्रस्टी भागचंद, कन्हैयालाल, अजित पाटनी आदि श्रेष्ठी तो सक्रिय थे। सेवाभावी कैलाशचंद्र, पन्नालाल, धर्मचंद्र, नवीन, दीपचंद आदि सदैव भक्ति युक्त थे। सभी तेरह, बीस पंथी, श्वेताम्बर आदि के सदस्य तथा अनेक समितियाँ भी सक्रिय थी।।30।।

सेवे वि तावस-मणि-मुत्त-पवाल-पण्णी जेतिल्ल-सागद-किदे बहुणंद-जुत्ता।
अज्जे हि खिण्ण-विद-बेल-करद्ध-मुत्ता अस्सूण मग्ग-अहिसिंचिद-वीर-सुत्ता।।31।।
दोसाहसे जणजणंबरि-रोह-रोहे कूडे पडंग-णव-साहग-णेह-लेहे।
सूरी विहारग्ग-गए गदि-सीलमाणा उच्छाह-धम्म-अणुसासण-पुव्व-सव्वे।।32।।
मंदार-खेत्त-पुरचंप-पुरादि-पूदं दंसेज्ज भत्ति-सुद-सत्ति-विराग-रीदिं।
विस्सोजसो त्ति मुणि-विक्कम-पुव्व-अत्थे अग्गे हवेज्ज गणणायग-सागदेज्जा।।33।।
खेत्ता हि खेत्त-विहरिज्जमणे मणीसे पूदा इमे अदिसया अणुमेज्ज-सिद्धा।
आतंद-घाद-उवसग्ग-परीसहाणं तत्तो वि तावस-विहार-विहारएज्जा।।34।।
जत्थे विहार-गदिमाण-इमे हि सव्वे साहू-हवेंति तध पसण्ण-पण्ण-साहू।
साहेज्ज-भत्ति-भवणेज्ज-मुणीस-मंते पच्छा णवाद-गुण-पाव-अणेग-पंते।।35।।
गिम्हे विहार-तव-माणस-संत-कुव्वे किं णो असंत-जण-हीण-विहार-पंते।
आहार-हार-समणाण सुदुल्लहो वि तत्तो वि सावग-जणा इमएसणेज्जा।।36।।

सम्मेदशैल पर जब भी आगत तपस्वियों का स्वागत किया जाता है, तब तापस रूप मणि, मुक्ताएँ एवं प्रवाल पर्णी वनस्पतियाँ अति आनंद युक्त होती हैं, वे आज बिदाई पर खिन्न करबद्ध हुई अश्रुओं से मार्ग का अभिषेक करती हुई वीर के सूत्र ही दिखला रही है।।31।। सन् 2001 जनवरी में जब ध्वजाएँ कूटों पर फहराई गई थीं, तब वे कूट नव साधक के स्नेह के लेख पर लहरा रही थी, वे आज गया की ओर विहारमान संघ से उत्साह युक्त, धर्म, अनुशासन को सूचित करती हुई पुरा और नवीन दोनों ही साधकों को तप का संदेश दे रही थी।।32।। सम्मेद शिखर से विहार करते हुए मंदारगिरी, चंपापुरी भागलपुर आदि प्राचीन पवित्र स्थानों को देखते हैं, जो भक्ति, श्रुत शक्ति और विराग पद्धति को दर्शा रहे थे। वहाँ पर आचार्यश्री के शिष्य विश्वशसागर, विक्रमसागर पहले ही विराग के पुरूषार्थ युक्त गणनायक के स्वागत में आगे आते हैं।।33।। चारों ओर हरित क्षेत्र, बिहार के पवित्र क्षेत्र, अतिशय, अनुपम सिद्ध क्षेत्र हैं, मनीषियों के मन में आतंक, घात, उपसर्ग और परीषहों का अनुमान यही होता है। फिर भी इस बिहार प्रांत के तापस स्थानों में विहार करना भी उपसर्गजयी का कार्य क्षेत्र है।।34।। आचार्यश्री जहाँ विहार के लिये गतिमान हो, वहाँ साधु ही साधु, प्रसन्नता ही प्रसन्नता, प्रसन्नसागर, प्रज्ञासागर आदि मुनि अपनी भक्ति भावना से आचार्य के प्रति मंत्रणाभूत होते हैं। आचार्य तो चलते जाते, नवादा गुनावा, पावापुर आदि प्रान्त में पहुँचते ही मंत्रमुग्ध हो जाते हैं।।35।। जिस ग्रीष्म में विहार तपस्वी संतों के लिए संताप देता हैं, मानस को क्या शान्त करेगा? क्या इस अशान्त जनहीन, भक्तिहीन बिहार प्रान्त में आहार आदि की एषणा हो सकेगी? ऐसा मन में अवश्य आता, परन्तु श्रावक जन इसमें सदैव समभागी बनते हैं।।36।।

संता सुदासय-सदा सुद-वाहिणि च वाहेज्ज रण्ण-णयरे उवगाम-भागे।
भादरा सदद-माण-पमाण-भागे। भत्तादरा सदद-माण-पमाण-भूदा दाणं कुणेंति
दवियं भग-भत्ति-भाव।।37।।
णेगाणि तच्च-विहवाणि सुदम्हि मूले एसो हि भासदि जणाण मणेसु सव्वे।
ते एगसुत्त-सुद-पंचमि-दिव्व-दिण्णे सारं मुणेंति भगवतंत-रु-अत्थ-सुत्तं।।38।।
धण्णा हवेंति मणुजा मणणेहि अज्ज सज्झाय-सुत्त-अणुसीलण-भाव-सुद्धो।
आदा विसुद्ध-परिणाम-मणुण्ण-णाणं तं णाण-दंसणुवेजोग-पदे हि जीवो।।39।।
जग्गेंति भाव-सुद-सागर-मूल-बोहं चादुस्समास-करणत्थ-णिवेदणं च।
जिट्ठे जणा महजणी सुधि-सावगाओ तं भावणं च पडि अंगि-इमो हि संघो।।40।।
अस्सिं गया-णयर-पंत-सुकूड जुत्तो कूडे वि कोल्लुअ-गिरी गिरी-राज-पुव्वो।
पासाण-एग-पडिमा अवि विंस-रम्मा तं दंसणत्थ-गमणेज्ज विराग-मुत्ती।।41।।
पंथे अणेग-सम-सिंचिद-सम्म-खेत्ता भिक्खु त्ति ठाण-पुर-झाण-सुणाण-केंदो।
बुद्धं च बोहि-इध सड्ढ-विसेस-भागो दंसेज्ज तं रदण-सम्म-तयं मुणेदि।।42।।

संत तो सतत् श्रुताराधना युक्त श्रुत भारती को लेकर चलते हैं। वे अरण्य हो, नगर हो या छोटे ग्राम आदि भागों में भक्त के पात्र होते हैं, मान-प्रमाणभूत होते हैं और उन स्थानों पर भक्तामर, द्रव्यसंग्रह, भगवती आराधना आदि के भक्तिभाव/आध्यात्मिक चिंतन को प्रदान करते हैं।।37।। श्रुत में नाना प्रकार के तत्व हैं, यह ज्ञान लोगों के मन में जैसे ही होता है, वैसे ही वे सभी श्रुतपंचमी दिवस पर सूत्रों की दिव्यता सूत्रार्थ को जानते हैं ओर उसके सार को समझते हैं।।38।। आज सूत्र स्वाध्याय और उसका अनुशीलन तो भाव शुद्ध ही है, जो आत्मा का विशुद्ध परिणाम है, वह मनोज्ञ ज्ञान है। आत्मज्ञान है। जीव, आत्मा और ज्ञान एक पद में एकार्थक हैं। जीव ज्ञानोपयोग और दर्शनोपयोग से युक्त होता है।।39।। श्रुत पंचमी की वास्तविकता में अपने भावों को जागृत करते हैं, 'गण' के निवास। वे चातुर्मास के निवेदनार्थ उपस्थित होते हैं, उसमें सभी समाज के आदरणीय व्यक्ति, श्रावक-श्राविकाएँ, श्रेष्ठ-श्रेष्ठि-महाजनी, सुधी आदि थे। उनकी भावना को यह संघ स्वीकृति प्रदान करता है।।40।। इस गया नगर के समीपवर्ती क्षेत्र में उत्तम पर्वत कूट हैं, उनमें कोलुआ गिरि तो पूर्व का गिरिराज-सम्मेदशिखर की कहा जाता है। जहाँ पर 20 तीर्थंकरों की प्राचीन प्रतिमाएँ अत्यंत ही मनोज्ञ हैं, वे एक पाषाण पर मानों पाषाण हृदय जनों के लिए भी प्रेरणा देती हैं कि अपने आप को रम्य बनाओ। इसलिए विरागमूर्ति आचार्य विरागसागर उनके दर्शनार्थ जाते हैं।।41।। इस बिहार क्षेत्र में गया को श्रमणों द्वारा अपने श्रम से, समभाव से सदैव सम्यक् किया गया। यह भिक्षुओं/बौद्ध भिक्षुओं की साधना स्थली ध्यान और ज्ञान का केन्द्र है। यहाँ बुद्ध को बोधि सत्त्व की प्राप्ति हुई थी, यहाँ पर बौद्ध भिक्षु भी भंते स्वयं पू. गुरुवर का ससंघ हर्षोल्लास से अगवानी करते हैं, महाआरती करते हैं तथा स्वयं क्षेत्र का निरीक्षण कराके अपने सौभाग्य को सराहते हैं तब भिक्षु श्री भंते का यह विशेष श्रद्धाभाव अत्यंत दर्शनीय हुआ था। वही चिंतवन में अवगाहन करके आचार्यश्री रत्नत्रय-सम्यक्त्व के तीन मार्गों पर चिंतन करते हैं।।42।।

मासे चदु त्ति समणा सम-सील-जुत्ता जाएज्ज अप्प-परमप्प-सहाव-मुत्ता।
सव्वे समागद-जणा पडिपेह-चित्ता झाणे रदा पडिदिणं च विराग-पत्ता।।43।।
सव्वे दि णुच्छव-समित्त-सुतच्च-सारे दंसेज आगद-जण भव-भव्व-कुव्वे।
णहेज सत्थ-जल-पुण्ण-णदीइ गंगे धण्ण कुणेंति णिय-आद-पमाद-मुत्तं।।44।।
वच्छल्ल-पुण्ण-ववहार-गुरुस्स दंसे साहू त्ति कट्ठ-समए तध साहणाए।
आहार-सम्म-पडि-पुच्छ-विहार-भाव पुच्छेज्ज णिच्च सम-सागर-धीर-सूरी।।45।।
तावे तवी वि सयला मुणि-सामहगा हि रत्तां रदी-विगद-भक्ति-विराग-पत्ता।
संघे वदी-वइय-वच्चय-बंहचेरीवासोववास-उववास-सदा हि कुव्वे।।46।।
सूरी कुणेदि उववास-जदि त्ति किं णो साहु त्ति साहग-वदी अणुलेह-बंही।
बंहं परं च परमप्प-सरूव-आदं पत्तु च णं सम-समित्त-विसुद्ध-भावं।।47।।
पव्वे तिहीइ उववास-सुझाण-मोणं सामाइगं चदुदिक्षे खडगासणे हि।
चागं रसं च चदु-अण्ण-पमाण-भूदं आयार-णिट्ठ-मुणि-णायग-साहगा वि।।48।।

चातुर्मास के चारों महिने श्रमण तो सम शील युक्त होता हैं। वे अपने और दूसरों का भी सम-समत्व को दिखलाते हैं। वे आत्मा से परमात्मा स्वभाव की मुक्ताओं वाले सभी समागत जनों के चित्त को अनुप्रेक्षी बना देते हैं। वे ध्यान में समागत को ध्यानरत बनाते हैं। इससे वे प्रतिदिन विराग की पात्रता समझ पाते हैं।।43।। यहाँ प्रतिदिन उत्सव सा प्रतीत होता था, क्योंकि समत्व, सुतत्त्व के सार में लोगों को आत्म-दर्शन हो रहा था, आगतजन संसार को भव्य करने में लगते हैं। यहाँ शास्त्र रूपी पवित्र गंगा नदी के नीर में स्नान करते ही लोग पुण्यार्जन करते हैं। वे अपने आत्मा को प्रमाद मुक्त करते हुए धन्य कर रहे थे।।44।। साधु भी गुरु के वात्सल्य पूर्ण व्यवहार को सदैव देखते हैं। वे कहर एवं साधना के समय में भी वात्सल्यभाव देखते हैं। आहार या विहार की चर्या को भी सम्यक् आदर-पूर्वक पूछते हैं। वे सागर के समान गंभीर, धीर एवं समभाव सूरी सभी का कल्याण चाहते हैं।।45।। संघ में व्रती, वैय्यावृत्य करने वाले ब्रह्मचारी, तपस्वी साधक, मुनि आदि सभी राग से रहित, भक्ति युक्त मानो विराग ही प्राप्त करना चाहते हों, इसलिए वे वर्षावास में उपवास पर उपवास कर रहे थे।।46।। यदि संघ में आचार्यश्री स्वयं उपवास करते हैं तो क्या अन्य साधु नहीं करेंगे? साधु, साधक, व्रती, ब्रह्मचारी आदि का अनुलेख/नियम तो तपस्या है। वे ब्रह्म, परब्रह्म, परमात्म स्वरूप आत्मा और सम, समत्व विशुद्ध भाव की प्राप्ति के लिए ऐसा श्रम करते हैं।।47।। पर्व, तिथि आदि में उपवास, उत्तम ध्यान, मौन, चारों दिशाओं में खड्गासनपूर्वक सामायिक, रस त्याग, चार अन्य प्रमाणभूत आचार्य को आचारनिष्ठ देखकर अन्य आचारवंत साधक भी इसी मार्ग की ओर अग्रसर होते हैं।।48।।

कुव्वेदि विस्समुणि-सोलह कारणं च सत्तं मुणी वि विहिदो छ विणकधे।
अज्जी विसिट्ठ-अड-इगेवि-भूदि छट्ठं विरत्त-विजया इगएविणीद।।49।।
एलो विसोग चदुवास-सुवदि-सोल्लो सालू इगारह-सुविण्ण-पणं पणं च।
सीमा पदिट्ठ-वरखा अवि णीदू-तेला अण्णण्ण-सावग-सुसाविग-वास-जुत्ता।।50।।
इदि ताव-जुदा सव्वे पज्जुसण-सु-अज्झगे।
कम्म-बंध-विमुत्तं ते विराग-णंदणे वणे।। 51।।

इस पर्यूषण पर्व पर मुनि विश्वजीतसागर सोलहकारक व्रत को करते हैं। मुनि विहितसागर सात, मुनि विनर्घ्यसागर छह, आर्यिका विशिष्टश्री आठ, विभूतिश्री ग्यारह, विजयश्री और विरक्तश्री छह एवं विनीतश्री ग्यारह उपवास करती हैं।।49।। ऐलक विशोकसागर चार उपवास, बाल ब्र. दीदी स्वाति सोलह, सालू ग्यारह, स्वप्निल पाँच, सीमा दीदी पाँच उपवास करती हैं। तेला तप युक्त प्रतिष्ठा, वर्षा एवं नीतू होती है। इस अवसर पर अन्य श्रावक-श्राविकाएँ आदि भी तप युक्त होते हैं।।50।। इस प्रकार वे सभी ताप युक्त, अध्यात्म पर्व पर्यूषण की उपासना में रह मानों कर्मबंध के निवारण हेतु विराग रूपी नन्दनवन में स्थित होना ही श्रेयस्कर मानते हैं।।51।।

इदि इगत्तीस-विरागो समत्तो।

बत्तीस-विरागो

तुमेव जगणाहत्तो, तुमेव जोदि-रूवगो। तुमेव बदं-एगत्तो, तुमेव सि विरागओ।।1।।
अम्हे भवंतर-भवे भममाण-जीवा अज्झप्प-जोदि-सुद-सिंधु-सुणीर-रित्ता।
जाणेंति णो जग-विराग-विराग-मुत्ता कप्पो तुमं सरण-आगद-काम-घेणू।।2।।
अज्झप्प-णीर-पहविदु चरएज्ज साहू को अहरेज्ज भव-बंधण-जुत्त-जाओ।
तं चिंत-मुत्त-सम-भावण-सम्म-धम्मं इच्छे जयं जय-विराग-मुणीस गुंजे।।3।।
णं दीव-दीव-कुल-दीवग-भास-दिप्पे दीवावली वि समए दयएज्ज तेजं।
णिव्वाण-वीर-दिवसो हिव-दिव्व-रूवे होज्जाज्ण मण्ण-अणुमण्ण-विणा हि जोए।।4।।
वीरस्स दीव-समला समणा हि अत्थि दीवेंति ते भुवण-सव्व-सदा हि णंदे।
दीवादु दीव-दिवदे दिव-माणवाणं सम्मं विराग-परिणाम-सुवत्तिगाए।।5।।

प्रति समय एक ही भावना कि हे जगत् नाथ! आप ही सब कुछ हो, आप ज्योति स्वरूप हो, आप ही एकमात्र जगत् के वंद हो और आप ही विराग के आधार हो।।1।। हम सभी भव-भवान्तर में भ्रमण करने वाले जीव हैं। इम अध्यात्म ज्योति, श्रुत सिन्धु के उत्तम नीर से रहित हैं। हम विराग से रहित संसार के प्रति राग युक्त संसार को ही नहीं जानते हैं। इसलिए आप कल्प हैं, आप कामधेनु और आप ही आगत को शरण देने वाले हैं।।2।। साधु अध्यात्म नीर के बहाने के लिए ही गमनशील रहते हैं। कौन अपहरण किया जाएगा, कौन बंध से युक्त होगा। उसको छोड़ते हुए वे समत्व भावना और सम्यक् धर्म को लेकर चलते हैं, तब जय कुमार जी को कैसे अपहरण कर सकते हैं? ऐसा होने पर आचार्य विराग-सागर की जय हो, जय हो, जय हो की गूँज चारों ओर फैल जाती है।।3।। मानो एक कुल दीपक के अपहरण से मुक्त होने पर अनंत दीपक ही दीप्त हो गए हों ऐसा प्रतीत होता था। दीपावली के समय पर दीप तेज को दिया ही जाता है। क्योंकि यह दिवस वीर निर्वाण दिवस सदैव दिव्य रूप में ही आता है। चाहे कोई इसे मनाए या न मनाए यह तो अपनी दिव्यता दिखलाएगा।।4।। दीप से दीप जलते हैं, मानवों के लिए ये दीप सम्यक् विराग-उचित स्नेह और उत्तम परिणामों की बत्ती वाले ये वीर के दीप श्रमण ही हैं, जो स्वयं दीप्त रहते हैं और अन्य लोगों को अपनी आभा से दीप्त करते हैं, आनंद देते हैं।।5।।

सूरिस्स दिक्ख-णव-पिच्छिग-वट्टणं च संधस्स साहु-सम-सम्म-सुरक्ख-जीवं।
पत्तेश-पत्त-करभाग-मयूर-पिच्छी णं बोहदे पिग-सुदो सुद-भावणा ए।।6।।
अस्सिं मययूर-वणमेक्क तुमं च णेही रण्णे वि वण्ण-हरिदं हर-सद्द-णेगी।
मेहाण भूसण-धणंगण-किण्ह-छाहं मत्तो वि णच्चसि मणुण्ण-सरूव-दिण्णं।।7।।
इच्छिज्जमाण-भव-अंगण-अंग-भावी मंचे विराग-परिणाम-मुदा हि चिट्ठे।
ते सव्व-सुब्भ-वाणादु अलंकिदा हि सत्ते हि खुल्लग-कमंडलु-पिच्छि-पुण्णा।।8।।
घोसेज्ज खुल्लग-विणेय-जगे रवि त्ति गाहित्थ-भादु-गण-णायगरिं द-अत्थ।
होज्जा विसारद-विसारद-लोग-मुत्तो सेलिंगदो हवदि विस्सथ-सागरो दि।।9।।
लोए विधेय-विहि-साहवा-ताव-आदा बालो त्ति जो वि सुमदि इध मोर-पिच्छिं।
चंदो गुलाब-कलिगो हवदे हि विस्सो कप्पूरचंद-रयणो रदणत्तय-मग्गी।।10।।
सम्माण-माण-समरोह-इमम्मि काले जाएज्ज अत्थ उदयस्स जिणस्स जेही।
अस्सिं सुदंसण-मही मध लक्खणो वि सम्मुट्ठिदा वि कमलेस-पहाण-विण्णा।।11।।

इस दीपावली के पश्चात् आचार्यश्री का नवाँ आचार्य पदारोहण समारोह, पिच्छिपरिवर्तन आदि होता है, संघ के सभी साधुओं का समत्व और जीवरक्षण के इन उपकरणों को भेंट किया जाता है। प्रत्येक कर कमलों में मयूर पिच्छी यही संबंधित करती है हे पिक! हम आपके द्वारा छोड़े गये पंखों से आपकी जीवंतता बनाए रखते हैं। हम आपकी तरह श्रुत की भावना से पिऊ-पिऊ करते रहेंगे।।6।। आप इस मयूर वन में एक मात्र स्नेही हो, क्योंकि आपकी छवि और अरण्य की हरीतिमा समान है। आपके हर शब्द भगवन की आस्था से युक्त हैं तभी तो आप मेघों के घने काले आभूषण पर अरण्य के आंगन में उन्मत्त होकर नाचने लगेते हो, जो मनोज्ञ रूप ही प्रदान करते हैं।।7।। ये मंच पर स्थित विराग परिणामी आपकी तरह मुदित हैं। वे संसार रूपी अंगन के अंग को नाश करने के इच्छुक हैं। वे सभी अभी शुभ वस्त्रों से अलंकृत हैं। वे ही सात क्षुल्लक बनेंगे तब कमंडलु और पिच्छि से पूर्ण होंगे।।8।। बाल ब्र. रवि (भिण्ड) क्षुल्लक विनेय सागर होते हैं। आचार्यश्री के गृहस्थ के भाई नरेन्द्र, विशारद सागर तो इस जगत् को विष रूप समझकर ही विशारद-शास्त्र मंथन के मार्ग को अपनाते हैं। शैलेन्द्र (मड़खेड़ा टप्पा) क्षुल्लक विश्वस्त सागर बनते हैं।।9।। इस संसार में आत्म-ताप तो साधक की विधि/नियम में है। इसलिए बाल ब्र. सुमति इस समय मयूर पिच्छि को प्राप्त क्षुल्लक विधेय सागर हो गए। गुलाबचन्द्र (सागर) भी विश्वरत्न सागर, कपूरचंद (ककवानी) विश्वमूर्ति सागर और रतनचंद्र (मडावरा) विश्वभूषण सागर बन गए।।10।। इसी अवसर पर प्रो. उदयचन्द्र जैन सर्वदर्शनाचार्य वाराणसी का सम्मान पुरस्कार जैन दर्शन की सेवा के लिए किया जाता है। इसमें प्रो. सुदर्शनलाल, लक्ष्मणप्रसाद, प्रो. कमलेश कुमार आदि विद्वान् उपस्थित थे। इसी अवसर पर विभिन्न विद्वानों तथा समाज द्वारा आचार्य श्री को 'न्याय मार्तण्ड' की उपाधि से अलंकृत किया गया था पर गुरुवर ने कहा- साधु आधि-व्याधि-उपाधि से रहित समाधि (ध्यान) की साधना करते हैं।।11।।

कायो सदा हि ण हु अत्थि समो हि सव्वे काउच्छगो वि विधवाहि-गिधो त्ति जादे।
तं चिंतमुत्त-गणराय-विराग-सूरी तावं छएदि तव-भावण-सम्म-कम्मे।।12।।
सुज्जस्स ताव-अदि-दिव्व-सुतेज-जुत्तो तं उज्जमाण-किरणं लहिदूण सो वि।
आदिच्च-झाण-गद-रोग-विराम-सीलो अण्णे दिवे कुणदि मंदिर-जिण्णु धारं।।13।।
कज्जं कुणेदि विहि-वत्थु-सुसत्थ-पुण्णं तस्सिं च पत्त-सफलं मणुजा पसण्णा।
पाएज्ज सम-सुद-कम्म-विराग-भावंवेज्जाइवच्च-णियभादु मुणीस-भत्तिं।।14।।
संघो विसाल-बहु-सम्म-विचार-सीलो तस्सिं विकार-जध-रोग-तध-संत-हेदुं।
जो विक्कमो हरणियाइ-वियाहि-पीडो तं दिक्ख-पच्छय-गदं सद-सल्ल-कज्जं।।15।।
वेरग्ग-भाव-कध होज्ज ण को वि जाणे संजोग-जोग-जुद-साहु-गणीण जादे।
पक्को हवेदि जध कम्म-तधा हि सो वि मण्णे जणा सुमदि-सेट्ठि-रिदु त्ति अप्पे।।16।।
दो साहसो दुवहि वच्छ-छहेव काले अज्जी हि दिक्ख-सवणे समणाणुगामी।
सज्झी विवक्खय-विकंप-गदा हि अज्ज ओरंगबाद-विहरेहि विजया पपीडे।।17।।

इस जगत् में काया सदा एक सी नहीं रहती है। चाहे वह कायोत्सर्ग करने वाले की क्यों न हो? आधि-व्याधि से ग्रसित होती ही है। फिर भी गणाचार्य विरागसागर तो सूरी हैं, तपस्वी हैं, इसलिए वे ताव/आधि-व्याधि को शान्त करने के लिए तप भावना एवं उचित साधना के कर्म में लीन रहते हैं।।12।। सूर्य का ताप तो अति तीव्र होता है, वह उत्तम तेज युक्त होता है। उसकी ऊर्जा युक्त किरणों को प्राप्त कर आचार्य विराग सागर जी रोग से मुक्त हो जाते हैं, क्योंकि वे आदित्य के ध्यान को प्राप्त हुए थे। इसलिए वे अन्य दिवस गया के पुराने मंदिर के जीर्णोद्धार की ओर अग्रसर हुए।।13।। आचार्य श्री जो भी कार्य करते, उसे वास्तुविधि एवं शास्त्रपूर्ण विधि को लेकर सम्पन्न कराते हैं। वे उसमें सफल होते हैं। उस सफलता को प्राप्त मनुष्य प्रसन्न होते हैं और वे सदा श्रुतकर्म, सम्यक्त्व भाव और विराग भाव की ओर प्रवृत्त होने के लिए नियम से आचार्य भक्ति एवं वैय्यावृत्ति को प्राप्त होते हैं।।14।। यह संघ विशाल था, सम्यक् विचारशील, नाना प्रकार के भावों से पूर्ण था, फिर भी उसमें रोग विकार हो तो उसे शान्त हेतु प्रयत्न दीक्षा छेदपूर्वक ही किया जाता है। मुनि विक्रमसागर को हरनिया व्याधि पीड़ा थी, जिसे शल्य क्रिया के माध्यम से उपचारित किया गया और उचित मार्ग की ओर पुनः प्रवर्तित हो गए।।15।। वैराग्यभाव कब हो जाए यह कोई नहीं समझता, उचित संयोग भी साधुओं और आचार्यों का हो जाने पर वह परिपक्व नहीं होता, परन्तु यह तो निश्चित है कि जो वैराग्यभाव का समय होगा, वह आएगा ही, ऐसा लोग भी मानते हैं। इसलिए सुमति सेठी और ऋतु अजमेरा आप में यह भाव लेकर चलती है।।16।। सन् 2002 के पश्चात् सन् 2006 में वे आर्यिका दीक्षा लेकर आर्यिका विवक्षाश्री और विकम्पाश्री हुई। गया से औरंगाबाद जाते हुए आर्यिका विजयश्री घायल हो गई।।17।।

किण्हेयलाल-सददो सवणोववासी तं सेव-किज्ज-णिय-गेह-पुत्तिं।
तुल्लं च मण्ण-इणमो गुरु-दंसणं च काएज्ज तं च तध किंचि कुणेदि लाहं।।18।।
संघो बिहार-विहरिज्ज गडनो वि अण्णे गामाणुगामचरमाण-विवस्स पंते।
पत्तेज्ज गंग-अदिभंग-सुपास-पासं चंदं च चंद-णयरिं पहुत्त-कासिं।।19।।
पासं जयंति-समयं णिगडं मुणेंति सव्वे जणा सदद-पत्थय-सोम्म भावी।
रोहेदि संघ-सद-भावण-पास-पासे विज्जा-विराग-समणस्स विराग-हेदुं।।20।।
णिग्गंथ-गंथ-मणुजा अणुपस्सएंति ते सेट्ठ जे समण-सुज्ज-सदा हि पीदिं।
णेदूण चारूचरियाइ महावदाइं दंसेंति एग-पध--गामि-विराग-णामी।।21।।
गच्छे सुकच्छ-मणुजे अणुदंसएज्ज रागो विराम-जध णो तध लौच-लोच्चे।
संघो महो ण इध अत्थि महो त्ति भावो पच्चुप्पण्णे हि समए समए हि सेट्ठो।।22।।
गंगा-सरस्सई-सुणीर-सदा पुणीदं तिव्वेण्णि-दंसण-सुणाण-चरित्त-णीरं।
इच्छे पजाग-जमुणं जमुणंत-छीरं तावत्थली वि उसहस्स इधप्पवेसो।।23।।

कन्हैयालाल सेठी सतत् श्रमण की उपासना करने वाला श्रमणोपासक श्रावक समस्त संघ सहित उन आर्यिका की सेवा करते हैं अपनी पुत्री की तरह। वे ही उन्हें गुरूदर्शन को कराते हैं उससे आशीष युक्त शीघ्र ही स्वस्थ लाभ को प्राप्त करती है।।18।। संघ बिहार से विहार करता हुआ ग्रामानुग्राम के पश्चात् शिव के प्रान्त को प्राप्त हो जाता है, जहाँ मानों गंगा अति उमंग से अपने समीप के सुपार्श्व, पार्श्व ओर चंद्रपुरी के उस प्रभुत्व वाली काशी को दिखला देना चाहती है जो पूर्व में शिव/कल्याण को अब भी दे रही हो।।19।। वाराणसी में भेलपुर के एक स्थान पर आचार्य विद्यासागर के संत और एक कक्ष में आचार्य विरागसागर, वे विराग परिणामों को समझाते हुए सद्भावना के संत को संत के ही पास ला सकते हैं ऐसा प्रयास भी हुआ। पार्श्वनाथ की जयन्ति पर सभी लोग आचार्य विरागसागर जी के संघ को रोकते हैं वे सभी सौम्य स्वभावी लोग।।20।। निर्ग्रन्थ में ग्रन्थ/गाँठ यह मनुष्य को देखते हैं, श्रेष्ठ तो वही जो श्रमण सूर्य बने रहे और प्रीति को लेकर महाव्रत की उत्तम चर्या से एक पथगामी विराग के गुण दर्शा दे।।21।। इस जगत् में नाना प्रकार के गच्छ होने पर लोगों में अपने कक्ष/अपने जिनशासन में प्रचलित गच्छों का ज्ञान होता है। जहाँ राग है विराम युक्त, वहाँ लोच है, न कि आलोचना। इस जगत् में संघ महान नहीं, अपितु महाव्रत महान है, महाव्रत भाव भी। इस समय सिद्धान्त ग्रन्थों में इसे ही श्रेष्ठ माना है। समय में श्रेष्ठ है सम/समत्वभाव।।22।। गंगा, सरस्वती का नीर उत्तम एवं पुनीत होता है, उसे सभी चाहते हैं। यमना के योग से त्रिवेणी- तीनों ही दर्शन, ज्ञान और चारित्र के नीर को देती हैं। वे प्रयाग में मानो यमुना - यम हो। संयम के अनंत धीर को प्रदान करती है। प्रयाग है तपस्थली ऋषभ की, यहाँ इस संघ का प्रवेश होता दर्शन, ज्ञान एवं चारित्र के नीर की प्राप्ति हेतु।।23।।

अज्जि त्ति णाणमदि-णाण-सुझाण-दंसी सा तत्थ ठाइ-सरइं सरइं पदेज्जं।
पत्ते पभास-गिरि-रम्म-सु-णंद-ठाणं कोसंबि-सम्म-परिदंसण-चित्त-कूडं।।24।।
रम्मं पभासगिरि-तावस-ठाण-भागं पत्तेज्ज चित्त-चिद-भावण-चित्तकूडं।
अण्णे विहार-पडि-उतर-मज्झ-देसे सुत्तं दएज्ज जिण-सासण-सम्म-लेहं।।25।।
अजो सदा चरदि आरिस-मग्ग-सम्मे सो णो विभेदि भव-इंद-जणेण किंचिं।
विक्खोहएंति मणुजाण मणाण णिच्चं दिव्वो हि दिव्व-तवसी अवसग्ग-मण्णे।।26।।
जीवा कुसील-मिद-भासि-जगे अणेगा मिच्छप्पवेसि-छल-भेसि-मिहा-गवेसी।
मच्छेर-दोस-पहु-ईरिस-कंठ-कागी का का मुणेंति उवसग्ग-अभद्द-पस्सी।।27।।
धम्मी दिढी सवण-इंदिय-मंद-हीणा आयारहीण-मदि-मादग-भाव-जुत्ता।
खिण्णा कुणेंति मणुजाण तदो ण तोसा हुंति त्ति घादग-घिणी विस-वंतगा वि।।28।।
किं सिंह-मग्ग-अणुगामि-णियं च वित्तिं चत्ता कदाविजध सावग-अण्ण-मग्गी।
होज्जेज्ज किं ण हु विराग-विराग-दंसी सम्मत्त-णाण-चवरिदं अणुचारि-कम्मी।।30।।

इधर गणिनी आर्यिका ज्ञानमति जी ज्ञान, ध्यान दर्शी प्रयाग में आदिनाथ के तपस्थन को सभी के स्मृति में लाती है एक सरस्वती की तरह। वे वहाँ के प्रभासगिरी, कौशाम्बी आदि के रम्य, आनंदप्रदस्थान के पश्चात् चित्रकूट की ओर संघ का प्रस्थान हो जाता है।।24।। आचार्य संघ रम्य तापस स्थल प्रभासगिरि को प्राप्त हुए, अनन्तर चित्र सम मन में अंकित होने वाले चित्रकूट को प्राप्त हुए श्री संघ बिहार प्रान्त, उत्तर प्रदेश और मध्यप्रदेश के जिनशासन के सम्यक् लेख सूत्र को देते हुए आगे बढ़ते रहे।।25।। आर्य तो सदा आर्ष मार्ग वाले होते हैं। सम्यक् मार्ग में प्रवृत्त होते हैं। वे इन्द्रकुमार जैसे जन से भयभीत नहीं होते हैं। जो मनुष्यों के मन को विक्षुब्ध करते हैं, उनकी चिंता न करके वे दिव्य तपस्वी उन्हें कठोर तप मानकर सहन कर लेते हैं।।26।। इस संसार में जीव नाना प्रकार के हैं, वे कुशील, कठोर वचनी, मिथ्याप्रवेशी, छलभेषी, मिथ्या गवेषी, मात्सर्य दोष युक्त, ईर्ष्या की अधिकता वाले, काग कंठी कौअ, कौउ करते हैं और उपसर्गपूर्वक अभद्र को प्रदर्शित करने वाले होते हैं।।27।। इस संसार में धर्म दृढ़ि भी होते हैं, श्रवणेन्द्रिय से मंद एवं हीन भी होते हैं। वे आचारहीन, उन्मत्तमति वाले मादक भाव युक्त मनुष्यों को विक्षुब्ध ही करते हैं, इसी से उन्हें संतोष होता है, ऐसा नहीं, अपितु घातक परिणामी, घृणा फैलाने वाले समाज में विष का वमन करते हैं।28।। क्या सिंह मार्ग के अनुगामी अपनी वृत्ति को छोड़कर अन्य मार्ग पर जा सकते हैं? क्या सिंह शावक/बच्चे अन्य मार्ग अपना सकते हैं? फिर क्या विरागमार्गी विरागपथ का परित्याग कर सकते हैं? अर्थात् नहीं। अपितु वे सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र की ओर ही प्रवृत्त रहते हैं।।30।।

सम्मं च दंसण-विणु त्ति भवो ण सेट्ठो, सो काल-लद्धि-विणु जायदि णो वि लोए।
तत्तो विचिंत-मणुजा ण हु चत्तएंति, तं धम्म-सम्म-करणं अणु-सीलणं णो।।31।।
लद्धीइ काल-बहिरंगय-देसणा वि, अब्भिंतरो करण-लद्धि-समग्ग-पत्तो।
जत्तो हवेदि तध सम्म-इमोहि भावो, जाएज्ज दंसण-सुतच्च-सुसड्ढ-सत्ती।।32।।
मिच्छत्तकम्ममल-दूसिद-अप्प-णिच्चं, अदिल्ल-दंसण-भवे ति तदंण-सम्मं।
सम्मत्त-ओवसमिगं अणुपत्तएदि, अत्थण्जहिट्ठ-परिणाम-इम्पेत्ति अत्थि।।33।।
पित्तज्जरादु उदभंत-गंदो त्ति जीवो, चित्तस्स वुत्ति-खवणे मिदु-खीर-अत्थं।
णाणं कुणेदि तध मोह-समेत्ति लोए जीवादि-तच्च-परिणाम-कुणे हि सम्मं।।34।।
सुज्जो उदेदि जध अंध-तमं विणासं दित्तेदि णो दिवस-आगद-सम्म-काले।
तत्तो ण सम्म-भवणे ण पवेस-जादो मिच्छत-अंध-हण्ण विणु सम्म-जादे।।35।।
भव्वप्प-भव्व-पयडिं अणुपत्तएदि आहो-अपुव्व-करणं अणिउत्ति-भावं।
मिच्छत्त-सम्म-भिहु-सम्म-तयं च खंड कम्माण खीणकुणमाणं-जणो हि सम्मो।।36।।
अत्तागमं च परमत्थ-हिदोवदेसिं सव्वण्हूं-सव्वदरिसं पहु-सड्ढ-वंतं।
जीवादि-तच्च-सयलं पडि सड्ढणेणं जाएज्ज दंसण-समं-मुणएज्ज णिच्चं।।37।।

यह भव सम्यग्दर्शन के बिना समीचीन नहीं होता। काललब्धि बिना सम्यग्दर्शन प्राप्त नहीं होता हैं ऐसा सोचकर मनुष्य उस धर्म के सम्यक् करण और अनुशीलन को नहीं छोड़ देता है।।31।। देशनालब्धि और काललब्धि बहिरंग लब्धियाँ हैं और करणलब्धि अन्तरंगलब्धि है। जब यह होती है तभी सम्यक् भाव होता है। सम्यग्दर्शन से उत्तम तत्त्व के प्रति दृढ़ श्रद्धा शक्ति भी उत्पन्न होती है।।32।। जो जीव मिथ्यात्व कलंक से अपने आप दूषित हो रहा है, वह सबसे पहले दर्शनमोहनीय कर्म के उपशम को प्राप्त होता है, तदनंतर उपशम होने पर वह औपशमिक सम्यक्त्व को प्राप्त होता है। यही अर्थ/पदार्थ के यथार्थ परिणाम का कारण बनता है।।33।। जिस प्रकार पित्त ज्वर से उद्भ्रान्त जीव चित्तवृत्ति के क्षय होने पर मिष्ट दूध आदि पदार्थों का ज्ञान करने लगता है वैसे ही मोहनीय कर्म के उपशम से जीवादि तत्त्वों का यथार्थ ज्ञान होने लगता है।।34।। जैसे सूर्य अन्धकार के नाश करने के पश्चात् उदित होता है, उसके उदित बिना दिन के साथ दीप्ति भी आती है। उसी तरह सम्यग्दर्शन मिथ्यात्व रूपी अन्धकार को दूर किये बिना प्राप्त नहीं होता है।।35।। यह भव्यात्मा भव्य प्रकृति अधःकरण, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण इनके कारण मिथ्यात्व, सम्यक् मिथ्यात्व और सम्यकत्व प्रकृति रूप कर्मों की स्थिति को क्षीण करता हुआ सम्यग्दृष्टि होता है।।36।। आप्त, आगम, परमार्थ, हितोपदेशी, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी के प्रति अत्यंत श्रद्धा करना, जीवादि समस्त तत्त्वों के प्रति श्रद्धान से सम्यग्दर्शन उत्पन्न होता है, ऐसा समझना चाहिये।।37।।

मूलो त्ति आदि-पढमो त्ति उवाय-रूवो सम्मं च दंसण-जगेजग-णायगो त्ति।
भासेज्ज सम्म-पध-साहग-साहणाए सम्मं च णाण-चरिदं णहुतं विणा हि।।38।।
मूढत्त-तिण्णि-कुगुरूत्ति कुदेव-सत्थं संगत्त-सव्व-रहिदं सहिदं च अंगं।
सम्मं च सद्दहण-जीव-अजीव-तच्चं तं सम्म-दंसण-मुणे मुणिवंत-भासे।।39।।
जाणेज्ज हं पसम-संवेगय-अत्थिकत्तं पाणिं पडिं च अणुकंप-गुणं च सम्मं।
सद्ढं रूचिं अवर-फासग-पच्चयत्तं पज्जाय-सम्म-भुवणे दूध लक्खणे वि।।40।।
णिस्संकिदो णिख-कंखिदे-तेइगिच्छो अम्मूढदिट्ठि-उवगूहण-वच्छलत्तो।
सम्माठिदी-करण-भावण-सम्म-भावो अंगट्ठ-सम्म-अणुसीलण-जोग्ग-लोए।।41।।
भव्वे जणा! भविद-जोग्ग-इणं च अंगं किंचिं ण संक-परमप्प-पगास-अप्पे।
भोगेच्छ-मुत्त-सयलं परिचत्त-धिण्णं मूढो त्ति हीण-उवगूहण-धम्म-पीदिं।।42।।
तुं अज्ज! अज्ज रणत्तय-धम्म-हीणं धम्मप्प-साहग-जणे थिर-सम्म-कत्तुं।
कज्जं कुणे रिसि-अणे विणिएज्ज मग्गे अप्पप्प-सत्ति-परमं च पहावणं च।।43।।
तुं धम्म-सम्म-सयलाणि पदत्थ-अत्थं दंसेज्ज दंसण-इणं च सरूव-सत्थं।
अस्सिं च पत्त-पहु-सत्ति-सुहं ण को वि जीवे ण लब्भदि जगे मुणएज्ज पत्थं।।44।।

मूल तो मूल होता है, वह यदि आदि या प्रथम है, तो उपाय रूप है। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र का मूल कारण है। जगनायक ने साधक की साधना के लिए इसका सम्यक्मार्ग कहा है इसके बिना सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र नहीं हो सकते हैं।।38।। तीन मूढ़ता-कुगुरु, कुदेव और कुशास्त्र, सर्वसंग रहित, अठ अंग सहित जीव-अजीव आदि तत्त्वों का सम्यक् श्रद्धान सम्यग्दर्शन है। ऐसा मुनिवंत कहते, इसे समझें।।39।। इस सम्यग्दर्शन के लक्षण में प्रशम, संवेग, आस्तिक्य और प्राणियों के प्रति विशेष अनुकम्पा गुण है। श्रद्धा, रूचि, स्पर्श और प्रत्यय इसकी पर्याय है।।40।। इस संसार में मननशील व्यक्ति के योग्य हैं सम्यग्दर्शन के आठ अंग-निःशंकित, निःकांक्षित, निर्विचिकित्सा, अमूढ़दृष्टि, उपगूहन, वात्सल्य, स्थितिकरण और प्रभावना जैसी सम्यक् भावना सम्यग्दर्शन है।।41।। भो भव्यजन! इस जगत् में भावना योग्य सम्यग्दर्शन के अंग हैं, उनमें किसी तरह शंका नहीं करना, परमात्म प्रकाश में अपने को लगाना श्रेयस्कर है। भोगों की पूर्ण इच्छा रहित, ग्लानि का परित्याग करें, मूढ़ता से रहित विवेकपूर्ण दृष्टि से युक्त हो, दोषों का छिपाना और धर्म प्रीति की वृद्धि करना सम्यग्दर्शन है।।42।। भो आर्य! आप सभी अभी से रत्नत्रय धर्म से हीन धर्मात्मा, साधकजनों को सम्यक् कार्य में नियुक्त करने के लिए प्रयत्न करें, उन विचलित ऋषियों एवं लोगों को उस मार्ग में लगाएँ जो आर्ष मार्ग है और अपनी आत्म शक्ति के अनुसार परम प्रभावना को महत्त्व दें।।43।। हे आर्य! आप सभी पूर्ण धर्म और समस्त पदार्थ के अर्थ को समझें, यह सम्यग्दर्शन दिखलाता है आगम के स्वरूप को। इस संसार में ऐसी शक्ति, प्रभुता या कोई सुख नहीं, जो जीव को नहीं प्राप्त होता हो।।44।।

पोट्टीजणा सम जगे मणुजाण बुद्धिं तोसेज्ज णो हि अणुपूरदि काल-कूडं।
जे वीदराग-पधगामि-विरागि-णंगा होज्जे चरेंति-उवसग्ग-बहुं सहेंति।।45।।
जत्सिं हिए छल-पदूसण-भाव-सत्ती रागाग्गि-दोस-कलहा-गिरए हि पत्ते।
सेट्ठं च जम्म-जुद-धम्म-जिणं च मग्गं चत्ता तुमं कि अफलं कुणएंति जम्मं।।46।।
चिंतामणी सम इमो णर-जम्म-लोए किं पत्त अज्ज भव-भंत-तरंग-णीरे।
णेदूण हत्थ-मुद-हास-कुणंत-णंदे गेंदुक्क-उच्च-छलिदुं गहिरंबु-पत्ते।।47।।
कव्वे किदत्थ-णिय-जम्म-समं च जोदिं देदिप्पमाण-रदणं पढमं इणं च।
जे चत्त-राग-कलहादि-दलं पवंचं एगावलिं च परिपुण्ण-इणं हारं।।48।।
उग्घाउएज्ज ण णेयरय णंत-दुक्खं णोतुं कणेज्ज तध- पत्त-जणा भूणेंति।
णाणाविहं जणण-जोणि-जरं च जम्मं दारं दिढं गई-दु-चिंत-चिदे कवाडं।49।।
सम्मं च आभरण-हार-दिढं च मूलं चत्तेज्ज मिच्छ-कसिणं कस-चावुगत्तं।
णो समुहे तुह परं मण-तंज-मंते सोम्यं सुहामिद-इणं अणुलेह अप्पे।।50।।

इस जगत् में पोट्टी जैसे लोग मनुष्यों की बुद्धि को संतोष नहीं देते हैं, वे तो सदा लोगों में वैमनस्यता का वपन करते हैं। अरे सोचो जरा! इस भौतिक युग में भी जो वीतराग पथगामी, विरागी नग्न/निर्ग्रन्थ होते हैं, उस आनुपूर्वी चर्या का पालन करते हैं वे तो नाना प्रकार के उपसर्गों को सहन करते हैं।।45।। जिसके हृदय में छल रूपी प्रदूषण भावों की शक्ति है, राग रूपी अग्नि व्याप्त है, जो द्वेष एवं कलह युक्त होते हैं वे नरक को प्राप्त होते हैं। आप सभी श्रेष्ठ जन्म-मनुष्य जन्म से रहित, जिन धर्म मार्ग को छोड़कर अपना जीवन क्या अफल नहीं करने जा रहे हैं।।46।। यह नर जन्म चिंतामणि की तरह अत्यंत कठिनाई से प्राप्त हुआ है। क्या आज ऐसे लोगों से भ्रान्त संसार रूपी तरंग वाले समुद्र के बीच में उसे लेकर हाथ में रखकर हर्ष, हंसी और आनंद संसार के छली लोगों के बीच गेंद की तरह ऊँचे उछलते ही वह गहरे समुद्र में जाएगे ही।।47।। यह एकावली से परिपूर्ण हार देदीप्यमान रत्नों में प्रथम रत्न है। इसकी ज्योति को प्राप्त करके अपना जन्म कृतार्थ करें, राग, द्वेष, कलह, छल, प्रपंच आदि छोड़कर। ऐसा जो करते हैं, वे पाते हैं नर जन्म श्रेष्ठ जन्म रूपी हार।।48।। भो महाभाग! नाना प्रकार के जनन योनियों, जरा और जन्म आदि अत्यंत दृढ़ कपाट तो मत लगाओ? नरक गति जैसी दुर्गति का चित्त में विचार करो, फिर सोचो कि नरक द्वार खोलने पर क्या अनंत दुःख नहीं होगा? जैसा करेंगे वैसा उत्पन्न होगा। ऐसा विचार क्यों नहीं करते हो।।49।। सम्यग्दर्शन का सम्यक् आभूषण, सम्यग् हार जब हमारे संमुख है, तब इसके मूल को छोड़कर मिथ्या कृष्ण कषाय रूपी चावक की मार आपको दिखाई न देती हो, पर मन रूपी यंत्र में उसकी मंत्रणा/मार चलती रहती है। अतः सुखामृत रूप इस सौम्य चन्द्र का अपनी आत्मा में अनुलेख करें अर्थात् इसका रस पान जो पूर्व में किया था, वह इस समय भी है।।50।।

मुत्ति-रसरूव-रदणत्तय-हार-इच्छू आलंकएज्ज णिय-देह-इधं च जम्मे।
संसार-वेल्लि-छिदि-भव्वजणा सुसम्म-हेदुं आणप्पमाण-गुरु-आगम-अत्त-अत्ता।।51।।
इध मणुज-कुमारा अप्प अत्ते णयंता ललिद-जण-अगारा चितचित्ते विचारा।
सरल-सुद-सुधारा णो हु देविंद-धारा अमिद-सर-अपारा जाणमाणा सुसारा।।52।।
तुमसि सूरि ! जणाण तमाहरो मुमसि आगम-अत्त-सुहायरो।
तुमसि सागर-तुल्ल-गहीर धी तुमसि देज्ज विराग-विराग-गी।।53।।
णमुदिद-वदणा जण सागरा मणुज-जिणगणा पराभावणा।
इध चहुदिग-वंदणा साहणा जय-जय कुणमाण-देविंदणा।।54।।

हे मुक्तिस्वरूप रत्नत्रय हार के इच्छुक! अपनी इस देह को इसी जन्म में अलंकृत करें। हे भव्यजन! सम्यग्दर्शन के कारणों की प्राप्ति के लिए संसार रूपी वेल को छेद डालें और आप सभी गुरु, आगम एवं आत्म प्रमाण बनें।।51।। इस प्रकार जहाँ आतंक का वातावरण था, वहाँ उस देवेन्द्रनगर में कुमारजन अपने आप सोचते हैं कि हम लोग चलायमान चित्त वाले अवश्य हैं, पर हमारा चित्त चिंतनपूर्ण एवं उत्तम विचारों युक्त है। यहाँ ये श्रमण संत सरल स्वभावी हैं, ये श्रुत धारा वाले हैं। इसलिए इस देवेन्द्र अंचल में अमृत रूपी सरोवर ही जानते हुए उत्तम सारे/यथेष्ट रहस्य वाले बने।।52।। हे आचार्य प्रवर विरागसागर! आप हैं, विरागवाणी वाली। आप दे रहे विराग ओर दूर कर रहे हैं राग। आप हैं, सागर के समान गंभीर बुद्धि वाले, तभी तो इस क्षेत्र के लोगों की गागर में अमृत की बूंदे डाल रहे हैं। आप हैं आगम, आप्त रूपी सुधारक-सदैव आगम की सुधा वाले और आप्त वचनों को लेकर चलने वाले। अतः इस क्षेत्र के लोगों के आप समाहर/सूर्य बन गए हो।।53।। इस देवेन्द्रनगर में विराग के कारण सभी प्रमुदित वदन लोग सागर की तरह हो गए, क्योंकि आचार्य विरागसागर के संघ सभी जिन परंपरा की प्रभावना कर रहे थे, उसी से वे सभी चारों ओर जय-जयकार करते हुए साधना युक्त ही वंदना कर रहे थे।।54।।

इति समत्तो वत्तीस-विरागो।

तेत्तीस-विरागो

अध विराग-सागारा, विरागे ही समाहिदा।
पवयण-सुभावणं, जिण-सासण-पावणं।।1।।
छलीजणा छलादो हि, जणेगणे छलं।
बीजं पवेंति णिच्चं ते, अफला हुंति चारगा।।2।।
संगा विमुत्त-सिरि-संघ-तवे पउत्ता सुत्तागमं च अणुसीलण-झाण-जुत्ता।
जत्थे चरेदि तध सागर-तुल्ल-धीरा णाणोवसग्ग-सहमाण-सदा विरत्ता।।3।।
तावे वि झाण-जुद-णाण-समिक्खणे हि संका हवेंति बहुधा समएंति ते वि।
किण्णु त्ति पोट्टिमणुजो मणुजोग-भावे किं अत्थि णो हि अणुजण-इधे चरेंति।।4।।
झाणे तवे रद-मुणिं पडि दोस-भावो णत्थि त्ति जायदि कदा वि कदग्गजुत्तो।
तत्तो वि कम्म-भव-पुव्व-विवाग-पुण्णा जाणेज्ज साहग-गुणी उदसग्ग-सव्वे।।5।।
पासाण-खंड-पडिमा पंडिमा हवेदि सा-भूमि-गब्भ-गद-जाद-पुणो त्ति पत्ता।
अच्छेर-भाव-मजुणेसु जणेदि सम्मं को वि त्ति कज्ज-इणमो ण हु सद्ढएदि।।6।।

इसके अनंतर विराग युक्त श्रावक विराग में ही समाहित जिनशासन के पावन प्रवचन की उत्तम भावना को पाते गए।।1।। छली जन अपने छल से जन समूह में छल के बीज बोते हैं, पर वे उसमें असफल, पुनः-पुनः उसी मार्ग के गामी बनते हैं।।2।। श्री संघ तो संग-बाह्य और आभ्यन्तर परिग्रह से विमुक्त तप में स्थित रहता है। वह संघ सूत्रागम के अनुशीलन को महत्त्व देता हुआ ध्यान में लीन रहता है। यह संघ जहाँ भी जाता है वहाँ सागर की तरह धीर नाना प्रकार के उपसर्गों को सहता हुआ विरक्त-इस प्रकार के राग से पृथक् ही रहता है।।3।। जहाँ तपस्या, ध्यान, ज्ञान आदि की समीक्षा होने पर प्रायः शंका रहती है। वहाँ तो समाधान हो सकते हैं, परन्तु पोट्टी जैसे लोग मन में क्या विचार रखते हैं? इस पर विचार न करते हुए तप पूर्ण ही विचरण करते हैं इस संघ के साधु।।4।। और तप में रत मुनि के प्रति द्वेष भाव नहीं होता है किसी का कभी भी, वह कदाग्रह भी नहीं। फिर भी पूर्व कर्म का विपाक जब तक पूर्ण नहीं होता, तब तक कर्म होगा। साधक गुणी है तो वह उन्हें सभी तरह से उपसर्ग ही मानेगा।।5।। प्रतिमा तो प्रतिमा है, पाषाण खंड की प्रतिमा। यदि वह पुरा भूमिगत प्राप्त होती है तो आश्चर्यभाव उत्पन्न करती है मनुष्यों में। यदि वही किसी का चमत्कार पूर्ण कार्य है तो उन्हीं लोगों में श्रद्धा उत्पन्न नहीं करती है।।6।।

कूडे त्ति कूड-गिरि-अंचल-भूमि-गब्बे णेग पकंणगद-भूचलमाण-काले।
जाएंति णिम्म-परिभाग-मणुण्ण-मुत्ती पच्छा सुजोग-समए णिसरेंति ताएं।7।।
देसे अणेग-पडिया अधुणा हि काले गब्भे समाहिद-गदा जण सड्ढ-जोग्गा।
किण्णु त्ति लोग-पडि-सिद्धि-णिमित्त-मुत्तिं पच्छा जणेसु सिविणादु पवचणाए।।8।।
मे अज्ज अरुणोदय-पुव्व-काले दंसेज्ज एग-विविणं महणिज्जएज्जं।
जग्गेमि हं च अणुच्छी तत्थ ठाणे दुद्धाहिसेग-अहिसिंचिद-भाग-रम्मं।।9।।
गामस्स एग-मणुजो णहु णेग-णेगा तं इट्ठ-ठाण-परिसिंचपहाण-खेत्तं।
पस्सेंति ते सिरसणम्म-जणा हि सव्वे अण्णे जणे अणुसरेंति सुसंड्ढ-माणा।।10।।
गामे पुरे वि णयरे तुरिदं पबाहे झत्ति त्ति आगद-जणा सुमणाणि अग्घे।
देवो त्ति अच्छरिय-ठाण-इणं च रम्मं गुंजेज्ज सद्द-जयकार-विसेस-णंदे।।11।।
सेयंस-सेयगिरि-माणुज-हिस्स-मुत्तिं गब्भे णियेरयदि मंत-नदी हि सव्वे।
पच्छादु एस अणुभूयदि अत्थ हीणो जण्णे जणा अणुहवेंति विसण्ण-जादा।।12।।
लोए विचित्त-मणुजा अवि साहगा वि मंते वि तंत-विहि-जंत-चरा हवेंति।
इच्छेंति अज्ज इध-भोदिग-जंत-काले दुःखाणि मुत्त-सुह-संति-सदा हि णंदं।।13।।

इस संसार में अनेकानेक कूट हैं, गिरि अंचल या भू-भाग के गर्भ में भूताल/भूकम्प या अन्य कारणों से मूर्तियाँ भूमि के नीचे आ गई। जो उचित समय-खनन आदि के कारण बाहर आती हैं।।7।। इस आधुनिक काल में भी अनेक प्रतिमाएँ हैं जो भूगर्भ में समाहित हैं, वे श्रद्धा योग्य हैं। किन्तु अपनी प्रसिद्धि हेतु जो स्वप्नादि के छल से लोगों में प्रचारित करते हैं।।8।। मैं आज अरुणोदय से पूर्व ही एक रमणीय स्वप्न देखता हूँ। उसे देखकर जाग जाता हूँ, फिर स्थान पर आता हूँ तो पाता हूँ रम्यभाग दुग्ध से अभिसिंचित भाग को।।9।। ग्राम के एक ही अनेकानेक लोग उस शुद्ध सिंचित क्षेत्र को देखे हैं तो सहसा सिर नवा लेते हैं और अन्य लोगों को बुलाते, वे भी श्रद्धागत इष्ट देव का स्मरण करते हैं।।10।। ग्राम, पुर, नगर आदि में वे तार के तार की तरह इसकी सूचना हो जाती है। लोग श्रद्धा के सुमन समर्पित करते हैं। यह देव स्थान है। यह आश्चर्य युक्त पवित्र स्थान है। जो लोगों के जय-जयकार से गूँज उठता है और विशेष आनंद में परिवर्तित हो जाता है।।11।। श्रेयांसगिरि पर श्रेय/कल्याण - चमत्कारपूर्ण दृश्य तो था, गर्भ से निकलने वाली मूर्ति से लोग मंत्रमुग्ध भी थे। परन्तु सच्चाई का ज्ञान होते ही अनुभव होता है जैसे ही वैसे ही लोग सन्न रह जाते हैं।।12।। इस संसार में नाना प्रकार के लोग हैं, साधक भी मंत्र, तंत्र विधि एवं यन्त्रचारी हैं। परन्तु आज इस भौतिक यान्त्रिक काल में दुःखी दुःख से मुक्त सुख की इच्छा करते हैं तथा आनंद की इच्छा करते हैं।।13।।

अच्चंत-दुक्ख-मणुजा अवतोयएंति आहीइ वाहि-भय-जण्ण-अदीव-पीडी।
विस्सास-जोग्ग-समणेत्तु ण के वि अण्णे कुव्वेंति णो हि दूध चिंतसदा हि सड्ढी।।14।।
जत्तो छलाहि अदि वंचण-भावणाहिं छल्लेज्ज चुक्क-णिय-पच्छ तावि सव्वे।
धुण्णेंति मत्थिग-सदा सयले ण तत्थ मण्णेंति दासे-कलहं उवदाणएंति।।15।।
दोसाकरो सदद-दोस-जगे कुणेदि जाणेंति दिव्व दिवएस-सदा हि दिव्वं।
चत्ता च तं ण कि सदेंति आद-भावं मिच्छत्त-सागर-गदे गदि-खीयमाणा।।16।।
जावेव मंत-हवणेण जणाण पलोहो दाएज्जमाण-अलियो वि रहस्स-भेदो।
एगम्हि आगद-मणम्हि विखित्त-भावं कुव्वेज्ज ते वि अुला हि हवेंति तस्सिं।।17।।
ठाविज्जमाण-परमं च अदीव-संतिं सव्वोवसग्ग-अणुलेहं-उवेक्खमाणो।
सूरी विराग-गहिरो उदहिव्व धीरो गामाणुगामचरमाण-पसंतं-णंदो।।18।।
गामिल्ल-आगद-जणा अणुपस्समाणा पत्तेंति संति-सददं भय-भीद-मुत्ता।
पव्वे दुवार-गद-लंगार-अंदरप्पं विक्खोहएंति तध उग्धडणं च पत्ते।।19।।
आदंग-पाग-जर-साइण-आगदा हि रट्ठे अणेग-विह-आपद-दुक्ख-कालो।
तस्सिं णिवारणसदा जण-णेत्तुं-सव्वे जण्ण गदा तध इमो हु विराग-सूरी।।20।।

इस जगत् में अत्यंत दु:ख से दु:खी लोग देखे जाते हैं, वे आधि-व्याधि, भय एवं अत्यधिक पीड़ा युक्त हैं। वे श्रमणों पर विश्वास करते हैं अन्य किसी पर नहीं। वे श्रद्धालु इस विषय पर किंचित् भी विचार नहीं करते हैं।।14।। जैसे ही वे छल, अति वंचक भावना से छले जाते हैं, तब अपनी चूक मानते हुए पश्चाताप करते हैं। वे इस पर अपना माथा पीट लेते हैं, फिर भी सभी को ऐसा मानते नहीं, दोष एवं कलह ही उत्पन्न करते हैं।।15।। इस जगत् में रात्रि तो अधंकार ही उत्पन्न करती है और दिव्य दीपेश तो सदा दिव्यता देता है यह जानते हैं फिर भी उसे अर्थात् दिव्यता को छोड़कर आत्मभाव को कैसे स्मरण कर सकते हैं। वे तो मिथ्यात्व सागर को प्राप्त हुए इस मनुष्य गति को ही क्षय कर रहे हैं।।16।। इस जगत् में झूठे रहस्य भेद हैं, नाना प्रकार के प्रलोभन हैं। लोगों को जाप से, मंत्र से या हवन आदि से प्रभावित किया जाता है। पर रहस्य भेद प्रकट होते हैं। आगम लोग एक दिन मन में खिन्नता का अनुभव करते हैं। जो ऐसा करते हैं वे असफल होते हैं, उसमें भी।।17।। इस पर कुछ नहीं बोलते हुए सभी प्रकार के उपसर्गों का अनुभव नहीं करते हुए वे आचार्य विराग सागर समुद्र की तरह गंभीर बने रहते हैं। वे परम शान्ति को स्थापित करते हुए एक ग्राम से दूसरे ग्राम में जाते हुए प्रशान्त एवं आनन्दित ही रहते हैं।।18।। आपके आशीष से पर्यूषण पर बाहर से बंद किए गए ताले को खुलवाया गया, ऐसा आगत ग्रामीण जन को देखते हुए सतत् शान्ति, भय, भीति से मुक्त होते हैं और आनंद का अनुभव करते हैं।।19।। जिस तरह मुम्बई आदि में फैलाएँ पाक के आतंक, स्वाइन फ्लू के आते ही नाना प्रकार की आपदाएँ, सूखा आदि होने पर जन नेता उसे निवारण के लिए प्रयत्न करते है, वैसे ही आचार्य विरागसागर उपसर्ग आदि का निवारण करते हुए जिन नेता बने रहते है।।20।।

मुत्तीमदा रजद-जुत्त-सुवण्ण-मुत्तिं इच्छेज्ज अज्ज मणुजा विचरेंति लोए।
लक्खाणि पंच-पण चिंतगदा हि चिट्ठे जाणेंति णो कि चुर-माणुज-चत्तगं णो।।21।।
उच्चत्थ-माण-गद-माणव-माण-थंमं चिंतेति णो हि थिर-कित्ति-सरूव-ठाणं।
अज्जे अगेण-पुर-गाम-पदेस-भागे साहस्स-वास-इदिवुत्त-जणेहि सड्ढे।।22।।
चित्तौड-माण-मदि-कित्तिय-माण-थंभो वत्थुज्ज-सिप्प-कलणे हि महत्त-पुव्वो।
दंसेज्ज माणव-मणा अदिसंत-जादा णम्भीभवा हि इदिवुत्त-इणं मुणेंति।।23।।
सूरिस्स चिंतण-सुदूर-विचार-पुण्णो एत्तो हि सेट्ठ-जण-इट्ठ-सुसेय-भूदो।
धुत्तो इमे वि परिअग्ग-इमादु पुव्वे रत्ते रचेदि जण-मूढ-किदेज्ज-कम्मे।।24।।
जे अत्थि माण-मदि-माणुज-माण-जोग्गा कल्लाण-कज्ज-णिउगा पण-धण्ण-यारी।
कल्लाण-पंच-जण-पंच-सुपंच-सीला होज्जेज्जा णिच्छय-इधे-अदि-संति-पुव्वे।।25।।
लोए विभिण्ण-गदि-छिण्ण-मदि-विसण्णा मे बंहचेर-गुण-संजुद-चागि-णाणी।
वेसो मुणी ण हु मुणि त्ति भासमाणा अप्पं पदिट्ठ-मणुजा अणुसंचरेंति।।26।।

मूर्ति के पक्षधर रजत या सुवर्ण की मूर्ति को चाहते हैं, आज भी इस लोक में। मनुष्य भी आज पचपन लाख खर्च का चिंतन करते हैं, वे यह भी जानते हैं कि चुराने वाले चोर क्या उसे छोड़ेंगे?।21।। जो मनुष्य सम्मान की इच्छा करते हैं, वे मानव भी स्तम्भ जैसे स्थाई कीर्ति स्वरूप स्थान को महत्त्व नहीं दे पाते हैं। आज भी हजार वर्ष के इतिहास के साक्षी लोगों के द्वारा श्रद्धा योग्य अनेक ग्राम, नगर, पुर एवं प्रदेश के भागों में वे अपनी कीर्ति को लिए हुए हैं।।22।। चित्तौड़ में कीर्तिस्तम्भ रूपी मानस्तंभ तो बुद्धिमानों का सम्मान बढ़ाता है। वह कीर्तिस्तंम्भ वास्तु, शिल्प में अपूर्ण एवं दर्शनीय है। देखने वाले मानवों के मन कुछ क्षण के लिए अतिशान्त हो जाते हैं तथा वे नम्रीभूत इस ऐतिहासिक कीर्तिस्तम्भ पर विचार भी करते हैं।।23।। मानस्तम्भ बनें, ऐसा आचार्य विरागसागर का चिंतनपूर्ण, सुदूरगामी एवं सर्वमान्य था, यही श्रेष्ठ है, लोगों के लिए श्रेयांसगिरि में यही कल्याणकारी होगा। पर धूर्त इसमें अग्रणी पूर्व ही रातों-रात लोगों को मूर्ख बनाने में सफल हो जाता है।।24।। जो लोग मानमति/उत्तम बुद्धि वाले लोग होते हैं, वे तो सम्मान योग्य हैं। हितकारी जन तो अपने कार्य में निपुण होते हैं। वे तो सभी हैं। पैसे वाले वे धन्यवाद के पात्र हैं। पंचों का निर्णय, पंचशील की विचारधारा तो पंचकल्याणक को पंच/अभूतपूर्व बनाए। ऐसा निश्चय तो इस देवेन्द्रनगर के समीप स्थित श्रेयांसगिरि पर अति शान्तिपूर्वक होता है।।25।। इस संसार में नाना प्रकार की प्रवृत्ति, गति छिन्न एवं मति से व्याकुल जन भी हैं। वे कहते हैं अपने को ब्रह्मचर्य गुण से युक्त त्यागी एवं ज्ञानी भी। वेष मुनि हैं नहीं, फिर भी मुनि कहते हुए अपनी प्रतिष्ठा के इच्छुक जन भी विचरण करते हैं।।26।।

उक्खित्तमाण-मणुजा रज-उप्परिं च किं तेहि रक्खगद-पस्स-जणा वि लोए।
दंसेज्ज णो जण-जोदि-सरूव-दीवा अग्गिं च फास-पढमं जलएंदिणो किं।।27।।
देविदं-गाम-मणुजा-अणुचिंतएंति णिग्गंथ-साहग-मुणी इध अत्थि काले।
आचार-णिट्ठ-सुद-सागर-सुत्त-णंदी कुव्वेंति जे वि उवयार-जणाण अज्थि।।28।।
सिद्धंत-सच्च-सयलामदि-अज्जिगाओ सूरी-सहेव अणुपत्त-सलेह-गामं।
पच्छा अ गाम-अणुगाम-पवट्टमाणो विस्संतसागरथली कुवरें हरदूं।।29।।
अज्जीविसिट्ठ-सिदि-साहुविणिच्चलस्स कुंदस्स खुल्लग-जणा परिणंद-भूदा।
आहार-कज्ज-णिउगो विरमेस-जेणो अण्णे वि गाम-मणुजा अणुपत्त-लाहं।।30।।
आयोज्ज-कज्ज-समए विणएज्जएंति सव्वे जणा परिजणा सिरिसंघ-अग्गे।
सच्चित्त-णंद-अदि-पावण-भावणा वि आसीस-दाय-गण-आइरियो पवज्जे।।31।।
गच्छे अणेग-खबरा तिलवाणि-गामा णारायणो पुर-महुदं-जणा वि सम्मा।
भत्ती-समाहिद-पुरा-णरादु अण्णे सड्ढेहि चार चारियाइ पउत्त-कम्मा।।32।।

अरे! इस जगत् में जो दूसरे के ऊपर कीचड़ उछालता है, वह क्या उससे अपने आपको सुरक्षित रख सकता है? जो ज्योति स्वरूप दीप तुल्य लोग होते हैं वे क्या उन्हें दिखाई नहीं देते हैं? क्या अग्नि का स्पर्श पहले अपने आपको नहीं जलाता है?।27।। देवेन्द्रसागर के लोग विचारशील हैं, क्योंकि उन्होंने समझा कि इस बीसवीं के बाद इक्कीसवीं शताब्दी के प्रवेश में निर्ग्रन्थ साधक मुनि निर्ग्रन्थ परंपरा की रक्षा कर रहे हैं। निर्ग्रन्थ आचार निष्ठ, श्रुत सागर रूपी सूत्रों से आनंद लेने वाले लोगों का अब भी जो उपकार कर रहे हैं वह अनन्य/अपूर्व है आज भी।।28।। आर्यिका सत्यमति, सकलमति भी सूरी के साथ सलेहा ग्राम को प्राप्त हुई। इसके अनन्तर ग्राम, अनुग्राम आदि में चलते हुए मुनि विश्रान्तसागर की जन्मस्थली कुँवरपुर को प्राप्त हुए।।29।। आर्यिका विशिष्टश्री और मुनि विनिश्चल सागर के परिजन तथा क्षुल्लक कुंदकुंद के गेही अति आनंद युक्त होते हैं। हरदुआ के लोग आहार विधि में निपुण थे, विशिष्ट श्री माताजी के गृहस्थ जीवन के पिताश्री रमेशजी एवं अन्य ग्राम के प्रधान इसका लाभ प्राप्त करते हैं।।30।। इस ग्राम में विशाल आयोजन हुआ, समय पर समय के आचार निष्ठ के प्रति सभी लोग, परिजन श्री संघ के अग्रगामी बना था, परन्तु सच्चिदानंद जी की अति पावन भावना थी उस समय पर समय/जिनागम के प्रति समर्पित था। परन्तु गणाचार्य प्रवृत्त हुए अन्य क्षेत्र में आशीष देते हुए।।31।। ग्रामों में खबरा ग्राम- एक जैन के घर वाला ग्राम - आर्यिका विकासश्री माताजी का ग्राम था, वहाँ पहुँचे, फिर सिलवानी, नारायणपुर, मोहोन्दरा आदि ग्राम के लोगों की अपार भक्ति से समाहित एक ग्राम, नगर आदि से अन्य ग्राम में पहुँचे लोगों की श्रद्धा के सात उत्तमचर्या और कर्म विशेष की प्रवृत्ति युक्त जनों के साथ।।32।।

चारित्त-चारि-सुविचारि-सुमंग-पेही गच्छेज्ज कुंडलपुरं पडि अणुपस्सदे सो।
एगो दुही वि सगड-वाहग-गाम-भागे पंके गदेहि वसहं अदि-हंत-माणं।।33।।
हण्णेदि तं वसह-चिट्ठ-गदं च सो वि गिण्हेदि पुच्छ-अरि-पिट्ठ-कुणंत-सद्दं।
उट्ठेज्ज उट्ठ-परिभासदि थक्क-सेदि दंसेज्ज एस मुणिणाध-विराग-साहू।।34।।
सो कंपमाण-दयमाण-विराग-सूरी तस्सद्द-वाहग-जणस्स समीव-गच्छे।
णो हण्ण भो किसग जिण्ण-इणं च मूगं मंतं सुणेमि णवयार-गणादि-कण्णे।।35।।
होज्जेदि किं च णवयार-अणादि-मंतो जाणेदि णो तध अवि त्ति विणम्म-भूदो।
पादारविंद-सिर-णम्म-पणम्म-भावी उच्चारमाण-परमेट्ठी-पदं विरागं।।36।।
संगे चरंत-मुणि-सावग-गाम-सव्वे किंचि च पच्छ सयमेव पदेसु उट्ठे।
अस्सू-गदो अवर-दुक्ख-बलि त्ति वद्दो णं जम्म-सम्म-सहलो कुणमाण-सीसो।।37।।
रागी इमो-सगड-वाहग-अप्प-जम्मं धण्णं कुणेदि गुरुपावण-पाद-णम्मे।
संतो त्ति संत-उवयारि-समग्ग-लोए णिग्गंथणाध! दइएज्ज सुहाइ-सीसं।।38।।
सव्व जणा पसुमणा वि सज्जणा जे पाणीगणा जल-थला णह-सत्त-खग्गी।
सत्तू गणा अविणदा पधि-कंटगादी आसीस-लाह-सुद-आगम-सुत्त-माही।।39।।

चारित्र का अनुसरण करने वाले, उत्तम विचार वाले, उत्तम भावना वाले कुंडलपुर की ओर गमन करते हैं वह वहाँ एक दु:खी गाड़ीवान को देखते हैं, जिसका एक बैल कीचड़ में फंस गया था, जिसे वह मारने लगा।।33।। उस नीचे बैठे हुए वृषभ को वह मारता है, पूंछ पकड़ता, अरी भी पीठ पर करता हुआ शब्द करता है, उठ-उठ। इससे वह थक जाता है और पसीने से तर हो जाता है। यह सब आचार्य विराग सागर भलीभांती देखते हैं।।34।। वे प्रकंपित, दयामान विरागसूरी उस गाड़ीवान के समीप जाते हैं और कहते - भो कृषक! इस वृद्ध बैल को मत मारो। मैं अनादिमंत्र णमोकार इसे कान में सुनाता हूँ।।35।। वह अनादि णमोकार मंत्र का क्या होता है? यह नहीं जानता, फिर भी वह विनम्र, पादारविंद में मस्तक झुकाए प्रणाम भावी बना रहता है तथा उच्चारित परमेष्ठि पद के विराग को देखता है।।36।। साथ में चलने वाले मुनिजन, श्रावकगण, सभी ग्रामीण कुछ समय पश्चात् उठने वाले एवं पैरों पर खड़े हुए उस बैल को देखते हैं। वह बैल (बलिवर्द) तो दु:ख के आँसू भूलकर मानों अपने जन्म को ही सफल कर लेता है, जो उसके सिर हिलाने से लगता था।।37।। यह रागी गाड़ीवान् अपने जन्म को सफल कर लेता है। तभी तो आज गुरु के पवित्र चरणों में नम्रीभूत मानो कह रहा हो कि हे निर्ग्रन्थ! आप संत हैं, शान्त हैं एवं समग्र लोक का उपकार करने वाले हैं। अत: मुझे भी मंगल आशीष दें।।38।। इस जगत् में जो भी लोग हैं, सज्जन हैं या पशु मन वाले हैं, प्राणीगण, जल, थल, नभ आदि जीव हैं। नभी है, शत्रु हैं, अविनीत हैं या हैं पथ में कांटे फैलाने वाले, वे सभी आशीष का लाभ प्राप्त करते हैं। श्रुत लाभ, आगम सूत्र आदि की महिमा युक्त बनते हैं।।39।।

सोगंध-मज्ज-महु-चाग-इमो कुणंतो इक्केदि वाहण-पधे अदि भत्ति-पुण्णो।
चारित्त-चारि-गण-णायग-सम्म-मग्गी बाबा-सरंत-उसहं अणुपत्तए तं।।40।।

यह गाड़ीवान् मद्य, मधु आदि के त्याग की प्रतिज्ञा युक्त, भक्तिभाव पूर्ण वाहन पथ में हॉक देता है अर्थात् अपने मार्ग की ओर चल पड़ता है। इधर चारित्र चर्या युक्त गणाचार्य सम्यक्मार्गी बने बाबा का स्मरण करते हैं और बाबा ! बड़े तीर्थंकर आदिनाथ के चरणों को प्राप्त हो जाते हैं।।40।।

गीत

सागदो सागदो गणा इरियो पाणो पावणो पुरुत्तारियो।
बाबा महा महा मेरूव्व हिम-तावी आदिणो।।
साव-सावि-जयाइरियो। धम्माधुरी कम्मागणी
सम्माधणी पसारियो। सीसो तुमं आदिच्चगो बावा तुमं सिवाइरियो।।
साव-सावि-जयइरियो। वट्टमाण-एगविंस परीसही णेग-विंत।
सुद-समुद्द-चारिगो बाबा तुमं गणाइरियो।।
साव-सावि-जयाइरियो। दीव-दिव्व-संमुहे गुरुविमल-अंतगे।
णाणझाण-तव-रदी बाबा तुमं सुराइरियो। साव-सावि-जयाइरियो।

इदि तेत्तीस-विरागो समत्तो।

चोत्तीस-विरागो

वीहिं कप्पहुमाणं सघण-परिवारं पस्स पासे ठिदो सो
णंता-पादाण पत्ती हरिद-मणि-मया सव्व-सम्मा पणीदी।
णाही सुदो सो परम-परितावं ठाण-ठाणे पदंसे
झाणं कुव्वंत-माणो मुणिवर-विरागो साहु-संता पसण्णा।।1।।
जेणिंद-णेग-पडिमा तरु-छत्त-छाही छत्तत्तयं च धरमाण-पणम्म -साही।
बाबा तुमं सरण-सेव-पसण्ण-सव्वे रोहे ज उण्णद-सिरी सिरी-पाद-मूले।।2।।
जत्तो तुमं परम-सीस-णिमील-दिट्ठी जत्तो तुमं परम-झाण-पहाण-किट्ठी।
जत्तो तुमं परम-पावण-णासिगट्ठी तत्तो हि अम्ह सयलाण हु छिण्ण-भेदी।।3।।
आदिल्ल-वासि-मणुजा मणु-कंत-हीणा छिण्णे कुलाल-अदि-हस्सिद-अद्ध-णग्गी।
मज्जादिया कुविसणादि-पण्ण-खिण्णा जाएज्ज अज्ज कध भास तुहग्ग-मग्गी।।4।।
तुज्झं च मोण-अदि-संत-पसण्ण-मुद्दं तेसिं कुणेज्ज किसि-कम्म-तदो त्ति ते वि।
पावादि-मूल-विरहा विरहा हवेंति णग्गा चरेंति ण विराग-वि राग-मुत्ती।।5।।

इस क्षेत्र की वीथि को कल्पद्रुमों के सघन परिवार को देख-देख वे वहाँ स्थित हो जाते हैं। वे क्षेत्र अनंत पादपों की पंक्तियों वाले हरितमणि के समान सभी तरह सद्भावना देते हैं। इसका कारण यह है कि यह क्षेत्र नाभिराय के पुत्र आदिनाथ का क्षेत्र बड़े बाबा के नाम से प्रसिद्ध हैं। जो स्थान-स्थान पर परमतप को दर्शा रहा है। यहाँ ध्यान करते हुए सम्मान प्राप्त है। आचार्य विराग सागर और सभी साधु संत यहाँ इसी से प्रसन्न हैं।।1।। जिनेन्द्र देवों की प्रतिमा को तरुछत्र छाही तीन छत्र को धारण किए हुए वे वृक्ष अपनी शाखाएँ बाबा हो आप, यही सोचकर शरण में हैं, सेवा युक्त सभी प्रसन्न हैं। आपकी उन्नत श्री पर ये भी उन्नत/विशालकाय से वृद्धिंगत होते हैं।।2।। जब तक आपका परम आशीष है, निर्मिलीन दृष्टि है, जब तक आपकी परमध्यान प्रधान दृष्टि है, जब तक आपकी परम पावन नासाग्र दृष्टि बनी हुई है तब तक हम सभी छिन्न-भिन्न नहीं हो सकते है।।3।। यहाँ के ये आदिवासी लोक मनु कान्त है, फिर भी मनुजता से रहित हैं। ये कुलाल स्वभावी अर्धहर्षित एवं अर्धनग्न पेड़ों पर कुठार क्यो चलाते हैं? ये मद्य, मधु आदि कुव्यसनों से अपनी प्रज्ञा को क्यों क्षीण कर रहे हैं? ये इस तरह के क्यों हो गए? ये आपके मार्गी इस तरह के क्यों हो गए कहिए?।।4।। ये आपकी मौन छवि, अतिशान्त प्रकृति एवं प्रसन्न मुद्रा को देखते हैं तभी तो ये आपकी तरह अतिशान्त, प्रसन्न चित्त हैं। यह कृषिकर्म करते हैं, फिर भी ये वाहन विहीन पापों में ही प्रवृत्त रहते हैं। ये नग्न विचरण करते हैं, परन्तु विराग मूर्ति ये उन वृक्षों को छिन्न करने में राग क्यों रखते हैं ? ।।5।।

आदिच्चआदि-पहुभत्तिजुदा हि लोए पावेंति ताव-परितावविराम-सव्वे।
आराम-आसय-पदेणमएंति णिच्चं आदि-आदि-वण-जणाण संड्ढी।।6।।
तं संत-रुक्ख-वण-पंत-सुरम्म-ठाणं चत्ता इमो परम-भत्ति-सरूव-संघो।
विस्साणुगामि-अणुगामिय-विस्ससीलं ठाणं पउत्त-गणणायग मणिं पटेरं।।7।।
सड्ढाजणी वि मणुजा मणुहार-सीला ते कुंडलेण सह चारि-विचारि-लीला।
वेज्जाइवुत्त-सयला अदिभत्ति-जुत्ता अग्गे हि अग्ग-चरमाण-सुपेह-कीला।।8।।
पट्टेगाम-जिण-मंदिरं-इंसणत्थं गच्छेज्ज साहग-मुणीस-सु-तित्थ-भावी।
अत्थेव चिट्ठगद-अज्जिय-दंस-लाहं आलोग-अज्जि-सुणया मदि-भादु-सण्णा।।9।।
चारित्त-चित्त-णय-पुण्ण-सदा हि लोए लोएज्जएंति मणुजेसु विसेस-भत्तिं।
भत्तिप्पहाव-सुद-किति-कुणंत-सूरी पत्ते वणं च दम-मोह-दमोह-पंते।।10।।
वासं च तार-अणुपंत-अणेग-गामं चारित्त-सिंच-सुद-मित्त-पसंत-भावं।
कुव्वेज्ज पच्छ सदणं सदणं च हेतुं सब्भावणं सुरुचि-दंसण-दंसएज्जा।।11।।

जो भी प्रथम तीर्थंकर आदिनाथ की अत्यधिक भक्ति युक्त होते हैं, वे सभी इस संसार में पाते हैं, ताप-संताप, परिताप-दूसरों के द्वारा दिए जाने वाले कष्ट से विराम। वे आराम-ज्ञान, दर्शन एवं चारित्र के आश्रयभूत कारणों में समाहित यहाँ नमन कर रहे हैं। अर्थात् आपके आराम आश्रय के स्थान पर सदैव नमन करते हैं और अब कर रहे हैं। परन्तु क्या इन आदिवासी जनों की पहले ऐसी श्रद्धा थी ?।6।। यह संघ भक्ति युक्त उस शान्त वृक्ष प्रान्त वन के सुरम्य स्थान को छोड़कर विश्वभ्रमण से/भव-भवान्तर के गमन से रहित होने के लिए आचार्य विरागसागर के अनुगामी विश्वशील सागर मुनि के स्थान पटेरा को गणाचार्य तो मणि की तरह देखते हैं।।7।। श्रावक एवं श्राविकाएँ अनेक लोग श्रद्धायुक्त मनुहारशील कुंडलपुर से साथ चलते हैं विचारों की/धर्मचर्चा की लीला युक्त। वे सभी वैय्यावृत्ति युक्त, भक्ति की पूर्णता वाले आगे ही आगे चलते हुए मानो उत्तम अनुप्रेक्षा युक्त ही प्रतीत हो रहे थे।।8।। साधक मुनीश उत्तम तीर्थभावी होते हैं, वे साधकों, मुनिजनों, श्रावको आदि के साथ पटेराग्राम के जिनमंदिर में स्थित प्रतिमाओं के दर्शनार्थ जाते हैं। यही पटेरा में आलोकमति, सुनयमति आदि आर्यिकाएँ आचार्य श्री के दर्शन के लाभ को प्राप्त होती हैं। जहाँ आलोक हो नयों का, वह मति तो मातृत्व संज्ञा/वात्सल्य भाव युक्त होती ही है। आर्य को स्थित होने पर आर्यिका दर्शन लाभ अपने ज्ञान, दर्शन एवं चारित्र के आलोक के लिए वात्सल्य युक्त करती ही है।।9।। इस संसार को आज भी नयपूर्ण चित्त चारित्र को चित्रित करता ही है। इसलिए यहाँ के लोगों में विशेष भक्ति को देखते हैं। वे आचार्य श्रुत रूपी भक्ति प्रवाह एवं कीर्ति को सूर्य की प्रभा की तरह फैलाते हुए वनगांव के पश्चात् मोह-दर्शनमोह और चारित्रमोह दोनों को दमन हेतु/शमन हेतु दमोह में पहुँचते हैं।।10।। संघ बाँसातारखेड़ा आदि ग्रामों को प्राप्त हुआ, वहाँ चारित्र को सिंचित करते हुए श्रुत रूपी मित्र से प्रशान्त भाव को प्राप्त होते हैं। इसके पश्चात् सत्भाव को दर्शाते हुए सतना की ओर चल पड़ते इसलिए कि लोग उत्तम भावना एवं सम्यग्दर्शन की सुरूचि को देख सकें।।11।।

उच्छाह-वाद-जणवाद-मणे विसण्णं कुव्वेदि णिण्णय-मुणिं अवज्झाय-मंतं।
विज्जाइणंद-मुणिणाध-जगे पसिद्धो दाएज्ज दाण-पद-माण-उवज्झ-झत्ति।।12।।
जो आइरिज्जसु-गणस्स विचार सूरी तस्सिं विरोहकुणमाण-विवाद-पत्ते।
अत्तो जणा वि सयमेव विचारएंति अप्पा-गुरुं कि अदिरित्त-कदा हि सेयो।।13।।
पाइट्ठ-जण्ण-पद-मण्ण-मणा अणेगा ते णिण्णएंति ण हु णिण्यय-सागर व्व।
किण्णु त्ति जे गुरु-सुही जगदे हवेंति खिण्णेंति णो अदिपसण्ण-पदेण हुंति।।14।।
संघे बहिक्किद-मुणी पडिसोहजुत्तो ओज्झाय-साहु-पद-भूसिद-भूसिदे किं।
सम्मत्त-अंग-उवगूहण-आदि-मुत्तो संसाइ-जोग्ग-जगदे ण कदा वि जादि।।15।।
सेयो किदो परम-सेयय-दुक्करो त्ति भूसेज्ज अंग-बहि-अंतर-एग भागे।
जाएहिदे गुरुछलो मह किज्जिदो हि भावे मणे मणुज-भत्ति-खणे विदिण्णो।।16।।
सम्मो किएज्ज फल-कम्म-किदग्ग-जोग्गो पुज्जो इमो मणुज-माण-सरोवरम्हि।
णिस्संक-वच्छ-चरमाण-सदा हि सेयो गो संघ-गोगण-गणे अणुसासणं च।।17।।

उत्साह, वाद, जनवाद आदि मन में खेद उत्पन्न करता है। निर्णयसागर को उपाध्याय पद आचार्य विद्यानन्द द्वारा दिया जा रहा है। वे जग प्रसिद्ध आचार्य इस तरह के पद दान से उपाध्याय पद का मान बढ़ाएँगे।।12।। जो आचार्य होते हैं, वे गण के विचारक सूरी होते हैं। उसमें विरोध करना तो विवाद उत्पन्न करता ही है, परन्तु लोग विचार करते हैं स्वयं ही कि अपने गुरु के अतिरिक्त कब कौन श्रेयस्कर होता है? अर्थात् कोई नहीं।।13।। इस जगत् में सभी लोग मान, प्रतिष्ठा, पद आदि के मन वाले होते हैं। वे निर्णयसागर की तरह नहीं होते, जो गुरु आज्ञा स्वयं ही निर्णय कर लेते हैं पद के लिए। किन्तु जो गुरु होते हैं, वे सुधी जो जगत् में खिन्न नहीं होते, अपितु अति प्रसन्न होते हैं।।14।। संघ से बहिष्कृत मुनि प्रतिशोध युक्त हो ही जाता है। यदि वह उपाध्याय जैसे पद पर विभूषित हो तो क्या अपने पद के महत्त्व को बनाए रख पाएगा? जो सम्यक्त्व के अंगों से विहीन उपगूहन, स्थिरीकरण से विहीन क्या इस जगत् में प्रशंसा का पात्र बन सकेगा? अर्थात् वह कदाग्राही कभी भी प्रशंसा नहीं प्राप्त कर सकता है।।15।। कृतश्रेय तो पल में परमश्रेय को दुष्कर/अकल्याणकारी बना देता है। बाहरी अंग आभूषणों से भले सुशोभित हो जाए, पर अंतर के एक भाग में गुरु के प्रति किया गया छल अवश्य ही आएगा। वह महान कभी नहीं होने देगा? मनुष्यों की भक्ति के समय में यह भव मन में हो सकता है कि मेरे प्रति लोगों की कितनी भक्ति है, पर वह भी मन को खिन्न करती रहेगी।।16।। यह उचित कर्मफल है, जिससे कृतार्थ योग्य हुआ। यह पूज्य मनुष्य मान सरोवर में निःशंक, वत्सल प्रीतिवत् चलता हुआ श्रेय युक्त है। जैसे गोपालक अपने गोधन ओर गोगण को अनुशासन युक्त बनाए रखता है, वैसे ही यह निःशंक, वात्सल्य आदि गुणों का संघ गोगण-अर्थात् चर्या से युक्त उत्तम अनुशासन किए हुए हैं।।17।।

साहस्स-दो हि समए सिरिवास-भागे वासो हवे विसद-सागर-धम्म-भावी।
तंठाण-जग्गिद-जणं परिवोहदे सो पच्छा गढं गणण-सम्म-ठावणं च।।18।।
मग्गे विहारचरियाइ पसू-णरादी आदीजणा वि णमएज्ज जयं कुणेंति।
पक्खीगणा वि चरएज्ज खगे वि दंसे णिग्गंथ-भावचरमाण-विराग-सूरिं।।19।।
अच्छेर-जाद-अधुणा चरमाण-साहुं दंसेज्ज डंस-छुह-आदि-परीसहंतं।
दिव्वंसु-दिव्व-सयला दिव-चारि-रण्णे धण्णा कुणेंति अणुपस्स-विराग-धारि।।20।।
रण्णे अणेग-मिगया मिग-इच्छमाणी णम्मीभवा णमणमुत्त-इमा हि अज्ज।
दंसेंति दंसण-सुणाण-चरित्त-चित्तं चित्तो मिगो तुरिय-जुत्त-पधाव-माणो।।21।।
वण्णे सुवण्ण-सरिसो चिद-णंद-दाई गड्ढे पडेति तुरियं तुरियो पधाई।
णम्मो णमोत्थु करिदुं भव-पुव्व-साहू संघेण संग-चर-सम्म-दिवंग-धारी।।22।।
सोम्मा इमे हि सयला ण हु हिंसमाणी गंथाण चत्त-परिमुत्त-सुदासलेही।
अप्पं च भावण-परं अहिवुत्त-माणं दंसे जणा मुणिवरा अवि साहगा वि।।23।।

2000 में बांसातारखेड़ा में मुनि विशदसागर का चातुर्मास विशद् धर्म प्रभावना कर चुका था। उस स्थान में लोगों को जागृत करते हैं, आचार्य विरागसागर फिर गढ़ाकोटा में सम्यक् धर्म की प्रभावना करते हैं।।18।। मार्ग में विहारचर्या से पशु, मनुष्य, आदिवासी आदि नमन करते हैं। पक्षीगण आकाश में कलख करते हैं, निर्ग्रन्थ भावपूर्वक चलने वाले सूरी को देखकर। ये सभी प्रतिदिन देखते हैं विराग-तेजस्वी सूर्य को, लालित्यपूर्ण सूर्य को।।19।। इस विहार काल में नाना प्रकार के आश्चर्य साथ में चलने वालों को भी साधुत्त्व को प्रदान करते हैं, क्योंकि सभी डांस, मच्छर, क्षुधा आदि परीषह को सहन करते हुए दिव्यांसु-सूर्य की तरह दिव्य दिन में ही अरण्य विहारी हैं। इन्हें बार-बार देखकर मानों पूर्व के विरागधारियों को अपने जीवन को धन्य करने का अवसर ही प्राप्त हो रहा हो। अर्थात् विरागधारियों को देखकर वे सभी जीवन को धन्य करते हैं।।20।। अरण्य में अनेक शिकारीजन विचरण करते मृगों की शिकार के लिए। वे भी आज नमोऽस्तु विहीन नम्रीभूत हैं क्योंकि सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र की ओर चित्त किए हुए को देखते हैं। एकाग्रचित्त चित्त-मृग शीघ्रगामी दौड़ता हुआ इसी ओर आ जाता।।21।। यह सुवर्ण सदृश वर्ण में तो चित्त में आनन्द प्रदान कर रहा था, यह उछलता गतिशील होता हुआ गर्त में गिर जाता है फिर तीव्र गति से आता है नम्रीभूत, 'नमोऽस्तु' करने के लिए यही दर्शाने कि मैं भी पूर्व में इसी तरह का निर्ग्रन्थ साधु हूँ। वह तो मानो देवांगधारी देव हो, तभी तो संघ के साथ उचित चर्या युक्त लगभग 2 किलोमीटर चलता है।।22।। मृग तो सोचता है कि ये सौम्य-चन्द्र है, ये हिंसा से रहित हैं, यह ग्रंथों के परित्यागी श्रुताश्रयी हैं उसी के अनुसार चलने वाले हैं। ऐसी आत्मभावना एवं अभिप्राय को व्यक्त करने वाले मृग को सभी लोग देखते हैं, मुनिवर और सभी साधक भी।।23।।

में गंथचत्त-सयलं च सरिच्छ-साहू होस्सेदि पुव्व-मणुजे सुह-कम्म-जुत्तो।
माया-तिरिच्छ-गदि-जाद-कुरंग-रूव दंसेविदूण णिय-जम्म-अवस्स-संतो।।24।।
मंगल्ल-भाव-परमत्थ-इमम्हि संघे जो रण्ण-रम्म-मिग-गम्म-सम्म-रूवो।
चारिज्जमाण-परियाजुद-गाम-गोरं बंडाइकेस-रइली सिर-टड्ड-गामे।।25।।
मग्गे अरण्णसघणो धण-मंतणं च चित्तल्ल-णील-मिग-बारह-सिंग-पाणी।
गिणब्भीग-चंदण-तरूण सगोण-तिदू भीदा वि अज्ज परिपास-जणाणं गच्छे।।26।।
चिंत्तेति ते वि मणुजा बहूकूर-लोए अम्हाण'हिंसकुण-लज्ज-इमे हि णत्थि।
कत्तल्ल-कत्तय-कुढार-तरूण णासे णो केवलं सर-णदीण सुणीर-खीरं।।27।।
अम्हे णिरंतर घणं घणघोर-रोहं जण्णा सदा हरिद-वण्ण-हरिं सरेमो।
आमंतएंति सिर-णम्म-सदा हि तेसिं जत्तो पदेंति तध तेहिं अहिच्च-णासं।।28।।
णो ते मुणेज्ज तमसा हि पउत्ति-जुत्ता मोहंधं-अंध-कलुसा कलसं च इच्छे।
सत्थी इमे परमसत्थि-सवा पदंसे अत्तो विदूर-भवमाण-दूधे पधावे।।29।।

मैंने ग्रन्थ परित्याग किया होगा सर्वस्व, साधु बना हूँगा पूर्व मनुष्य जन्म में। शुभ कर्म युक्त था, परन्तु माया से तिर्यंच गति रूप कुरंग/मृग जन्म में इन्हें देखकर पुनः शुभकर्म हो रहा हूँ। मेरा जन्म निश्चित ही शान्त था।।24।। सब कुछ मांगलिक होता है, अरण्य में रम्य साथ प्रसनतापूर्वक चलने वाले मृग से। मांगलिक संघ में इस प्रसंग ने परमार्थभाव में अधिक प्रवेश करा दिया। संघचर्या युक्त हो गोरझामर आदि ग्रामों को प्राप्त होता रहली, केसली, बंडा, सिहरमऊ, टड़ा आदि ग्रामों में परमार्थ का प्रवाह हुआ ।।25।। मार्ग में सघन जंगल तो घने मेघों को आमंत्रण करते हैं, चित्तल, नीलगाय, मृग, बारहसिंगा आदि भी। वे सभी निर्भीक इस चंदन, सागोन, तिंदू आदि वृक्षों की वृद्धि में सहायक होते हैं। परन्तु लोगों को देख-देख भयभीत हुए भाग जाते हैं।।26।। इस संसार में अत्यंत क्रूर तो मनुष्य है, जो हम लोगों की हिंसा कर लज्जा का अनुभव नहीं करते हैं ये हाथ में करोंत और कुठार लिए हुए वृक्षों को ही नहीं, अपितु तालाब, नदी आदि के क्षीर सदृश नीर की भी हानि करते हैं।।27।। इस अरण्य के पशु एवं पादक तो घनघोर मेघों को रोकते हैं, हम सभी प्रयत्नशील रहते हैं हरित वनस्पतियों हरित बनाने में। हम हरित बनाए रखने के लिए हरि को स्मरण करते हैं। परन्तु ये हरित-वर्ण/कृष्ण स्वभावी हरि को स्मरण करते हैं पण्ण/धन-संपदा के लिए। हम उनके लिए सिर से नम्र ही आमंत्रण करते हैं, पर ये सिर से नम्र एक ही मंत्र धन मंत्र में लगे रहते हैं। ये मेघ जितना देते हैं उससे कही अधिक उन मनुष्यों के द्वारा नाश कर दिया जाता है।।28।। ये तमस की प्रवृत्तियुक्त, मोह रूपी अंधकार से अंधे, कलुषता युक्त कलश की इच्छा तो करते हैं, पर उस पर चिंतन नहीं करते हैं। यह शास्त्री हैं, शास्त्र/आगम/सिद्धान्त को पढ़ते भी, सुनते भी, पर ये परम स्वार्थी ही होते हैं। अतः इनसे दूर ही रहने के लिए भागते रहते हैं।।29।।

इमे त्ति मेह-धण-वारिस-जुत्त-मुत्ता मुत्ता'सरिच्छ-पहु-बिंदु-पक्खणं मग्गं।
किच्चा गदा गदि-किदा-मिग-मण्ण-भासे के इ त्ति रक्खण-सहाव-अदो हि लोए।।30।।
आमंतएंति सहमित्त-घणं च मेहं सव्वे कुमार-सउमाल-धवल्ल-जादी।
जाएंति तत्थ जध मग्ग-सुरूक्ख-रामा आराम-हीण-सयला मुणि-साहगव्व।।31।।
सिंहा-मिगा-तुरय-णील-गवक्ख-रिक्खा साणा-सिगाल-गज-सावग-कली-माणा।
मं दंस-दंस-मुद-हंस-मयूर-णच्चे मोदा मुणी मणुज-मंतण-लोह-मूले।।32।।
इत्थिव्व सेल-सिलवाणि-पदेस-सव्वे कत्तुं च सेल-सम-साहु-समाज-सम्मं।
ते णिच्चला चल-मणुस्स-चरंत-सगे आसीस-जुत्त-सयला कध किं मुणे णो।।33।।
उम्महा खेत्र-परिखेत्र - जणा हि सव्वे सिस्सा विसुद्ध मुणि - विस्स-विससल- साहू।
जेणेदरा मुणिवरस्य सुसंघ सागदं च कुप्वेज्ज सम्म-गुरु-सिस्स-मिलेज्ज णंदे।।34।।
राजे पदिट्ठ-विमलो वि णरेस-पंचो अण्णू-वहीद-मणुजा मण-कप्प-जुत्ता।
मंसं च एज्ज अणुसड्ढ-अणेग-गामी आणंद-खेम-बहु-सावग-साहिगाओ।।35।।

अरण्य में कोई तो अरण्य प्राणियों की रक्षक स्वभाव वाला होता है, इसलिए तो सिंहपुरी के जंगलों के मध्य आहारचर्या के समय मेघों ने वर्षा की, मुक्ता सदृश अत्यधिक वर्षा से, मार्ग को प्रक्षालित किया और चले गए, ऐसा मानों मृगों के मन से उच्चारित हो रहा था।।30।। सभी मेघ कुमार, अति सुकुमाल धवल जाति वाले अपने मित्रों को आमंत्रित करते हैं। वे जाते हैं उसे मार्ग की ओर जहाँ राम/वृक्षों को आश्रय था। वे आरामहीन सभी, साहक मुनियों की तरह हैं। जैसे मुनि या साधक एक ही स्थान पर आराम नहीं करते हैं वैसे ही मेघ हैं। जो एक आराम/वनस्थली से दूसरी वन भाग में प्रवेश कर जाती है।।31।। इधर है, सिंह, मृग, तुरंग, नील, गवाक्ष, रीक्ष, श्वान, श्रृंगाल, गज, सावक सभी क्रीड़ा करते हुए। जो मुझे देखते, मुदित होते हैं, हंस, मयूर आदि पक्षी नृत्य में लीन हर्ष व्यक्त करते हैं, मुनिजन भी प्रसन्न रहते हैं, पर ये मनु की संतान एक लोभ रूपी मंत्रणा में मनुज दिखाई देते हैं।।32।। सिलवानी में हस्ति शैल की शिला तो सभी साधु समाज को शैल की तरह दृढ़ होने के लिए कहती है। जैसे ये निश्चल मुनि वैसे ही है जैसी शिलाएँ। इनके साथ विचरण शील, आशीष युक्त यह क्यों नहीं सोचते हैं कि हम मनु हैं, मननशील इस मुनिमार्ग पर चलते हुए यहाँ तक आ चुके हैं।।33।। यहाँ पर पूज्य गुरुवर के त्रय शिष्य मुनि श्री विशुद्धसागर जी, विशल्यसागर जी व विश्ववीरससागर जी तथा सारी जैन-जैनेतर समाज द्वारा पूज्य गुरुवर की ससंघ अगवानी की जाती है। गुरु व शिष्य मिलन तो नेत्रों को श्रद्धा-भक्ति से सजल कर देता है।।34।। इस सिलवानी में प्रतिष्ठाचार्य विमलकुमार सौरया, नरेशचन्द्र नेता, पंच, फादर आदि भी उपस्थित थे। मांसाहारी जनों ने मांस नहीं खाने की प्रतिज्ञा ली। अन्नूमिया सरपंच, पंच वहीदमिया आदि ने। इस प्रसंग पर अनेक श्रावक-श्राविकाएँ पंडित आनंद पटेल, पंडित श्रेमंकर आदि भी उपस्थित थे।।35।।

कल्लाण-तित्थ-समए मणुजा अणेगा गामीण-सेट्ठिपुर-आगंद'बंहयारी।
बंहं चरेज्ज हवेदि वविदादि-गिही गिहत्तं बंडी य सुंदरि-गदा गदि-सिद्ध-पत्तुं।।36।।
णीलेस-विस्सु-पदें अवि विस्सेसो खेमक्खरादु पद - खुल्लग - भूतिदा हि।
आयोजणाणि विविहाणि इम पलंगे अज्झप्प-गीद-सुद-मीद-पवाह-णिच्चं।।37।।
अत्तागमं दरिस-सव्व-सुणाण-झाणं वाहेज्ज सो परम-आद-सहाव-लीणो।
गच्चदेमऊ वि मडखेड-सहे महे वि वीणाइवार-भगमेरु-अरण्ण-मज्झे।।38।।
ससो देवरिं च अणुपत्त-इमो त्ति संघे सत्तावदी इगग -संति-समाहि-जुत्ता।
आगच्छ-माणस-हिए हि -समाहि-मुत्ता आराहणा-सुगरू-झाण-प-पाण-पत्ता।।39।।
आसीस-पत्त-मणुजा वंद-सील-मुत्तं णेदूण गाम-पुर-वासि-अणेग-सत्ता।
गच्छेंति गच्छ चरए सुरहिं च गामं पच्छा दु सागरपुरे वि पवेस-पत्ता।।40।।
इदि गण-गण-गणिंदो गण्णदे गण्ण-णंदे मुणि-सदसि मुणिंदो आद-तच्चं वहंतो।
घण-पुलगिद-मणुस्सा ते सु-भावणांदिणा गिह-गिह-पद-अंगणे सागदं सागदं ते।।41।।

पंच कल्याणक के दीक्षा कल्याणक समय पर अनेक लोग उपस्थित थे, ग्रामीण, श्रेष्ठि, नगर से आगत जनसमूह एवं ब्रह्मचारी वर्ग भी। बबीता एवं बीना दीदी गृहस्थ जीवन को छोड़कर ब्रह्मचारिणी को प्राप्त हुई। वे ब्राह्मी-सुंदरी बनी गति सिद्ध प्राप्ति करने के लिए।।36।। इस प्रसंग पर ब्र. नीलेश, ब्र. श्रेमंकर तो क्षुल्लक पद पर विभूषित हुएँ नीलेश हुए क्षुल्लक विश्रुतसागर और क्षेमंकर बने क्षु. विश्वेशसागर। इसी समय हुए अनेक आयोजन, जिनमें अध्यात्म गीत, श्रुत की उत्तम प्रभावना आदि की गई।।37।। वे आचार्य विरागसागर आप्त, आगम, एवं सर्वदर्शी के उत्तमज्ञान, परमध्यान को परम आत्म स्वभाव में लाते और उसी को प्रवाहित करते सिहरमऊ, मडखेड़ा, सहजपुर, महराजपुर आदि में। फिर प्राप्त होते हैं अरण्य से विचरण करते हुए अरण्य वाले भगवान आदिनाथ, पार्श्वनाथ आदि मेरु मंदिर युक्त अतिशय क्षेत्र को।।38।। वह संघ देवरी पहुँचा, जहाँ पर सप्तम प्रतिमाधारी शान्तिदेवी शान्ति एवं समाधि, सम-भावना युक्त अपने मानस में बनाए हुए आती है वे समाधि की मूर्ति आराधना भी करती हैं तथा अच्छी तरह गुरु का ध्यान करते हुए प्राणों का त्याग कर देती हैं।।39।। लोग आशीष प्राप्त करते हैं, वे व्रतशील आदि की मुक्ताओं को लेकर ग्राम, नगरवासी एवं प्राणियों का हित करते हैं। वे सभी अपने-अपने स्थान पर चलते जाते हैं? आचार्य श्री सुरखी ग्राम आदि को प्राप्त होते हुए सागर को प्राप्त होते हैं।।40।। इस प्रकार आचार्य, आचार्य का संघ जहाँ गण की गणना में आगम का निर्देश लेते हैं। वहीं मुनिजन और मुनीन्द्र आत्मसतत्त्व को बहाते हुए चलते हैं, जब तब अत्यधिक आनंदित मनुष्य उत्तम भावनाओं से युक्त हो जाते हैं। वे प्रत्येक स्थान पर, प्रत्येक आंगन में स्वागत को महत्त्व देते हैं।।41।।

थुदि-परम-भत्ता ते मावणा संघमाणं कुण कुण पभासा ते सागरे सागदेज्जा।
सुद-सुरसि-पण्णा पण्णा दया माणि-धण्णा धवल-वसणादी जुत्ता विरागं जएज्जा।।42।।

सागर के लोग स्तुति, परम मुनि भक्त एक दूसरे को सागर में स्वागत के लिए कहते हैं। यह सागर तो श्रुत सरिता, श्रुत प्रज्ञा वाला है। यहाँ पन्नालाल, दयाचंद, माणिकचंद, धन्नालाल आदि धवल वस्त्र युक्त हो श्रुत सागर की धवलता को प्रदान करनते रहे हैं। अतः हम सभी संघों के मान को करें, ऐसा जय करें कि विराग भी विराग को फैला दें।।42।।

इदि चौत्तीस-विरागो समत्तो।

पैंत्तीस-विरागो

इत्थं राग-जणा मणे पमुदिए जम्मं फलं णंदणं कुव्वंता गदिमाण-माणुज-पदे सम्मे विरागे णदे।
वावारं ववसाय-भिच्चकिरिए चत्ता णमो वंदणं णाणा-जाण-विमाण-वाहण-वहे अज्जंजए संजदे।।1।।
संगे जणी सइ-समा हि अलंकिदा वि कंडे वि हार किण-किंकण-कुंडलो वि।
केयूर-बाहु-भुज-कप्प-तरूव्व साहा रेजे दु किंकिणि-सु-पाद-सुरत्त-भासे।।2।।
ताओ कटक्ख-रहिदा कढि-भास-मुत्ता मुत्तावली-दसण-राजिद'हत्थ-पोम्मा।
पेम्मासणी गदिविराग सदा हि अज्ज सज्जा अणंत-उवयार-णियं च कुव्वे।।3।।
सव्वे सु-भत्ति-गुरु-दंसण-सज्ज-हेदू आबाल-बुड्ढ-परिवार-समूह-णंदो।
तं ठाण-पत्त-सुद-सिक्खण-वण्णि-बाबं मोरा जि राजदि सु-सोम्म-पसंत-संता।4।।
णेगाजणा विहि-विधायग-णाणवुंदा सोम्मा सुधा अवि-विधायक-दंस-जुत्ता।
संतोस-पूरण-असोग-दया-णारिंदो णण्हे वि मोदि-सिहरो दूध सम्मदंसी।।5।।

इस संसार के लोग राग मन होने पर भी विराग के कारण प्रमुदित अपने जन्म के फल को सफल करता है। ये गतिमान मानुज पद पर स्थित विराग में लीन हो जाते हैं। ये सभी व्यापार एवं नौकरी आदि छोड़कर नमित है और वंदन को कर रहे हैं। ये सभी अलग-अलग प्रकार के यान, विशेष मान रहित मन में आनंदि वाहनों को उसी मार्ग पर ले जा रहे हैं तथा आज सभी जयकार में प्रवृत्त हो गए हैं।।1।। इन लोगों के साथ शचि सदृश नारियाँ अलंकृत ही थीं, वे कंठ में हार, रूण झुण करने वाले कुण्डल, केयूर से सुशोभित जिनकी बाहुँए कल्पवृक्ष की दो शाखाएँ ही प्रतीत हो रही थीं, तथा किंकिणी युक्त पायजेब उनके सुरक्त पैरों की शोभा बढ़ा देती हैं।।2।। महिलाएँ इस शुभ प्रसंग पर कटाक्ष रहित हो गई थीं, वे कक्षकट लट-कट की अक्ष पांसे नहीं फेंक रही थीं। वे कटिभास! पतली कमर वाली कटिभास। ईर्षाभाव से मुक्त, मुक्तावली रूपी दंत से सुशोभित, हस्तकमलिनी तो आज मुक्त स्वरूप की आवली-ज्ञान, दर्शन एवं चारित्र की प्रभा अब अपने हस्त में आया हुआ जानकर ही आचार्य दर्शन के लिए जा रही हैं। वे प्रेम-परायणा, राग की गति वाली आज विराग की ओर गति कर रही है। वे शीघ्र अनंत उपकार को अपने में स्थापित करती हें।।3।। ये सजे धजे लोग गुरु दर्शन हेतु आबाल, वृद्ध आदि परिवार सहित आनंदित उस स्थान को प्राप्त होते हैं, जो स्थान श्रुत शिक्षण का केन्द्र एवं गणेशप्रसाद वर्णी बाबा का स्थान है। वह स्थान मोराजी आज सुसौम्य प्रशान्त शान्त सुशोभित हो रहा है।।4।। अनेक लोग विधिनायक, ज्ञान वृन्द, विधायक सुधा जैन, संतोष बेटरी वाले, पूरनचंद, अशोक कुमार आदि के साथ पंडित दयाचंद, नरेन्द्रकुमार, नन्हेलाल, पंडित मोतीलाल, पंडित शिखरचंद आदि सम्यक्दर्शी बनें।।5।।

फग्गुण-पच्छ चिद-चेत्त-सुमास-चित्ते णंदे जणाण किसगाण किदाण अज्ज।
वीरस्स जम्म-जय-जुत्त-जयंति-बाले साहस्स-पण्ण-अहिगा-मणुजा विसाला।।6।।
सुत्ताण-सुत्त-णिलए त्ति पवेस-माणा सुत्तत्थ-सार-परमं अवरं अवारं।
णेत्तुं सदा सुपहावह-संग-णादुं णादा-जणाण परिवाद-विचार-कत्तुं।।7।।
सम्मं च अत्थ-अणुसीलण-सत्थ-णदं आमंतएंति बहुमाण-पहाण-भावे।
आलाव-राज-दहढास-सु-बाल-बोहं भत्तंबरं धवल-अंबर-पंचमीए।।8।।
साहू विणिच्छयय-विस्स-सुविस्स-लोए संति त्ति लोयण-मुणी अवि-कित्ति-जुत्तो।
एकक्क-खुल्लग-विणम्म-विणीद-णीदी अज्जी विसाल-परमागम-बंह-बंही।।9।।
अस्सिं च अत्थि रग-साविह-साविगा दु सल्लेहणं च वदइच्छुग-साहगा वि।
दिक्खंविहि च अणुपत्त-इमा वदि त्ति सा मारणंत-वसदि वसदि त्ति मादू।।10।।
मग्गोदयट्ठाण-अधुणा इग-तित्थ-णामो तस्सिं च सत्थ-अणुसार-विहिं च पत्ता।
सा धण्ण-जम्म-किद-भाव-पुणदि-जुत्ता संदेसदे भव-भवंतर-सम्म-कत्तुं ।।11।।

फागुन महिनें के पश्चात् चैत्र मास तो चित्त में चैतन्य भाव जागृत करता है। इस माह में सभी तरह के लोग, कृषक एवं कार्मिक आनंद को प्राप्त होते हैं। वीर/महावीर जन्म तो जय युक्त ही होते हैं, इसलिए जन्म जयन्ती के शुभ अवसर पर पाँच हजार से अधिक जनसमूह उपस्थित हुआ।।6।। जो सूत्रों के सूत्र निलय आगम में प्रवेश चाहते हैं, वे सूत्रार्थ के परम आधार सार को लेने के लिए प्रयत्नशील रहते हैं, वे उसकी प्रभावना के साथ जानने को महत्व देते हैं वे ज्ञाताजनों से चर्चा, विचार आदि करने के लिए भी उद्यत रहते हैं।।7।। सम्यक् अर्थ अनुशीलन तो शास्त्र ज्ञाता के माध्यम से होता है, इसलिए शास्त्रज्ञाताओं को बुलाया जाता है, बहुमान, सम्मान एवं प्रमुख भावपूर्वक ही। शास्त्रवाचना भी होती है, आलाप-पद्धति की बिना विवाद के। राज-राजवार्तिक से राज-शोभा की जाती है। ढ़ाल भी एक नहीं छह-छह ढ़ाल छहढ़ाला का राज-रहस्य भी व्यक्त किया जाता है। बालकों को भी उत्तम बनाने के लिए बालबोध की शिक्षा दी जाती है। भक्तामर के 48 काव्य तो धवल अम्बर हैं जिन्हें श्रुतपंचमी के समय अम्बर-आकाश की तरह विशाल बनाया जाता है।।8।। इसी समय मुनि विनश्चयसागर, मुनि विश्वशान्ति, मुनि विश्वलोचल, मुनि विश्वकीर्ति आदि अपने नामानुसार ही प्रतीत हो रहे थे। ऐलक विनम्रसागर, क्षुल्लक विनीत सागर भी श्रुत नीति वाले थे। अनेक आर्यिकाएँ, ब्रह्मचारी, ब्रह्मचारिणी आदि परमागम के रहस्य की इच्छुक थीं।।9।। सागर नगर में एक श्राविका वसति तो दीक्षा विधि के पश्चात् ही क्षुल्लिका विनर्गताश्री बन मारणान्तिकी सल्लेखना को प्रापत हुइ। यह व्रती सल्लेखना व्रत की इच्छुक होने के कारण ही वसंति वाई उत्तम वसति/गति को प्राप्त हुई।।10।। सागर में भाग्योदय स्थान पर इक्कीसवीं शताब्दी का तीर्थ स्थान है। उसमें शास्त्रानुसार समाधि विधि को प्राप्त हुई वह वसंतिवाई अपने जन्म एवं मृतभाव को पुनीत बना पाई। ऐसी साधिका हमें संदेश देती है कि हम भव-भवान्तर की समीक्षा करने के लिए प्रयत्नशील रहें।।11।।

वा वारि-वारिहि-वरो वि गहीर लोए सत्थाणुसासण-सदा अणुसासदे हि।
तस्सिं कुणेंति णिहवण्ण-जणा वि धण्णा सागार-मग्ग-परिचत्त-विराग-पण्णा।।12।।
सुत्तण वायण-सदा हि सुसड्ढभावो जाएज्ज बुड्ढिगदि-वड्ढण-णीर-तुल्लं।
चारित-चारु-चरणे चरिया वि णिच्च अंते तवे वि सुद सच्छ-सुसोम्म-मोल्लं।।13।।
सत्थाण सुत्त-पवहो हि कदा विरामो जाए समावण-समो ण हु तेउतेसिं।
ते सुत्त-आगम-पुराण-थुदि त्ति दीवो अप्पं परं च परमं च पगासएज्जा।।14।।
आगार-वासि-अणगार-दुवे हि लाही हुंति त्ति णाण-परगासग-आद-वाही।
वेरग्ग-भाव-पवलो सवणेण सत्थे णेगा-विरागि-परिणामि-भवं विसोहो।।15।।
दिक्खा हवेहिदि इधे पुर-सागरम्हि सव्वेहि माणव-मणेहि सु-सागदं च।
काएज्ज सव्व-णयरे बद-बंह-जुत्तं मेहा पपूरदि जलेण कि णो ते णंदे।।16।।
अस्सिं च सागर-पुरे मणुजाण ओहा णं सागरस्स गहिरं अहिविंजणं च।
सव्वत्थ घोस-जयघोस-विराग-सूरि मोरा जि-मोर-गिह-कूड-पहेडि कुंजे।।17।।

जैसे इस संसार में जल प्रवाह जल वारिधि बनता है, तब यह श्रेष्ठ एवं गहरा होता है, वैसे ही शास्त्रानुशासन का अनुशासन जहाँ होता है, वे धन्य होते हैं। उसमें स्नान करने वाले लोग धन्य हेाते हैं। वे ही उसमें स्नान करते हुए सागर मार्ग छोड़कर विराग प्रज्ञा हो जाते हैं।।12।। सूत्रों की वाचना से सम्यक् श्रद्धभाव उत्पन्न होता है। बुद्धि गतिशील एवं नीर की तरह प्रवाहिनी बनी रहती है। चारित्र का उत्तम आचरण होने पर सदैव चर्या भी आभ्यंतर की ओर जाती है। अंतर में तप होने पर श्रुत की समीचीनता का आभास होता है और सौम्यता की मौलिकता को भी गति मिलती है।।13।। शास्त्रों का सूत्र गतिशील होता है। अर्थात् जैसे सूत्र/धागा जितना लम्बा करते जाऐंगे वह उतना ही बड़ा होता जाएगा। उस पर कदापि विराम नहीं लगता है। उनका समापन नहीं, अपितु समत्व का आत्मा में प्रवेश होता है। सम-आषण-समत्व की प्राप्ति तो सम-श्रम है श्रमण का। वे सूत्र, आगम, पुराण, स्तुति आदि तो उनके दीप हैं जो स्वयं को परम प्रकाशित करते हैं और दूसरे को भी प्रकाशित करते रहते हैं।।14।। आगार एवं अनगार दोनों ही आत्मलाभ करते हैं। वे ज्ञान प्रकाशक आत्मधारा की ओर बढ़ते हैं। शास्त्र में प्रवेश करने वाले वैराग्य भाव में दृढ़ होते हैं। इसे अनेक साधक विराग-परिणामी भव को भी पवित्र कर लेते हैं।।15।। सागर में दीक्षा होगी, सभी मानव मन के द्वारा ब्रह्म युक्त बालाओं का सर्वत्र स्वागत किया जाता है, तो फिर मेघ जल से पूरित क्यों नहीं करते? वे भी आनंदित सागर में इस आनंद को फैला देते।।16।। इस सागर नगर में मनुष्यों का समूह तो सागर की गहराई को अभिव्यंजित कर रहा था। सभी स्थलों पर आचार्य विरागसागर का जयघोष एवं दीक्षार्थियों का स्वागत हो रहा था। मोराजी का प्रागंण, गृहों के कूट, पथ एवं कुंजों के विराग ही विराग था।।17।।

साई भिलाइ सिविणादु विबोह-मोही वासा पुरस्स दु विवथ्य-विजुत्त-मादू।
णीदू विजेयसिरि-अण्णु-विणेय-विण्णु वीणा विसोह-विस-संत-विधाय-मादू।।18।।
दिक्खाइ पच्छ धवलंगि-इमा हि अज्जी सव्वं सुदं च पूरमागम-सार-पत्तुं।
जण्णा णिरंतर-पबोह-पबोह-मग्गं, णेंत्ति त्ति-चिट्ठ-गुरु-गारव-दंसएज्जा।।19।।
सड्ढा जणा सदद-आगद-दंसणत्थं पस्सेंति सूरि-मुणि-संघ-सुणाण-जुत्तो।
णाणीपमाणि-सुदि-झाणि-तवी हि दंसे आसीस-पत्त-मणुजा-सुह-संति-पत्ते।।20।।
कत्तो वि कत्थ मणुजा अणुपस्सएंति अच्छेर-भाव-गुरुमंत-अणादि मंते।
तत्तो समेज्ज वहठोस-सिलेंडरम्हि साला-सलेल्ज गदिराम-जणाण णंदे।।21।।
सल्लो विसल्ल-मणुजाण ण चत्तएंति मग्गी-विसुद्ध-मुणि-मंगल-कज्जणेंति।
चत्ता पदं कि अणुलाह-सरीर-हेदू अस्सिं च आगम-विचार-सदा पमाणो।।22।।

बा. ब्र. स्वाति दीदी छाबड़ा भिलाई-आर्यिका विबोधश्री जी। बा. ब्र. स्वप्निल दीदी गोयल भिलाई-आर्यिका विमोहश्री जी। बा. ब्र. वर्षा दीदी सागर-आर्यिका विविक्त श्री जी। बा. ब्र. नीतू दीदी भिलाई-आर्यिका वियुक्तश्री जी। बा. ब्र. नीतू दीदी भिण्ड -आर्यिका विजेताश्री जी। बा. ब्र. अनुराधा दीदी भिलाई-आर्यिका विनेताश्री जी। बा. ब्र. पिंकी दीदी कटनी - आर्यिका विद्वतश्री जी। बा. ब्र. बीना दीदी भण्डि़-आर्यिका विशोधश्री जी। बा. ब्र. निशा दीदी भिण्ड-आर्यिका विश्वासश्री जी। ब्र. श्यामा पथरिया-क्षुल्लिका विशांतश्री जी (पूज्य आचार्य श्री की गृहस्थावस्था की माताश्री) ब्र. मुन्नीबाई लखनऊ-क्षुल्लिका विधाताश्री जी।।18।। दीक्षा के पश्चात् ये सभी धवल वस्त्र आर्यिकाएँ सम्पूर्ण श्रुत, परमागम के सार की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील होती हैं। ये आपस में तत्त्वचर्या से अपने को ज्ञानमार्ग की ओर ले जाती हैं तथा गुरु गौरव की वास्तविकता हेतु गुरु के समीप श्रद्धा को अभिव्यक्त करती है।।19।। श्रद्धालु सतत् ही आते दर्शनार्थ, वे देखते हैं, सूरी के मुनि संघ को सुज्ञान युक्त। वे ज्ञानी, ज्ञान प्रमाणी, श्रुती, ध्यानी एवं तपस्वी भी हैं, जो भी ऐसा देखते वे भी इस तरह की भावना युक्त होते हैं। आचार्य श्री से आशीष प्राप्त लोग सुख-शान्ति का अनुभव करते हैं।।20।। जब कभी, जहाँ कहीं भी लोग देखते हैं, गुरुमंत्र, अनादि मूल मंत्र में अनंत शक्ति भी। लोगों को आश्चर्य होता है उस समय, जिस समय गैस सिलेंडर से निकलती हुई गैस एवं उससे लगने वाली आग शान्त हो गई थी। आपके आशीष से आराम स्थल धर्मशाला को गति मिलती है और लोगों को अति आनंद होता है।।21।। शल्य हो या विशल्य-अधिक पीड़ा मनुष्यों को नहीं छोड़ती है। चाहे वह विशुद्ध मार्गी मुनि मंगल कार्य में क्यों न लगा हो, फिर भी शल्य/शारीरिक पीड़ा घातक होती है। इस अवस्था में मुनि पद छोड़कर शरीर लाभ हेतु ही प्रवृत्ति की जाती है। सो ठीक ही है, आगम विचार सदा ही इस लोक में प्रामाणिक रहे हैं।।22।।

अग्गे हि अग्ग-अणु-आगद-अत्त-मग्गी वेय्याइविच्च-सद-भत्ति-जणा हि लोए।
सेवंति सासद-सुहं अणुभावएंति आयार-णिट्ठ-गणि-गच्छ-सदा पसंसी।।23।।
पासंस-संस-पदमुत्त-पदं च रक्खे चारेज्ज गाम-पडिगाम-पुरे हि णिच्चं।
बुंदेल-खण्ड-धण-हीण-सदा हि सेयो वेज्जाइवेच्च-अणुसेव-पसंसणिज्जो।।24।।
सेवा महा महवदीण जदीण अस्सिं जस्सिं अणेग-विह-भाव-अणंत-भत्ती।
पत्ते सुहं दुह-गणाण समत्ति-पुण्णा अत्थि त्ति णो णिरय-तेरिय-सम्म-चिंते।।25।।
धम्मे इमा परम-संति-पदायिणी हि पाणी-दया-सयल-जीव जगं पडिं च।
सच्चं च संति-खम-संजम-वड्ढिणी सा सोचं वितिण्ह-दयणी सद-बुद्धिणी सा।26।।
मिच्छंधयार-भव-णासिणि-दुक्ख-दंती अण्णाण-पादण-कुमग्ग-पवाद-पंती।
उच्चिट्ठ-तत्त-जल-तुल्ल-विकार-णीरी दुक्कम्म-काम-कलिणी च विधादिणी सा।27।।
सेवा-सरीइ णिहवेण विराग-सत्ती धम्माणुराग-परमागम-सड्ढ-भत्ती।
आसत्ति-संग-विरदा सह-भावणा हि कल्लाण-कारग-इमा परमेट्ठी-कत्ती।।28।।

आप्तमार्गी मुनियों की वैय्यावृत्ति, उत्तम भक्ति आदि अवश्य करते हैं। वे आगे से आगे आगत का स्वागत करते हैं और उन्हीं के सेवा में सुख की कामना करते हैं और सोचते हैं कि इस संसार में जो आचार निष्ठ गणाचार्य होते हैं, उनकी और उनके गच्छ की सदा प्रशंसा ही होती है।23।। जहाँ प्रशंसा है, वहाँ संशय है, परनतु जो इनसे मुक्त पद की गरिमा की सुरक्षा करते हैं जो मार्ग (सम्यक्त्व के मार्ग) पर चलते हैं। वे ग्राम, प्रतिग्राम एवं नगर आदि में प्रवेश करते हैं। बुंदेलखण्ड धन से रहित, फिर भी श्रेष्ठ है वैय्यावृत्तजनों से साधुओं की सेवा आदि के लिए। इसलिए वे प्रशंसनीय हैं।।24।। इस लोक में सेवा महाव्रतियों, यतियों आदि की पवित्र सेवा है, जिसमें अनेक प्रकार के भाव, एवं अनंतभक्ति है। दुःख समूहों की पूर्ण समाप्ति एवं सुख की प्राप्ति होती है। सेवा जहाँ है, वहाँ नहीं है, नरक, तिर्यच यही उचित चिंतन जो करते हैं वे सुख को प्राप्त करते हैं।।25।। यह है धर्म में, धरम शान्ति प्रदायिनी इसमें प्राणी दया है समस्त लोक के जीवों के प्रति। यह सत्य, शान्ति, क्षमा, संयम को बढ़ाने वाली है। यह शौच वितृष्णा देती है और उत्तम बुद्धि भी देती है।।26।। सेवा जहाँ है, वहाँ नहीं है मिथ्यात्व अंधकार। यह है भवनाशिनी, दुःख दमन करने वाली। जहाँ अज्ञान के पादम हैं, कुमार्ग है, प्रवाद की पंक्तियाँ हैं, उठती हुई तप्त जल सदृश विकार की नीरी/नदी है तथा दुष्कर्म काम की कलिनी/उत्पन्न करने वाली तरंगिनी/सरिता का प्रवाह है, उन सभी की विधातिनी सेवा है।।27।। सेवा रूपी सरिता में स्नान से विराग शक्ति होती है, धर्मानुराग, परमागम के प्रति श्रद्धा एवं भक्ति भी। आसक्ति, संघ आदि का अभाव तो सद्भावना, कल्याणकारक एवं परमेष्ठि के प्रति कर्तव्यभाव वाली होती है।।28।।

पाएज्ज सेव-मुणि-मंगल-णीर-णंदी अप्पे गिहंगण-पुरे-सयमेव पत्ता।
एगादु एग-सुद-सेव-अरज्झ-साहू साहू त्ति सेव-जगदे इध भासदे सो।।29।।
संघो चरेदि चरियाइ पवित्त-सेवी णेणागिरी पडि जणा तध रण्ण-णेही।
पादारविंद-तण-णग्ग-अणंग-णासी अत्थि त्ति सुत्त-सरणी धरणी सएज्जी।।30।।
अंगाणि-अंग-फुरमाण-पवाह-वाऊ तेजंगणं च परिभासदि दिव्व-अंगी।
दित्तिं णिरोह-अधुणा सइ दित्त-साहूं पादाण पादव-लदा कुणएज्ज छाही।।31।।
उच्चासणे गगण-णील-इणं च दंसे अप्पं च मित्त-परमं मुद-मेह-सुब्भं।
आमंतएदि तुह गच्छ अदित्ति झत्तिं अम्हेहि संग परिसोह-इणं च तत्तं।।32।।
दूरादु दूर-अदिदूर-सयला हि मेहा आताव-मंडल-तलं अवरोहएंति।
सुण्णाहिदा अहिसमागद-साहु-सव्व तिण्हा-छुहादि-विगदा तहा सिंहसीला।।33।।
रण्णे वि मंगल-कदा हवदे ण णादो णादा-विराग-मदि-माणस-बंह-णेत्ता।
सव्वे उवाणह-विहीण-गद्दी पउत्ता सामण्ण-धम्म-परिपालग-संत-मुत्ता।।34।।

सेवा भी मुनि सेवा, मंगलकारी नीरनंदी/गंगा ही है, जो अपने गृहांगन एवं पुर में स्वयं ही आई है। ये अराध्य, सेवा योग्य श्रुत आराधक तो एक से एक हैं। यही उचित है इस जगत् में सेवा के लिए। यह आचार्य श्री का मान है।।29।। संघ चल पड़ता है चर्या के साथ पवित्र सेवा युक्त। नैनागिरि के प्रति जैसे ही वैसे ही अरण्य स्नेही पादप सेवा भावी हो जाते हैं। वे तन से नग्न-निर्ग्रन्थ, अनंगजयी/कामजयी अपने चरणकमल उस अरण्य में जैसे ही रखते हैं वैसे ही अरण्य के पादप पवित्र सेवा भवी हो जाते हैं। सो ठीक ही है जहाँ सूत्र का स्वाध्याय है और जहाँ धरणी ही जिसकी शय्या है वे पवित्र हैं, उनकी सेवा परम सेवा है।।30।। वायु बहती हैं तो पादप एवं लताएँ हिलने लगती हैं, वह उनके अंग-प्रत्यंग को कंपायमान कर देती हैं। वह पवन तेजांगन/सूर्य को कहती हैं हे दिव्यांजी ! अब तो अपनी दीप्ति रोक लें, क्योंकि साधु सदैव दीप्त रहते हैं। हे छाही ! पापद लतादि आप भी पैरों को/नग्न पैरों को आतप न हो ऐसा उपाय करो।।31।। वे पादप उच्चासन पर स्थित नील गगन की ओर दृष्टि करते हैं। इधर पवन भी अपने परम मित्र मुदित शुभ मेघ को आमंत्रित करता है कि आप लोग शीघ्र आओ ओर हमारे साथ ही इनके ताप को दूर करें।।32।। दूर से दूर, अतिदूर, सुदूर आदि सभी मेघ आतापमंडल तल को रोक देते हैं, पर ये इससे अनभिज्ञ, सम में समाहित साधु तो सिंह प्रवृत्ति वाले तृष्णा, क्षुधादि परीषहजयी बने रहते हैं।।33।। अरण्य में भी मंगल कभी हो सकता है? यह किसी को ज्ञात नहीं था, पर जंगल में मंगल ऐसा विरागमति युक्त मानस हंस वाले धवल वस्त्रधारी इसे समझ पाए कि जंगल में कोई भी उपानह/जूते नहीं पहनते हैं, यहाँ रहने वाले मानस/मनुष्य ओर जीवजंतु श्री पादत्राण से रहित विचरण करते रहते हैं। ये उपानह रहित ब्रह्मचारी श्रामण्यधर्म परिपालक साथ में चल रहे हैं, संघ मुक्त-बाह्य परिग्रह से मुक्त।।34।।

पेहे समाहिद-सदा अणुवेहएंति चिंतेति ते पुण पुणो अणुवेहि-सीला।
संसार-सोक्ख-बल-आउ-सदा अणिच्चो णिच्योत्ति आद-समभाव सुसम्म-कीला।।35।।
सुहमसुह-मदीदं संसिए देह लोगं असरण-सरिणीरं वाहए णिच्च-सीलं।
पणसदि गिह-खेत्तं रण्ण-भागे वि लीलं इग-सरण-विसुद्धं आद-सम्मं महिल्लं।।36।।

वे प्रेक्षा में समाहित सदा ही अनुप्रेक्षण करते हैं, वे अनुप्रेक्षी शीला बार-बार चिंतन करते हैं और सोचते हैं कि वे संसार सुख, बल एवं आयु आदि सभी अनित्य हैं। नित्य तो एकमात्र आत्म-स्वभाव है। उसकी सम्यक् कीड़ा ही सम्यक् सम्यक्त्व मार्ग है।।35।। इस संसार में सुख-दु:ख होते रहते हैं, क्योंकि इस शरीर लोक को ऐसा ही कहा गया है। सरिता का नीर निरंतर प्रवाहित होता रहता है, वह असरण है अ-अति, सर-प्रवाहमान ण-नीर-शरण रूकता नहीं। वह जहाँ गति करता है, वह वहाँ गृह-क्षेत्र, अरण्य भाग में भी विनाश उत्पन्न करता है। अत: एक मात्र आत्मा के सम्यक् एवं महत्वपूर्ण विशुद्ध शरण की ओर हमारी दृष्टि हो।।36।।

इति समत्तो पैंतीस विरागो।

छत्तीस-विरागो

जयदु समणो जस्सोत्तुगं विभादि महावदं पद-पद-घणा रुक्खाणं चेव पंति-महापहे।
कण-कण-मग्गे सल्लाण सूल-कंकर-कंकरे विधयदि जणे णिच्चं सरी-विराग-पउम्मगे।।1।।
भासे जणा हि सयला चलमाण-संगे पासाण-कंकर-तिसूल-समो हि अत्थि।
कंटक्क-कंटग-मयो पहुडि त्ति मग्गो किं किं ण सूल-विडले पह-सल्ल-सत्ती।।2।।
अग्गे हि जग्ग-मणुजा परिसोहएंति सोहंतमाण-सयलं च करग्ग-अग्गे।
कुव्वंत-इंगिद-पहं विरमेंति सव्वे अम्हाण बाहर-इमे ण हु साहगा हि।।3।।
लंगोड-देह-जु-मावण-सल्ल-जुत्ता ते खुद्दगा अवर-खुद्दिग-खुद्दिगाओ।
सल्लं च चत्त-सयला पणमेंति सव्व मोणी-मणा हि अणुचिट्ठ-रजा सणा हि।।4।।
पादे ण अत्थि-पद-रक्खग-साहणा हि ते साहगा ण हु चरेंति इगागि-रण्णे।
वासेंति वास-णिलयादु विहीण-मज्झे अच्छण्ण-सम्म-रहिदा हि कुडी-कुडीए।।5।।
णंदा इमे परिपडंति-फलाणि भक्खे रण्णे खणेंति किसि-कम्म-कुणंत-किंचिं।
खुद्देसु भू-परियरेसु वपेंति बीजं पत्तेंति लाह-पसु-आगदं-छिण्णएंति।।6।।

जय है श्रमण, जिसके उन्मत महाव्रत को शोभित किया जा रहा है। प्रत्येक पद-पद पर। घने वृक्षों की पंक्तियाँ लम्बे पथ पर। मार्ग के कण-कण में हैं शल्यों को देने वाले त्रिशूल सदृश कंकर ही कंकर। वे लोगों को घायल करते हैं, पर आज विराग युक्त आचार्य विरागसागर के संघ के आगे पद्म बनते जा रहे हैं।।1।। लोक कहते हैं, साथ चलने वाले कि ये पाषाण, ये कंकर त्रिशूल सम है। काँटों ही काँटों का मार्ग, क्या-क्या कष्ट नहीं देता? यह पथ तो शल्य शक्ति वाला है।।2।।

जैसे ही आगे जाकर लोग मार्ग स्वच्छ करते हैं, अब उन स्वच्छ करने वाले को हसताग्र से संकेत करते हैं जो पथ है, उस पथ पर चलने का कार्य हमारा है। ये बाधक नहीं, ये साधकों के साधक। ऐसा कहते हुए उन्हें रोकते हैं।।3।। लंगोटी युक्त शरीर वाले शल्य सहित मानव हैं, वे क्षुद्रजन हैं, उनके साथ क्षुद्रिकाएँ हैं, जो नारियाँ हैं वे भी क्षुद्र हैं, परन्तु वे अपने शल्य को छोड़कर सभी मोनीमन वाले, धूल धूसिरित उन्हें प्रणाम करते हैं।।4।। ये नग्न पैर-पादरक्षक साध न से रहित, साधक नहीं हैं, ये भी अरण्य में विचरण करते हैं, अरण्य में रहते हैं आवासों से रहित अरण्य के मध्य। छोटी सी कुटियाओं में आछन्न रहित।।5।। ये सभी पुल होते हैं भूभाग पर स्वाभाविक रूप से प्राप्त होने वाले। ये कुछ खेती करते हैं, इस अरण्य में हाथ से खोद-खोदकर-इस क्षुद्र भूभागों पर बीज बोते हैं, कुछ लाभ करते हैं और कुछ आगत पशु छिन्न-भिन्न कर देते हैं।।6।।

आदिल्ल-आदिवणवासि-गिहादु रित्ता चत्ता मुणसिर-पदे णमएज्ज सव्वे।
गच्छेज्ज अम्ह गिह-खप्पर-पूद-किज्जा कत्तुं विराग-परिमाण-सुदं विहीणं।।7।।
किंचि च काल-धरणीइ हि आसणम्हि खुद्दं लहुं मणिमयं चिसमं च भूमिं।
पत्ते इमे पवण-कक्ख-जणा वि सव्वे धीलीधरा धवलिदा धवलेंति वेसिं।।8।।
दुण्णे हि उक्किड-धुडे त्ति इमे जणा वि हत्थग्ग-भूद-मउली मह भत्ति-जुत्ता।
चिट्ठेंति दंस-छवि-पुण्ण-विराग-मुत्ती आराहएंति पद-पंत-पवाल-पोम्मं।।9।।
चाडिक्क-चिक्कचहचंचल-रूक्ख-भागे किंचिं च काल-विरमंत-विराग-धारे।
के के इमे दूध वणे मदि-बाल-वाले मादा हि पुच्छपडिपुच्छ पसंत-जादे।।10।।
एगो कुमार-कलि-कंत-पसंत-मुत्ता बालो पुणो पुण हि पुच्छदि मादु-सुमेत्त-अंके।
तत्तो पभासदि इमाइ सुणेज्ज भंते रेसंदि-णेणगिरि-णायग-भत्ति-सव्वे।।11।।
हं माणुसा मदिमणी मण-छल्ल भावी तेरिच्छ-पज्जय-पही परिदंसएंति।
रण्णे जदा तध चरेंति इमे कुमारे णिग्गंथ-भाव-परमो हवदे हि अम्हे।।12।।
अम्हाण-दोस-अधुणा इध दंसणम्हि णाणीण झाण-परियाण-हवेज्ज बुद्धि।
धण्णा वणागद-इणं परिदंसएज्ज छक्कायजीव-सयला परमत्थ-लाही।।13।।

वे आदि तो आदि हैं, आदि वन में रहने के, वे गृहों से रहित सब छोड़कर आज मुनीश्वर के चरणों में नमित हैं। वे कह रहे हैं - चलिए हमारे गृह खप्पर के। उन्हें पवित्र करने के लिए। हम विराग परिणाम/अत्यंत राग वालों एवं श्रुत-सुनने से रहित को विराग परिणाम दीजिए।।7।। आचार्य श्री कुछ समय धरणी रूपी आसन पर बैठ जाते हैं। वे इस क्षुद्र, लघु कंकरमयी भूमि, विषमभूमि को मणिमय करते हुए बैठ जाते हैं। ये पवनकक्ष (ए.सी. रूम) वाले लोग एवं सभी जन धूलीधरा से धवलित उनकी/मुनिजनों की धवलता को प्राप्त होते हैं।।8।। इधर सभी आदिवासी जन दोनों घुटने के बल, हस्ताग्रभूत मस्तक वाले महाभक्ति युक्त प्रतीत हो रहे थे। वे बैठ जाते हैं, छवि देखते हैं, पूर्ण विरागमूर्ति वाली। वे पद्म प्रान्त युक्त प्रवाल की आराधना करते हों, ऐसा प्रतीत हो रहा था।।9।। जो अब तक वृक्षों के ऊपर चिड़ियाएँ चहचहा रही थीं, वे भी कुछ समय के लिए चुप मानों विराग की ओर ही प्रवृत्त हो जाती हैं। उनके बालमति वाले बालक अपनी-अपनी मातुश्री से पूछते बारंबार कि ये इस वन में कौन है? ऐसा कहते हुए चुप हो जाते हैं।।10।। प्रशान्त, कान्त एवं सुकुमार एक बालक पूछता है, मातुश्री की अंक से लगा हुआ, तब वह कहती है कि हे बाल! सुनो ये रेशंदी-राग से रहित तपस्वी साधकों की नेत्रों को प्रिय लगने वाली गिरि के नायक को सभी भक्तिभाव से दर्शन करने जा रहे हैं।।11।। हम पे मानुष मति रूपी मणि, पर मन में छलभावी आज तिर्यंच पर्याय के मार्गी हैं। इन्हें जब भी अरण्य में देखते हैं इन कुमारों को, तब निर्ग्रन्थ भाव-परमभाव उत्पन्न होता है ओर हम भी उस मार्ग की ओर चल पड़ते हैं।।12।। हम लोगों का दोष 'मायाचार' रहा है, फिर भी इस दर्शन में हमारी बुद्धि ज्ञान-ध्यान आदि की चर्या के इन वन में आगम के प्रति हो रही है। यह छहकाय के समस्त जीव परमार्थ लाभी हो रहे हैं, इसी से हम धन्य हैं।।13।।

चाही इमे हि वणराजि-सदा हि छाहं दाएज्ज अज्ज विणु छाह-मणे हि खिण्णा।
छिण्णणि पत्त-विवहाणि मिणाण-भूदा अस्सूण धार-वहमाण-तणेसु दंसे।।14।।
खण्णे विदिण्ण-पुढवी पुढ-कंकराली कं कुं कुणेमि ण हु संकर-संकराली।
मेह पदंस-पडिदंस-पसण्ण-लाली तं सागदं उवरि होज्ज णयस्सु-वाली।।15।।
देहाण सोह-रजदंक-सुवण्ण-भूसा मणिक्क-कंत-मणि-णीलम-कंस-रत्ता।
धारेज्ज माणव-मणा पसण्ण-भूदा अस्सिं च गच्छचलमाण-सुभत्ति-पत्ता।।16।।
बिंबाणि सव्व-पडिमाइ विणिम्मदा वि पासाण-सुब्भ-कसिणप्पवाल-वण्णा।
अत्थे विराजिद-विराग-छवित्ति जुत्ता पावाद भिण्ण-सुह-सण्ण-पण्णा।।17।।
वाणप्फदीइ बहुमुल्ल-अणेग-रूक्खा सागोण-सीसम-तरू त्ति विसालकाया।
तेसिं च छिण्ण-किदमाण कुणंत-एदे सण्णा- पसण्ण-मणुजा जस-किति-किते।।18।।
बाबा-अणेग-बहुधा कर-लेज्ज-हत्थे मोणाकिदी णयण-णंदि-णिमील-अक्खी।
चिट्ठेंति किं अदिसयं ण कुर्णेति अत्थ सिद्धो गिरी सदमदिं कि पदेज्ज एदे।।19।।

ये वनराजियाँ सदा ही छाया देती हैं छत्त से। आज ये बिना छाया देने वाली मन में दु:खी दिखाई दे रही हैं। ये पत्र-विहीन छिन्न हैं, भिन्न हैं और म्लान भी हैं। उनके आंसुओं की बहती हुई धार शरीर पर स्पष्ट दिखाई दे रही थी।।14।। मुझे खोदा जाता है, विदीर्ण किया जाता है, तभी तो पृथ्वी छिन्न-भिन्न होने वाली हूँ। मैं पृथक्-पृथक् होकर कं कं करती, पर ममेरे से ही बनने वाले शंकर इस पर कुछ भी विचार नहीं करते, अपितु वे तो शंकु ही बना जाते हैं। मेघों को आता देख, देख प्रसन्न होती और अपनी लाली उनके स्वागत हेतु ले जाती हूँ पर उस उनकी लाली भी अश्रुवाली हो जाती है।।15।। इन देहधारी मनुष्यों की शोभा के रजत, सुवर्ण आदि के आभूषण, माणिक्य की प्रभा, विविधप्रकार की मणियों में नीलम, मूंगा, काष्य आदि प्रसन्न होते हैं, वे इस संघ में चलते हुए अत्यंत भक्ति के पात्र कहे जाते हैं।।16।। ये बिम्ब, सभी प्रतिमाएँ निर्मिह हैं, शुभ्र, कृष्ण, प्रवाल आदि वर्ण युक्त पत्थरों से। जौ नैनागिरि में विराजित -विराग की छवि युक्त हैं। यहाँ आकर लोग पायों से रहित शुभ संज्ञा की प्रज्ञा वाले हो जाते हैं।।17।। इस अरण्य में नाना प्रकार की बहुमूल्य वनस्पतियाँ हैं, नाना प्रकार के वृक्ष हैं, सागौन, शीशम आदि के वृक्ष उन्नत एवं विशालकाय हैं। ये मनुष्य उनको कटवाते, फिर अपने घरों की शोभा बढ़ाते हैं। ये कहने को संज्ञा वाले हैं, परन्तु हम संज्ञा युक्त को समाप्त कर रहे हैं, अप्रसन्नता, यश, कीर्ति के कीर्तन वाले ये मनुष्य स्वयं का अहित कर रहे हैं।।18।। इस नैनागिरी पर अनेक प्रकार के बाबा चतुर्विंशति तीर्थंकरों की प्रतिमाएँ हैं, जो मौनवृत्ति वाली हैं, ये नेत्रों को आनंद देती निमीलित आँखों वाली हैं। यहाँ स्थित हैं, फिर भी अतिशय/चमत्कार क्यों नहीं करती हैं। यह सिद्धगिरि हैं, फिर लोगों को सन्मति क्यों नहीं प्रदान करता है?।।19।।

एगिंदिया पुढवि-आउय-तेउ-वाउ वाणप्फदी सुहुम-बादर-काइयाउ।
पज्जत्तयो वि अवरो वि अपज्ज यत्तो फासो त्ति कायबल-आउय-आण-पाणो।।20।।
सण्हे त्ति अत्थि- किसणो पणगो हलिद्दो णीलो त्ति मिट्टियग-लोहिद-सुक्क-पंडू।
सत्ताविहा पुढवि-काइ-खरा-अणेगा रूप्पो सुवण्ण-उवलो रयणा प्पवालो।।21।।
अम्हे वि सण्ण-अवरो तुह सण्णजीवा सण्णी ण अत्थि उवजोग-दुवे हि जुत्ता।
आउत्ति ओस-हिम-सुद्ध-रसोदए वि खीरो वि खार-महि-खट्ट करे त्ति अंबो।।22।।
इंगाल-जाल-असणी घरिसिज्ज-अच्ची मुम्मूर-उक्क-विजु-सुज्ज-अलाद-आदी।
वण्णा-रसाइ बहु-भेद-सहस्स-अग्गी तेउत्ति काइय-इमो मुणएंति साहू।।23।।
पाई-पडीण-पवणो तिरियो गुंजा दाहिण्ण-उड्ढ-अह-झंझ-घणोतणो त्ति।
सुद्धो उदीण-विदिसी-चदुचक्क-वाऊ वाउक्क-उक्कलिय-खंड-मंडी।।24।।
रुक्खाइ गुम्म-लदिगा वलया तणादी गुच्छाइ-पव्वग-लदा हरियादि-वल्ली।
ते ओसहा जलरुहा कुहणा अवि त्ति वाणप्फदीण वण-कंति-पवाल-पंती।।25।।
गुम्मादि-सव्व-हरिदाणि विराग-सूरिं भासेंति अज्ज पहु संत! इमे वि संता।
छिण्णं च फास-फसणं णिय-हेदु पावं मण्णेंति थेय-विणु दाण-पदाण-जोग्गं।।26।।

ये एकेन्द्रिय पृथ्वी, जल, तेज, वायु और वनस्पतियाँ सूक्ष्म एवं बादरकायिक हैं। ये पर्याप्त और अपर्याप्त भी हैं। इनमें स्पर्शन, कायबल, आयु और आन-पान-श्वासोच्छ्वास ये चार प्राण भी हैं। ।20।। पृथ्वी सण्ह और खर दो प्रकार की है। सण्ह/श्लक्ष्ण-कृष्ण, पनक, हरिद्र, नील, लोहित, शुक्ल ओर पाण्डु से सात प्रकार की है। खर पृथ्वी रहत, स्वर्ण, उपल प्रवाल (मूँगा) आदि अनेक रत्न वाली है।।21।। हम भी आहार संज्ञा युक्त हैं, पर आपकी तरह संज्ञी नहीं, फिर भी दो उपयोग युक्त हैं। अप/जलकायिक ओस, हिम, शुद्धोदक, रसोदक, क्षीरोदक, क्षारोदक, महिक, खट्टोदक, करक एवं अम्ल आदि हैं।।22।। तेजस्कायिक भू तो अंकार, ज्वाला, अशनि, घर्षण, अर्चि, मुर्मुर, उल्का, विद्युत, सूर्य, अलात आदि नामों वाली है। जो नाना प्रकार वर्ण, रस, गंध आदि से हजारों प्रकार की हैं।।23।। वायु भी पूर्वी, प्रतीन/पश्चिमी, तिर्यक, गुंजा, दक्षिण, उर्ध्व, अध, झंझावात, घणवात, तनुवात, शुद्धवात, उदीनवात, विदिशावात, चक्रावात, वातोद्भ्राम, उत्कलिका, खंडवात और मंडलाकार आदि वायु है।।24।। वृक्ष, गुल्म, लतिका, वलय, तृण, गुच्छ, पर्वग, लता, हरिय, वल्ली, औषधी, जलह एवं कुहण आदि वनस्पतियाँ वन की शोभा तथा प्रवाल की वृद्धि करती हैं।।25।। ये गुल्क आदि हरित विरागसूरी को कहती हैं आ जा हे संत प्रभु! ये आदिवासी भी संत है, शानत हैं, पर हमारा छिन्न-भिन्न करते रहते हैं परन्तु आप इसके निष्प्रयोजन स्पर्श, बिना दिए आदि को चोरी रूप पाप मानते हैं।।26।। हाँ! हम लोगों ने आदि समय से सिखाया, बोध कराया, पर ये क्षुधा से पीड़ित संत तो नहीं है, ये इन्हें काटकर आजीविका चलाते हैं।।27।।

सिक्खेज्जा आदि-समएण तदा वि सण्णा णो चतएज्ज छुह-संत-इमे छिण्णं।
देसेज्ज माणवमदी अधुणा वि किंचि कुव्वेंति सम्म-सम-संत-पसण्ण-भूदा।।27।।
णिंबुत्त्त'जंबु-बउलो वि करंज-पीलू कोसंब-साल-मुचगो वि पलास-सेलू।
अंकोल्ल-सल्लगि-विभेलग-मालुयो त्ति पुत्तो अरिट्ठ-हरडो जिय-उंब-खीरो।।28।।
अंबाडगो पणस-दाडिम-अत्थिगो त्ति अत्थत्थ-अपमलग-बिल्ल-वडो सिरीसो।
णग्गोह-णंदितरु-पिप्परि-देवदालो छत्तोह-सत्ति-दहिवण्ण-धवो कयंबो।।29।।
वाइंगणो अलसि-आढगि-सल्लगी वि णीली पडोल-बदरो तल-अट्टगी वि।
बाउच्च-वत्थुल-सणो कर अद्द-अक्को भंडी गजी कर-करीर-दूरावणो।।30।।
कोरंट-कुज्जय-कणो कुर-कुंद-कच्छू पीईय-पाण-णवचंपग-मल्लिगा वि।
वासंति-गंथ-मिगदंति ही णवल्ली सेवाल-सेरिय-सिंदुय-जाइ-गुम्मो।।31।।
पोम्मा-असोग-वण-णागदला वसंती सामा वि अंब-अदि-मुत्तग-कुंद-कंती।
कालिंगि-कुद्दगिग-कंक-कुवो वि कारे पूसो-पडोल-पणि-पाव-दे-गुंजा।।32।।
एक्कड्ड-सूंठ-सर-वेत्त-सतो णलो वि इक्खू वि कंक-कुडजो कणगो वि कंका।
कल्लाण-वीरण-विसो वि भमास-चावो वंसो वि वेलु-उदगो सद-पव्वगो त्ति।।33।।

इनमें से कुछ मानवमति उपदेश पाते हैं, हमारी आज्ञा स्वीकार कर लेते हैं तो वे श्रमशील शान्त एवं प्रसन्न बन जाते हैं। अर्थात् सम्यक् श्रम-समत्व मार्ग उन्हें भी संत बना देते हैं।।27।। हम समझाते हैं कि इस अरण्य में वृक्षों में एकस्थिक (फल देने वाले बहुमूल्य) वृक्ष हैं - नीम्बू, बकुल, करंज, पीलू, कोसंब, साल, मुचक, पलाश, सेलू, अंकोल्ल, सल्लकि, विभेतक, मालुक, पुतंजीवक, अरिष्ट, बहेड़ा, उम्बेभरिया, खीरणि एवं जिया जैसे अनेक वनस्पतियों को इकठ्ठा करके अपनी आजीविका चलाए।।28।। इस अरण्य में अम्बाडग, पनस, दाडिम, अत्थिक, अश्वत्थ, आमलक, बिल्ब, वड, शिरीष, न्यग्रोध, नंदितरू, पिप्परि, देववाल, छत्तोह सत्तिषर्ग, दहिपर्ण, धव कदंब आदि बहुबीजक वनस्पतियाँ हैं।।29।। वह समृद्ध हैं अरण्य इन बाबाओं से इसलिए इसमें है वाइंगण, अलसी, आढकी, सल्लकी, नीली, पटोला, बदर, तलपुट, अटमी, बाउच्च, बस्तुल, सन, कर, अर्द्दक, अर्क, भंडी, गजी, कर, करीर ऐदावण आदि भी।।30।। इसमें हैं गुल्म वनस्पतियाँ। आप जानते हैं - कोरंट, कुज्जय, कण-कनेर, कर, कुंद, कच्छू, पीईय, पान, नवचम्पक, मल्लिका, वासंती, ग्रंथि, मृगदंती, जूही, नवमल्लिगा, सेवाल, सेरतक, सिन्दू जाति आदि भी।।31।। पद्म, अशोक, वन, नाग, वासंति, श्यमा, आम्र, अतिमुक्तक, बुंद, कान्ति आदि लताएँ हैं। कालिंगी, कुद्दकिक, कंक, कुवधा, कारेतल, पूस, पडोल, पाणी, पाप, देवदास, गुंजा आदि वल्लियाँ आप लोगों के कारण ही है।।32।। पर्वक वनस्पतियाँ भी एक्कडू सूंठ, सर, वेत्र, शत, नल, इक्षु, कंकावंश, कुटज, कनक, कल्याण, वीरण, विसम, भमास, चापांश, वंश, वेलू, उदय, शतावर आदि हैं।।33।।

आसाढगो अरजुणो कुस-दब्भ-खीरो होत्तिगा-सेडिग-विभंगुप-भत्तियो य।
एरड-कक्ड-सुगो कुरुविंद-होत्ती सिप्पी वि रोहिय-महू त्ति तणा वणी वि।।34।।
तालो तमाल-तितली तरू धम्म-सारो खज्जूर-हिंगुर-हावंग-कदल्ल-पूगी।
जावत्ति-णालियर-केयई-भुज्ज-वच्चो णाणविहा हि वलया वणराजि राजे।।35।।
अज्जोरुहो अमलिसो अवि अज्जयो त्ति पल्लक्क-पाइ-पिपली फणि-पारगो वि।
भज्जार-मण्डू-सरिसो तुलसी भुजो वि भूसो उराल-दमणो सय-पुप्फि-चोरी।।36।।
कंकू कलो वि कुल-कोद्दव-कोद्दु सुंभो गोधूम-मुग्ग-जव-तिल्ल-सणोवि मूलो।
णिप्फाव-रावग-सतीण-मसूर-मंथा साली समा वि वरसामग-बास-बीही।।37।।
कच्छा-कलबुंग-कसेरूग-कोक-कंदो कल्हारगो-कुमुद-पोम्म-उदक्क-पत्तो।
सेवाल-गंधि-सुभगो णलिणो हि सव्वे पोक्खल-ताम-अरविंद-भिसो- भिसो त्ति।।38।।
कण्हू य कण्ह-कडवो तध किट्टि-किट्टिया काओलि-कुंडुरिय-किण्हय-कंद-छीरो।
कण्णी सिउंढि-मुसुंढि-मिहू-अलूगा पाढा-णही मिय-बालुगि-चंडि-दंती।39।।
मासो य मुग्गप-पलुगा हडो त्ति छिण्णो य बीअ-रुह-सप्प-हलिद्द-सिंगी।
मूलो य जीर-बहुला हि वणंप्फदिओ कंदो तणो अवर-वंसादि-संख-संखा।।40।।

आषाढक, अर्जुन, कुश, दर्भ, क्षीर, होत्रिग, सेडिग, विभंगु, भत्तिय, एरंड, कक्षट, शुकवेद, कुरूविंद, होत्रिक, शल्पिक, रोहितांश, मधुर आदि तृण वनस्पतियाँ हैं।।34।। ताल, तमाल, तेतली, धर्मवृक्ष, सार, सारकत्रक खर्जूर, हिंगुर, लवंग, कदली, पूगी (सुपारी) जावत्री, नारिकेर, केतकी, भुजवृच आदि नाना प्रकार की वलय वनराजि इस अरण्य को सुशोभित करती हैं।।35।। अद्यावरोह, अम्लशाक, आर्यक, पालक, पाइ, पिप्ली, फणि, पारग, मार्जार, मण्डुकी, सरसों, तुलसी, भुजनक, भूसनक, उराल, दमनक, शतुपुष्पी एवं चोरक हरित वनस्पतियाँ हैं।।36।। कंगू, कलाय, कुलत्थ, कोद्रव, कुसुम्भ, गोधूम, मूंग, जव, तिल, सन, मूलक, निष्फाव, रालक, सतीण, समूर, मंथा, ताली, समा, वारसामक, बास एवं ब्रीही आदि औषधि वनस्पतियाँ हैं।।37।। कच्छा, कलम्बुका, कसेरूका, कोकनद, कल्हार, कुमुद, पद्म, उदक्क, शतपत्र, सहस्रपत्र, सैवाल, सौगन्धिक, सुभग, नलिन, उत्पल आदि सभी पुष्कर तामरस, अरविंद, भिस, भिसम्णाल आदि जलरूह वनस्पतियाँ हैं।।38।। कृष्ण-कटबू, किट्टि, किट्टिया, काचोली, कंडुरिका, कृष्णकंद, वज्रकंद, सूरणकंद, असकर्णीद्व, सीहकर्णी, शितुण्डी, मुसुण्डी, मिहूत्थु, आलू, मूलक, पाठा, नखी, मृगवालुकी, चंडी दंती आदि साधारण वनस्पतियाँ हैं।।39।। माषपर्णी, मुद्गपर्णी, पालुका, हड, छिन्नरुह, बीजरूह, सर्पसुगंधा, हरिद्रा, मधुश्रंगी, मूला, जीदक आदि नाना प्रकार की वनस्पतियाँ हैं। वे कंद तृण एवं वंशमूल आदि से संख्यात-असंख्यात आदि हैं।।40।।

णयणे णयणे वणराजिणए पमुदंति सदा हि वारिग-पदे।
बहु-आगदए वणवासि-जणा विसणाण चएंति विराग-मणा।।41।।
दिव्यजयज्झुणि णेण-गिरिं सिं मेहघणाणुगदो लह-छत्तं।
भव्व-मणोगद-सूरि-विरागो संघ-मणुजा वि चरेज्ज हि अग्गे।।42।।
रूक्खावली-पत्तल-वामराली ढोल्लंत-लीलं दिव-दिव्वतक्खे।
पक्खीगणा पक्ख-विताण-सीला संदेसएंति प्पपय-ठाण-भागं।।43।।
विराग-हंसा-मणुजा अणेगा णएंति णेणागिरिकूड-मालं।
विलोक्यमाणाणयणेहि तोसा धण्णा कुणंता णिय-अप्पगाणं।।44।।
जयदु जएदु तित्थवर-भस्सरं पादजं विलसिद-पोम्म-विराग-जुगलं जए सिद्धगं।
मणसि विराग-अप्प-सरिसं णए- णंदगं तुह चरणंबु-वंद-गुण-सागरे छंदगं।।45।।

प्रत्येक जन वनराजि को नेत्रों में लेते हैं, क्योंकि उन सभी के मन में नैनागिरि होने पर सदा ये सभी विराग पद पर भी स्थित होना चाहते हैं। अनेक वनवासी जन व्यसनों को छोड़ते हैं ओर विराग मन वाले होते हैं।।41।। नैनागिरि में दिव्य ध्वनि भी जय युक्त घोष के साथ होती है। मेघ भी घनघोर घटाओं के छत्र लिए हुए थे। आचार्य विरागसागर, मुनिसंघ एवं सभी मनुज आगे चलते हैं भव्य मनोगत दिव्य विरागमय ही।।42।। वृक्ष समूहों के पत्र तो चामर बन जाते हैं, वे उन पर ढ़ोरते लीला करते हुए दिव-दिव्य-सूर्य को संकेत करते हैं। पक्षियों का समूह अपने पंखों के वितान युक्त ही जलीय स्थानों के ठंड़ा रखने के लिए संदेश देते हें।।43।। विराग के हंस मनुज अनेकानेक अपनी दृष्टि को नैनागिरि की कूटमाला की ओर ले जाते हैं, जहाँ वे पाते हैं देखते हुए नयनों में संतोष। अपने आपको आनंदित करते हुए धन्य बनते हैं।।44।। वे सभी जय हो, जय हो, तीर्थवरसूर्य रूपी चरणों को बालते हैं। वे पद्मराग प्रफुल्लित हैं अपने पद्मराग रूपी युगल में लीन होने के लिए। जय हो सिद्ध प्रभु की। आप सभी को नन्द/आनंद की ओर ले जाने वाले हैं ऐसा ये सभी मन में अपने सदृश विराग युक्त हैं। आपके चरणारविंद गुणों के सागर छंदों को देखते हुए ही वंदना कर रहे हैं।

इदि छत्तीस विरागो समत्तो।

सेंत्तीस-विरागो

तुं तित्थो तुमसि गुरु तुमेव मग्गी तुं णाणी भुवण-पिदामहो वि सिद्धो।
तुं सल्लो तिसुल-स-कंकरो हि कंको तुं णिच्चं सरसि-सम-विराग-पउम्मे।।1।।
तुम्हे इमे पणद-पत्त-पवाल-रूक्खा मग्गे समागद-सुहंगि-पवाल-मेत्ता।
सव्वे हि कंकर-पहाण-सु-संकरो त्ति आराम-आसय-विहीण-पसंत-पत्ता।।2।।
दाएज्ज तुत्ह सरिसं पध-पत्त-छत्तं मेहासिरी धवल-खे धवलंगि-भूदा।
अम्हेहि संगचरमाण-इमे णदीए धएज्ज णीर-विरदा सरि-पादमूले।।3।।
वासे हिमे सरद-उण्ह-सदा हि काले एसा कला-कल-सुरी वहमाण-सीला।
एव्वाण णीर-दयणी अधुणा हि सुक्खा अस्सूण धार-गद-पावस-रत्त-कीला।।4।।
इत्थेव तत्थ जल-विज्ज गदा इमा दु दीणा णदी पयडिकूट-जणाण कुप्पे।
पासाण-मुत्ति-मुद-कूड-पणम्म-जुत्ता भासेंति दिज्ज-णव-णीर-पदं च अम्हे।।5।।

जय है श्रमण, जिसके उन्नत महाव्रत को शोभित किया जा रहा है। प्रत्येक पद-पद पर। घने वृक्षों की पंक्तियाँ लम्बे पथ पर। मार्ग के कण-कण में है शल्यों को देने वाले त्रिशूल सदृश कंकर ही कंकर। वे लोगों को घायल करते हैं, पर आज विराग युक्त आचार्य विरागसागर के संघ के आगे पद्म बनते जा रहे हैं।।1।। हे नैनगिरि के सिद्ध। आपके ये प्रनत प्रवाल पत्र वाले वृक्ष हमारे मार्ग में आगत ही अपने प्रवाल की मात्र से हमें शुभ अंगों वाला बना गए। ये कंकर रूप पत्थर तो सभी शंकर हैं। इन्हें किसी तरह शंका नहीं। ये तो आराम आश्रय विहीन प्रशान्त ही दिखाई दिए।।2।। आपके सदृश छत्र युक्त बना दिया पथ के वृक्ष के पत्तों ने। मेघों की शोभा धवल थी आकाश में धवलांगी ही अर्थात् धवल मेघ भी छाया देते रहे हैं। वे हमारे साथ चलते हुए नीर रहित नदी और तालाब के समीप तक पहुँचा गए हैं।।3।। जो नदी वर्षा, हेमंत, शरद, उष्ण आदि के समय प्रवहमान कलकल बहती थी, जो सभी के लिए नीर देने वाली थी, वही आज शुष्क है। इसके अश्रुओं का गत पावष/वर्षा की प्रतीक्षा कर रही है।।4।। इस नदी और सरोवर में जल विद्यमान रहता था, पर वह नदी दीन हो गई। वह प्रकृति के क्रूर जनों को कुपित होते कहती है कि इस क्षेत्र में मैं पाषाणवाली पाषाण की बनी हुई मुदित कूट एवं प्रणम्यभूत मूर्तियों के पत्थर बोलते हैं कि हम नवनीर पद की ओर दृष्टि किए रहते हैं।।5।।

संघो विराग-जिण-सासण-पुज्ज-सीलो णीरं विहीण-सरि-उण्णद-पत्थराणं।
किंचिं च णिम्म-णद-अस्सु-पवाहमाणं दाएज्ज रोहदि खणे णवकार-मंतं।।6।।
मेहा विराग-णवकार-अणादि-मंतं सुण्णेंति सासद-सुरेण णमेंति पंतं।
धण्णा इमे अवर अम्ह अणेग-काले इंदं णिवेदण-किदुं तध गच्छएंति।।7।।
सोमल्लमाल-सुउमाल-कुमार-कंती णिग्गंथ-णेणगिरि-णेण-णए णएंति।
कूड व्व मंदिर-सिहा अणुपस्समाणा सव्वे णमोत्थु चरणेसु विराग-मुत्ती।।8।।
पोम्मासको दु अधुणा पउमा विहीणा पोम्मासणे गद-जिणेसर-मंदिरम्हि।
किं पस्स मण-मोद-मिलीण-जादो राजीव-लायेण-जिणिंदणो णिमीले।।9।।
मज्झे त्ति मंदिर-सरोवरए हि-भव्वो सेदू त्ति अत्थि उहए गिरि-पंथ-जोए।
आवास-सुंदर-तधे वि विसाल-माला उच्चे पदे इग-गिरी अवि धम्मसाला।।10।।
णेणागिरिस्स णयणे हि सतीसचंदो तस्सेव पुत्त-चदु-रज्ज-विसेस-सेवे।
एगो वरिट्ठसचिवो अहियारि-देसे पासिद्ध-णीदि-णिउणा विमला वि भज्जा।।11।।
ते अज्ज णत्थि णयणम्हि विसेसखेत्ते आवास-अज्ज-परिखप्पर-जुत्त-मोहे।
आगच्छएंति मणुजा अवि दंसणत्थी विज्जालयं अवि सतीस-सुदंसणेज्जा।।12।।

आचार्य विरागसागर का यह संघ जिनशासन के पूज्यजनों का पूरक है। जो नीर विहीन सरिता के उभरे एवं लघु पत्थरों के लिए कुछ क्षण देखते हैं। वे अश्रु प्रवाह युक्त दिखाई देते हैं। इसलिए संघ के आचार्य णमोकार मंत्र की कुछ क्षण आराधना करते हैं।।6।। मेघ तो विराग से मानो णमोकार मंत्र, अनादि मूलमंत्र शाश्वत स्वर से सुनते हैं, वे उसी समय उस प्रान्त/क्षेत्र में नमन करते हैं। ये सभी धन्य है, हम भी धन्य हुए। वे इन्द्र को निवेदन करने के लिए आगे चल पड़ते हैं।।7।। विराग मूर्ति, सौम्य प्रकृति एवं सुकुमाल कुमारों की कान्ति कूट की तरह उन्नत मंदिर शिखा को देखते हुए निर्ग्रन्थ नैनागिरि के नयन तो नय में अर्थात् एक-एक अंश की ओर केन्द्रित हो जाते हैं।।8।। नैनागिरि पद्म-सरोवर इस समय पद्मों से विहीन पद्मासन पर स्थित जिनेश्वर के मंदिर में जो राजीव लोचन जिनेन्द्र के नयन क्यों नहीं खुल रहे हैं? वे क्या देख-देख मन में प्रसन्नता के स्थान पर म्लानता नहीं ला रहे हैं? ।।9।। सरोवर के मध्य भव्य मंदिर है। उस पर मध्य में सेतु भी है, जो दोनों दिशाओं को जोड़ता है। इसके परिसर में विशाल शालाएँ सुन्दर आवासों से युक्त हैं। जहाँ एक ओर उन्नत गिरी के कूट हैं, वहीं दूसरी ओर उच्च स्थान पर धर्मशालाएँ हैं।।10।। नैनागिरि के नयन में सतीशचंद जैन थे, उनके चार पुत्र राज्य की विशेष सेवा में संलग्न हैं। एक वरिष्ट सचिव (आई. ए.एस.) अधिकारी सुरेशचंद्र देश में विख्यात हैं। उनकी पत्नी विमला विधि विशेषज्ञ भी।।11। वे आज उस नैनागिरि क्षेत्र पर नहीं हैं, फिर भी उनका घर खप्परों का उनकी स्मृति करता है। जो भी दर्शनार्थी आते हैं, वे सभी सतीश विद्यालय को देखते ही उनके पुत्रों पर अवश्य विचार करते हैं।।12।।

संतीइ रम्म-वण-खेत्त-पसंत-भागे राजेज्ज विज्ज-परिणंदण-णंदण व्वं।
सूरी-मुणी बहुजणा इध चिंतएंति सेट्ठो हि कज्ज-णिलए जिण-तित्थ-रम्मे।।13।।
वंदेज्ज वंदण-तडं गिरि-कूड-बिंब पच्छा चरेज्ज वण-खेत्त-पहाण-रम्मं।
एगत्त-रण्ण-अवरा अवि मिट्टि-खेत्ता गोधूम-जो-चलक-खंड-सुदंसणेज्जा।।14।।
चारित्त चारुचरियं परिदंसणत्थं आदीजणा पुरजणा परिधवमाणा।
आगच्छएंति चरणेसु णमेंति सव्वे णिग्गंथ-साहु-समगं समगं अणेगं।।15।।
दाएज्ज णो अवर गंध-समग्ग-चत्ता अब्भिंतरं च बहिरं उहयं अणं त।
ते वीदरागि-पध-गामि-मुणी हि सव्वे रम्मे सुखेत्त-उदए उदयंसु-समा हि भागे।। 16।।
गामस्स पुण्ण-इगवाहि-सरी वि दंसे जो उण्ह-ताव-समए वि पवाह णिज्जो।
सव्वत्थ खेत्त-सम-राजिद-मज्झ-एसो सो केवलं अणुकरेदि हि अच्छरेज्जो।।17।।
गामस्स एगसिहरी सिह-मंदिरो त्ति बंहोरि-हीर-कणगो अदि-रम्म-कंतो।
दूरादु दूर-मणुजा परिदंसएंति तत्तो वियार-मणसे हवदे वरो त्ति।।18।।
गामीण-पंच-मणुजा विविधा हि जादी सव्वे सुहे बिलथरे किसि-कम्म-सीला।
बिप्पावरा बहुधरा रजगा वि कुंभी खत्तिल्ल-णाविद-धणिक्क-जिणिंद-भत्ता।।19।।

इस शान्ति युक्त रम्य अरण्य क्षेत्र के प्रशान्त भाग में नंदन वन की तरह आनंद देने वाला विद्यानिलय श्रेष्ठ है। इस क्षेत्र में इस तरह के कार्य से जिन तीर्थ और अधिक श्रेष्ठ बनता है। सूरी, मुनि एवं यहाँ समागत जन यही विचार करते हैं।।13।। आचार्य श्री एवं समस्त मुनि संघ तलहेटी तथा गिरि के कूट पर स्थित जिन बिम्बों का दर्शन करते हैं। इसके अनन्तर वन भाग तथा खेतों के रम्य स्थल को प्राप्त होते हैं। एक ओर अरण्य और दूसरी ओर कृष्ण मिट्टी के खेत गोधूम/गेहूँ, जौ, चना आदि के कणों से इसकी महिमा गा रहे थे।।14।। निर्ग्रन्थ साधुओं के साथ अनेक लोग भी थे, वे चारित्र की उत्तम चर्या को प्राप्त थे, इसलिए आदिवासी, ग्रामवासी दौड़ते हुए दर्शनार्थ आते हैं और सभी उनके चरणों में नमन करते हैं।।15।। वे कुछ दे नहीं रहे थे, अपितु बाह्य और आभ्यंतर परिग्रह को छोड़कर मानो उन समागत जनों के लिए यही दिखला रहे थे कि जो, वीतरागी पथ के गामी मुनि हैं वे सभी उदयांशु/सूर्य की आभा के सदृश हैं तभी तो उदय के इस ग्राम में उदित रश्मियाँ देने आ गए हैं।।16।। ग्राम के पहले एक प्रवाहिनी छोटा नाला भी दर्शनीय था, जो गर्मी के समय में उष्ण की तपन पर भी बह रहा था जो सर्वत्र क्षेत्र के सम भू-भाग पर सुशोभित बीचों-बीच ही आश्चर्य उत्पन्न कर रहा था।।17।। बम्हौरी ग्राम तो हीरे की कणिका के सदृश अति रम्य एवं कान्त है। ग्राम का एक मात्र शिखर युक्त मंदिर दूर से आगत मनुष्य देखते हैं तो विचार करते हैं कि यह निश्चित ही श्रेष्ठ ग्राम होगा।।18।। ग्रामीण थे विविध जाति वाले। पंच भी, सवर्ण, विलथरे, कृषिकर्मी, विप्र/ब्राह्मण वर्ग, रजक, कुम्भनाद, क्षत्रिय, नाणित, धनिक एवं जिनेन्द्र भक्त भी।।19।।

सेट्ठेसु खाग-पटवारि-मरेय-आदी सिंघे-विया हि पण-पंचय-संख-जुत्ता।
वावार-जुत्त-लहु-गेह-गिहत्थ-कम्मी राजेंति राज-दिग-देस-विदेस-गामो।।20।।
सिक्खे रदा अवर सिक्ख-जगे हि के वि उच्चज्झासील-मणुजाण अभाव-णत्थि।
बेंके हि खाग-परिवार-दुवे हि भादू सिक्खे वियाइ-लणिलेह-दुवे पुरा वि।।21।।
चंदो इगो बहुपवीण-पुरा हि भागो णामं कुणेदि सिरिलंक-विदेस-देसे।
पालिं च पागिद-पुरं अहिलेहि-सीलो पण्णास-वास-अहिगे पुरणाग-सोहे।। 22।।
अम्हेसु एस बहुविज्ज-धणित्ति लालो सो लेहगो हि सदाहिग-गंथगाणं।
भज्जा वि तस्स अदि-विण्ण-पवीण-लेही पुप्फा वि हिंदि-अवभंस-विहा-विहण्हू।।23।।
ताए दुवे हि तणया अहिजंति-सेवी पुत्ती वि ओसह-कलक्खिय-विण्ण-विण्हू।
गामस्स सोह-कुल-भूसण-णंदणा हि सारेज्ज भाणु अणुभासदे तं विरागं।।24।।
एगो पदीव-उदयो उदयो हि अत्थि भो सूरि! सो उदयचंदउगो हि णत्थि।
जो भागचंद-जगदे अदिसंसणिज्जो गोलाइ-पुव्व-सयले उहयो हि सेट्ठो।।25।।
अम्हे सुणेज्ज उदयो कइ-कव्व-सीलो सो पागिदे बहुविहा अहिलेह-कम्मी।
कोसेसु कोस-इमणो पडि-आसु-भासू कव्वे हि वागरण सुत्त-कलप्पवीणो।।26।।

उस बम्हौरी ग्राम के सेठों में खाग सेठ, पटवारी, मरैया, सिंघई, विया आदि के पचपन घर हैं। जो प्रायः व्यापार करते हैं वो भी छोटे घर में ही, इसलिए गृहस्थ कर्मी हैं सभी। फिर भी इस ग्राम का लोगों ने राज्य की हर दिशा, देश और विदेश में नाम किया है।।20।। यद्यपि इस ग्राम के बालक शिक्षा लेते हैं सभी, फिर भी शिक्षा जगत् में नहीं। उच्च अध्ययनशील जनों का अभाव है। खाग सेठ दो भाई बैंक में है। एक विया का वाणिज्य में तथा दो एक ही कुटुम्ब के पुरा विद्या वेत्ता है।।21।। एक चंद्र भागचंद्र पुरा विद्याओं में प्रवीण का इस देश और विदेश में नाम हैं उनकी लेखन शक्ति ने पालि और प्राकृत को पूर्व की तरह इस समय भी प्रतिष्ठित किया है। वे पचास वर्ष से अधिक समय से नागपुर (महाराष्ट्र) की शोभा बढ़ा रहे हैं।।22।। हम सभी में प्रो.भागचंद जैन अनेक विद्याओं के ज्ञाता हैं, वे लेखक हैं शताधिक ग्रंथों के। उनकी भार्या भी विज्ञ है, प्रवीण है और लेखिका भी है। वे पुष्पा जी हिन्दी अपभ्रंश विद्या की विदुषी हैं।।23।। भानुकुमार डॉ. हैं, वे परिचय देते हैं आचार्य विरागसागर को कि ग्राम की शोभा एवं इस खाग कुल की गरिमा प्रो.भागचंद के दोनों पुत्रों से है। वे अभियांत्रिकी अमेरिका में सेवा दे रहे हैं और उनकी पुत्री अंजना डॉ. है एम.बी.बी. एस., एम.डी. अनेक औषधि कला में प्रवीण।।24।। जिस तरह इस जगत् में भागचंद्र का नाम प्रशंसनीय है, उसी तरह उदय भी एक प्रदीप बने हुए इस ग्राम के। हे सूरी! वे उदयचंद ही नहीं अपतु गोलापूर्व समाज के आलोक हैं। भागचंद और उदयचंद दोनों ही गोलापूर्व में श्रेष्ठ शिक्षाविद हैं।।25।। हाँ हमने सुना है, उदय तो काव्यकार हैं। वे प्राकृत में लिखते हैं, बोलते हैं और प्राकृत की सभी विधाओं पर अपने लेखनी चलाते हैं। वे कोशकारों में भी गिने जाते हैं। वे आसु कवि हैं प्राकृत भाषा के। इससे प्राकृत की प्रतिष्ठा हुई। काव्य एवं व्याकरण के सूत्रों की कला में प्रवीण हैं उदय।।26।।

हीरा विसेस-वदणो वि सुरेसचंदो तस्सेव पुत्त-तणई अदिसिक्ख-भूदा।
राजेदि राय-उदयस्स पिऊ वि पाची मादुव्व सम्म-पढणे अवि अग्गणिज्जा।।27।।
सूरी सुणेदि सुण-भाणु-रविं-देसं धण्णा हवेज्ज मुणिणो जिण-मंदिरम्हि।
पासाण-पित्तल-दुवे करउच्च-बिंबं भव्वा-मणुण्ण-मणुहरि-अपुव्व-णंदा।।28।।
णामण णाद-उदयं उदयं ण गामं दंसेज्ज अज्ज परिभासदि सव्व-तेसिं।
ते धण्ण-धण्ण-धणहीण-सिक्ख-अग्गे कुव्वेंति सासण-जिणं पडिसेव्व-सम्मं।।29।।
चादुक्क-कोस-महकव्वय-सोहहा वि खंड प्पबंध-सदगा बहु-अट्ठगादी।
पूजा वि पुज्ज-मुणिवंत-जणाण णेगा णिव्वाह-पागिद-कई पुण णत्थि लेही।।30।।
सेट्ठीसुहा-धरमचंदय-मोदिलालो भत्तीमुणी सिहर-णाणजिदो हि बालो।
सुंदेरलाल-उदयो उदएग-णामी राजिंद-भाउ-लहु-कम्मि-गिहे णिवासी।।31।।
सूरी विराग-सुद-णंद-सदा पमाणी पच्छा चरदि अवि साहगढं सुसंधी।
पस्संत-रण्ण-वण-भाग-दुही अणंतो जो सिंह-चित्तल-गवी मिग-रिच्छ-सुण्णो।।32।।
कूराजणा पयडि-संग-विणासकारी जाणे मुणेज्ज इध किं परमा हि हाणी।
अप्पा समागद-जणाण कुलाल-पादी णो केवलं अवर वारि-वरेण्ण-झारी।।33।।

इधर हरिशलाल, रसनचंद, सुरेशचंद आदि के पुत्र-पुत्रियाँ आधुनिक शिक्षा में कुशल हैं। उदयपुर राजस्थान में रहने वाले उदयचंद की दोनों पुत्रियाँ डॉ.पिऊ जैन एवं प्राची जैन (बी.ई., एम. बी.ए.) हैं। मातुश्री डॉ.माया जैन की सदृश अपने अध्ययन में अग्रणी हैं।।27।। भानुकुमार, रवीन्द्र आदि की वार्ता को आचार्य सुनते हैं। वे एवं सभी मुनिजन मंदिर में प्रवेश करते हैं, वे धन्य होते पाषाण, पीतल आदि की दो हाथ मूर्तियों के दर्शन करके। जो भव्य, मनोज्ञ, मनोहारी और अपूर्व आनंद देने वाली हैं।।28।। नाम से परिचित उदय को, देख रहे हैं ग्राम के अभ्युदय को। आचार्य श्री उन सभी से कहते हैं कि वे धन्य हैं धनहीन, जिन्हें मिला शिक्षा का बहुमूल्य धन-धान्य। वे अग्रणी हैं शिक्षा में। वे जिन शासन की सेवा को भी करते हैं।।29।। आप हैं चार वृहद् कोशों के रचनाकार- प्राकृत के दो भाग, संस्कृत के तीन भाग, संस्कृत-प्राकृत-हिन्दी एवं अंग्रेजी इन चारों भाषाओं के चार भाग सोलह महाकाव्य अनेक खण्डकाव्य, शतक, अष्टक, मुनिवरों की अनेक पूजाएँ जो भी लिखते हैं, वे एक बार लिखते निर्बाध/पुनः नहीं।।30।। काका सेठ सुखनंद, उनके पुत्र धरमचंद, सुन्दरलाल पुत्र मोतीलाल, उदयचंद, राजेन्द्र सेठ शिखरचंद, ज्ञानचंद, अजितकुमार आदि अपने लघु व्यापार युक्त घर पर रहते हैं।।31।। आचार्य विरागसागर श्रुत का आनंद लेते हैं प्रमाणपूर्वक। वे इसके पश्चात् संघ सहित शाहगढ़ की ओर प्रस्थान कर जाते हैं। वे मार्ग में अरण्य के वनस्पति भाग को देखते हुए दुःखी होते हैं क्योंकि जो अरण्य सिंह, चीता, गवय, मृग, रीछ आदि से युक्त था, वह आज इनसे शून्य है।।32।। क्रूरजन प्रकृति के साथ विनाशशील कार्य करेंगे तो वे अत्यंत ही विनाश कर रहे हैं अपना और अपनी आने वाली परम्परा का। वे पैरों पर कुलाल मारने वाले क्या यह नहीं समझ पा रहे हैं इससे न केवल जंगलों को नष्ट कर रहे हैं, अपितु जल स्रोतों को भी हानि पहुँचा रहे हैं।।33।।

रण्णे हि मज्झइग-मोहिल-सुंदरो हि ताडाग-पोम्म-परिणंद-जणाण मोहे।
सो पाद-पक्खलण-हेदु-उवट्ठिदो वि रित्ता-समत्थ-तरलेहि तरंग-अज्ज।।34।।
अस्सिं च छावणि-गिहाण पहाण सेट्ठी काले कराल-विकराल-कधं वहेदि।
तेसिं च सव्व-अवसेस-इगे दुगे हि अस्सूण वाह-वहमाण-रूदाकि-आली।।35।।
महिमोदयस्स मह-मग्ग-दंसगो सुद-सिप्पि-दिट्ठि-सरलो समिदो हि।
पद्म-पंकजं ण कण-कण्ण-कंटगो मह-मग्ग-मुत्त-महि-णंद-संतगो।।36।।

अरण्य के मध्य में/ बीचों-बीच एक मोहक सुन्दर तालाब पद्म परिवार से युक्त लोगों को आनंदित कर रहा है। वह पाद प्रक्षालन के भाव से उपस्थित खाली है, फिर भी आज तरंगित तरंगों से स्वागत हेतु समर्थ हो गया है।।34।। इस क्षेत्र में छावनी थी, जो पाषाण गृहों की श्रेष्ठी युक्त दिखाई पड़ती है। परन्तु काल के विकराल रूप वाली कथा को वह छावनी कह रही है। उसमें भी आज एक-दो अवशेष ही दिखाई पड़ते हैं अश्रुओं को बहाते हुए रूदाली की सखी हो।।35।। महिमा के उदय का महामार्ग दिखलाने वाले आचार्य विरागसागर तो श्रुतशिल्पी हैं, तभी तो सरल दृष्टि एवं समत्व युक्त हैं। वे जिस मार्ग पर चल रहे थे, वह कंकर कणों से युक्त काँटों वाला था। फिर भी महाव्रती का मार्ग तो मुक्त अवस्था का है जो महि / पृथ्वी को भी आनंद एवं शान्त बनाता जाता है।।36।।

इदि सेंतीस-विरागो समत्तो।

अड़तीस-विरागो

जिणवर-पंथि-जगे जणसेट्ठा अदिसय-संत-पदे।
मुणि-मण-एग-विराग-कुंणेज्जा, जय-जय भासवि-साह-गणेट्ठा।।1।।
पमुदिद-वदणा सव्वे अग्गे ते रहुवर-रिसहो दामो णाणो हि।
सणद-विजय-आणंदी कप्पूरो, अजिद-धरम-सीलो बाबू मोती।।2।।
भव्वा-जिणालयपुरी भविगा हि जीवा अत्थि त्ति जो मदगदो विमदो हवेज्जा।
सीलो त्ति सो विमद-सागर-णाम-धेयो सूरी-विराग-सुद-वंत-सदा सुधीसं।।3।।
कुव्वंत-सील-मणुजेसु जणीसु णिच्चं खेत्तादु खेत्तचरमाण-विराग-सीलो।
सामण्ण-धम्म-परिवालग-साहगा वि गामे धुवार-बडागाम-सम-भागे।।4।।
पत्ते पपोरदिसए अदि-संत ठाणे विधिण्ण-खेत्तं-परिमेत्त-जिणालयाणं।
दंसत्थि-टीकमगढस्स पठादि भागे धण्णा हवेंति णद-बिंब-समग्ग-संतं।।5।।
सो पत्त-टीकमगढं तध देसदे वि जत्थेव तत्थ पण-साहस-माणवा।
णेगा विराग-परिणामि-जुदा वि बंही इच्छेज्ज भाव-णद-दिक्ख-विराग-मग्गं।।6।।

शाहगढ़ निवासी जय-जयकार करने वाले एक ही परिवेश में थे। वे मुनियों के मन के एकमात्र विराग को आधार बनाते हैं। ये जिनवर पंथि तो जग में पूज्य है, इसलिए प्रत्येक व्यक्ति अतिशय शान्त संत के पदों में विनयवंत है।।1।। रघुवर प्रसाद, ऋषभचंद, दामोदर सेठ, ज्ञानचंद विल्लईया, सनत, विजय, आनंदी, कपूरचंद, अजित, धर्म, शीलचंद, बाबूलाल एवं मोतीलाल आदि सभी प्रमुदित वदन आगे ही आगे थे।।2।। इस शाहगढ़ में भव्य जिनालय है तभी तो भव्य जीव भी हैं। उनमें जो मद युक्त था, वह भी विमद हो जाता है। सो ठीक ही है, शील तो विमदसागर नाम वाला होता है। उसमें भी आचार्य विरागसागर जैसे श्रुतवंत सदा श्रुत में लीन सुधीश बनाते हैं।।3।। आचार्य विरागसागर घुवारा, बड़ागाँव, समर्रा आदि के अंचलों में विचरण करते विरागशील बनाते श्रामण्यधर्म के परिपालक एवं साधक भी।।4।। आचार्य संघ पपौरा में प्रवेश कर जाता है, जो अतिशान्त स्थान होने से भी मैदानी भाग में फैले जिनालयों का क्षेत्र था। जहाँ पर टीकमगढ़, पठादि से दर्शनार्थी दर्शन के लिए आते हैं। वे समग्र बिम्बों युक्त शान्त क्षेत्र या संतों के क्षेत्र में नत होते हैं। इसी से वे धन्य होते हैं।।5।। वह संघ टीकमगढ़ पहुँचा। जहाँ उपदेश देते हैं पाँच हजार से अधिक मानवों के लिए। उस समय अनेक विराग परिणामी ब्रह्मचारी-ब्रह्मचारिणी दीदीयाँ विरागमार्ग की दीक्षा को व्यक्त करती हैं नत भाव दिखलाते हुए।।6।।

सामित्त-सावग-जणा अणुमोदएंति दाएज्ज दिक्ख-णयरे ण हु चिंत-चित्ते।
णिब्विग्ध-कज्ज-परिपूरण-जूह-वग्गा अग्गे हवेज्ज कर-उच्च-जयं जएज्जा।।7।।
पुप्फो गुलाव-कमलो विमलो जयो त्ति हीरा-कपूर-पमुहो सिरि फूल-बाबू।
णायक्क-णाण-विजयो अजयो जणो वि आहार-खेत्त-परिदंसण-संघ-नच्छे।।8।।
विज्जा विहा विहरएज्ज इधेव अत्थि पोट्टि त्ति मंत-मणि-तंत-कुणंत-सीलो।
राजेज्ज सो अवर किंचि ण भासदे वि सव्वे जणा मुणिमणा वि असंत-संता।।9।।
दिव्वंगणे दिवस-तेज-समो हि संघो आहार-खेत्त-अहिदंसण-पच्छ-अग्गे।
आरण्ण-मज्झ-बहुगाम-णिवेदणं च कुव्वेंति चादु-वसणं चदु-राहणं च।।10।।
आराहणा परम-पावण-संति-दायिणी हि णाणे चरित्त-चरियाइ तवे पहाणे।
मग्गं णएंति रदणत्तय-एग-मेत्तं पत्ते बडामलहरे बहुमाण-णेत्तं।।11।।
भागो सुरेस-धरमो वि विहारि-छोटे णारी-णरा पुरगणा गणवेसजुत्ता।
सड्ढा-विसाल-उदहि व्व जणाण अज्ज खे अंगणे जय जए हि विराग-गुंजे।।12।।

स्वामित्व शाली श्रावक जन इसकी अनुमोदना करते हैं। वे सभी नगर में दीक्षा देने का अनुरोध करते हैं। वे आश्वस्त करते आचार्य श्री आप चित्त में किसी तरह की चिंता न करें। युवा वर्ग भी निर्विघ्न कार्य सम्पन्न कराने के लिए तत्पर है। जो आगे होकर हाथ ऊँचा कर रहे हैं और कर रहे हैं जय जयकार।।7।। उस समय पं. गुलाबचंद पुष्प, पं.कमलकुमार, पं.विमलकुमार सौंरया, जय कुमार, हीरालाल, वैद्य कपूरचंद, फूलचंद, बाबूलाल, नायक ज्ञानचंद, विजय, अजय आदि भी उपस्थित थे। संघ यहाँ से आहार क्षेत्र के दर्शनार्थ चल पड़ा।।8।। आर्यिका विद्याश्री, विधाश्री अपने संघ के साथ विहार कर यहाँ ही थीं, पोट्टी भी मणि, मन्त्र, तन्त्र आदि करता हुआ यहीं स्थित था, वह कुछ नहीं बोल पाया सभी जनों के समक्ष। मुनियों को जो अशान्त था वह शान्त हो गया। मनन की वास्तविकता तो अशांत से शान्त बना देती है। जो संत नहीं, उन्हें भी संत बना देती है।।9।। आहार क्षेत्र के दिव्यांगन में दिवस तेज/सूर्य तेज की तरह संघ उस क्षेत्र के दर्शन करता, फिर आगे अरण्य के मध्य भाग में अनेक ग्रामों के लोग चातुर्मास का निवेदन करते, चारों प्रकार की आराध ना-ज्ञानाराधना, दर्शनाराधना, चारित्राराधना और तपाराधना के लिए।।10। आराधना तो परम पावन बनाती, परम शान्ति देती। वह ज्ञान में प्रविष्ट कराती, चारित्रचर्या और तप प्रधान मार्ग की ओर ले जाती है। रत्नत्रयमार्ग एक मात्र मार्ग है जिसका वही संघ बड़ामलहरा को प्राप्त होता है बहुमान युक्त नेत्रों को।।11। बड़ामलहरा के भागचंद, सुरेशचंद, पं.धर्मचंद, पं.बिहारीलाल, छोटेलाल आदि, नर-नारियाँ, नागरिकजन एक विशेष गणवेश में श्रद्धा रूपी विशाल समुद्र की तरह लोगों का आगमन आकाश मंडल में आचार्य विरागसागर एवं मुनिसंघ की जय-जयकार से गुंजायमान कर देते हैं।।12।।

संझा ललाम-गदिमाण-मुणीण दाए सट्टवमीठ-खजुराह-सलेह-चंदे।
पोम्माणि दंसण-सु णाण-चरित्त-चित्ते पण्णापुरे वि ण हु पण्ण-मणिं च पत्ते।।13।।
एगो विराग-चदुमास-जणेहि भत्ती तत्तो विवाद-परिमंडल-सप्प-सत्ती।
सा लीयदे अवि विभाजि-विसंत-णंती एगो णमोत्थु चरणेसु किसी-णायगो त्ति।।14।।
सोम्मो समो समिद-पुण्ण-णए पविट्ठा हत्थंजली-जुद-जुगे णद-णंत भूदो।
पासाण-एस विमलो विमलासणेणं णव्वे दुवेचरगदो इध विस्समोदो।।15।।
विस्साम-संत-मुणि-साहग-साहणाए जस्सिं च आलय-विराम-गदी परो त्ति।
पादारविंद-गुरु-गारव-दायिणी हि जाणेज्ज पादुग-पदे गुरु-पुण्णिमाए।।16।।
सम्मो गुरु त्ति गुरु-गारव-णेह-कम्मी णाणं च दंसण-चरित्त-तवं मुणेदि।
विग्घं झएदि अवरं सहएदि अप्पं सज्झाय झाण-पडिसंझ-सदा विरागी।।17।।
लोए कुवादि-णिय-कम्म सदा हि लग्गा के साहु-साहग-गुणी ण पयोजणो त्थि।
होस्सेदि एस मणुजाण मणे वि छाही तं वारणं च समणं अदि-दुक्करो त्ति।।18।।

इन गतिमान मुनियों के लिए सन्ध्या की लालिमा भी सुखद वातावरण देने उपस्थित हो जाती है। तभी तो सटई, बमीठा, खजुराहो, सलेहा, चन्द्रनगर आदि में दिव्यांशु के पश्चात् चन्द्र समशीतल बनाते हैं। दिव्यांशु से पद्म खिले दर्शन, ज्ञान और चारित्र के। वे अब पन्ना नगर में पन्ना मणि/ पद्मराग मणि नहीं चाहते, अपितु पण्ण/प्रज्ञा की मणि शोभा कान्ति को प्राप्त करते हैं।।13।। भक्ति अपूर्व होती है लोगों की, जो चातुर्मास को लेकर उपस्थित होती है। लोगों के द्वारा विराग की कामना, फिर भी विवाद का क्षेत्र भी सर्प की शक्ति/ सर्प की पुकार से रहा था। वह समाप्त होता है, विश्रान्त पाता है। विश्रान्तक्षण वाला कृषक आचार्य श्री के चरणों में वंदना करता है।।14।। वह सौम्य सम/चन्द्र सम, समत्वपूर्ण नय में (मार्ग में) स्थित हस्तांजलि युगल, युगल चरणों में नत अनंत युक्त - ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप और वीर्य युक्त है। कृषक कहता है कि यह पाषाण पवित्र हुआ, आचार्य विमलसागर के आसन से। जब 1992 में विचरण करते हुए यहीं उन्होंने विश्राम लिया।।15।। आज गुरु पूर्णिमा है उस चरण पादुका के चरणों में गुरु गरिमा को समझा। वे पादारविंद जन आस्था के केन्द्र गुरु गौरव को देने वाले हैं। जहाँ पर आलय विराम में गति लगाता है चतुर्गति के कारणों पर विराम लगाता है, उससे अन्य गति विराम गति-सिद्ध गति संतों, मुनियों, साधकों आदि की साधना का विश्राम होता है।।16।। गुरु-उत्तम गुरु तो गौरवशील है, स्नेहकर्मी होते हैं। वे ज्ञान, दर्शन, चरित्र और तप को करते हैं। दूसरे की बाधाएँ दूर करते हैं और स्वयं उपसर्ग सहन करते हैं। प्रति सन्ध्या स्वाध्याय एवं ध्यान में लीन सदा विराग होते हैं।।17।। लोक में कुवादी अपने कुचेष्टा में लगे रहते हैं। उन्हें कौन साधु, कौन साधक या कौन गुणी है? इससे कोई प्रयोजन नहीं रहता। मनुष्यों के मन में यह बात आएगी ही। अतः उसका वारण/निवारण एवं समाधन करना अत्यंत कठिन है।।18।।

जे पण्ण-बुद्धि-जगदे समणं च धम्मं रक्खेज्ज पुव्व-अधुणा अवि णो हि संका।
तेहिं च अत्थि बहुमाण-पमाण-लेहो मग्गे समागद-विवाद-अवस्स-संतो।।19।।
संतीइ पफूल-जय-णिम्मल-सेय-सेट्ठी सेयंस-कप्पुर-कपूर-पदीव-रवि त्तो।
णिंदेज्ज बंहचरियं च पदं ण हु सम्म-सोहे साहू त्ति साहु-णिय-कम्म-कुणंत-अज्ज।।20।।
पामण्ण-जेण-गजटे तइवीसय-अक्टू दो साहसे तय तध अडरेह-णबंवरम्हि।
सेयो समाहण-गओ जण-वोहणं च मज्जाय-साहु-गरिमा अदि-गारवं च।।21।।
देविंद-सण्णिगड-सेय-गिदी-तधेव चादुम्महि त्ति जण-पेरग-आगमण्णं।
संठाविदूण सुद-मंथण-वायणं च सव्वत्थ णंदय-विराग-मदिं पदेज्जा।।22।।
अस्सिं पुरे इग-वदी पडिमा हि सत्ती देविंदगाम-जण-माणस-धम्म-णेट्ठी।
सा अत्थि सत्ति-विरदा वि विराग-भावी सेयंस-सेय-दुव-साहस-खुल्लिगं च।।23।।
पच्छिल्ल सा अणुगहेदि अज्जिगत्तं सल्लेहणं च समहिं च विहिं पत्ते।
आसीस-जुत्त-इणमा वि वियोग-मादू सुत्ताणि पूज-सहसेण सुणंत-अज्जी।।24।।
विंझा-विद सिरि-विसोह-विवोह-अज्जी सेवं कुणेंति जिणसुत्त-सुणंत-णिच्चं।
ताए वि सव्व-परिवार-जणाण इच्छे पादप्पहाण-छदरिं परिणिम्मएज्जा।।25।।

इस जगत् में जो प्रज्ञा बुद्धि वाले होते हैं वे श्रमण धर्म की रक्षा करते हैं। वे पहले भी और आज भी कर रहे हैं। इसमें किसी तरह की शंका नहीं। जो बहुमान, प्रमाण युक्त होते हैं। उनके द्वारा मार्ग में आगत विवाद अवश्य शान्त किया जाता है।।19।। शान्ति प्रयास में प्रो. प्रफूलचंद, डॉ. जयकुमार, निर्मल कुमार सेठी, श्रेयांसकुमार, कपूरचंद घुवारा, डॉ. कपूरचंद खतौली, प्रदीप कासलीवाल, रविसेन आदि निंदा प्रस्ताव लाकर ब्रह्मचर्य पद को अशोभनीय कहते हैं। वे आधुनिक युग में साधु तो साधु की क्रिया करते हुए विचरण कर रहे हैं।।20।। जैन जगत् के प्रामाणिक जैन गजट में 23 अक्टूबर 2003 एवं 18 नवम्बर 2004 को इसका समाधन जन चेतना का कारण बना। जिसने अपनी मर्यादा स्थापित की। साधु की मर्यादा से गरिमा बढ़ती है जो अति गौरव को भी प्रदान करती है।।21।। देवेन्द्र नगर के समीप श्रेयांसगिरि हैं, जहाँ पर आचार्य श्री के 2002 चातुर्मास में जन प्रेरक आगमों की आज्ञा को स्थापित करने के लिए श्रुत मंथन और वाचना को महत्त्व दिया गया। इससे सर्वत्र आनंद हुआ और लोगों की मति विराग-भाव की ओर बढ़ने लगी।।22।। देवेन्द्रनगर में एक प्रतिमाव्रती, धर्मनिष्ठ, जनमानस में प्रसिद्ध महिला विरागभावी थी, वह शक्तिहीन भी श्रेयांसगिरि में 2002 में चातुर्मास में क्षु. दीक्षा को प्राप्त हुई।।23।। क्षुल्लिका के पश्चात् वह आर्यिका पद को प्राप्त हुई। शीघ्र ही सल्लेखना युक्त समाधि विधि को प्राप्त हुई। वह आचार्य के आशीष से युक्त अनेक सूत्रों को सुनने वाली आर्यिका वियोग श्री माता जी नाम वाली थी।।24।। इनकी सेवा में विन्ध्यश्री, विबोधश्री, विद्वत्श्री, विशोधश्री, आदि आर्यिकाएँ जिन सूत्र सुनाती हुई नित्य सेवा करती हैं। उनके सभी परिवारजनों की पादचिन्हों की छतरी की थी, जो उसे बनवाते हैं।।25।।

णेगा-णियामग-गुणागम-कज्ज-भावी सूरी विराग-परमागम-सुत्त-गामी।
अस्सिं णगे णग-अणेग-सुपेरगो हि सोवाण-मग्ग-सद-तिण्णि विसेस-णिम्मे।।26।।
चोव्वीस-पंगण-पयार-दुवार-बिंबं सेयंस-बाहुबलि-मंदिर-माण-थंभं।
जत्ती णिवास-विमलाइरियस्स छत्तं धम्मत्थसालय-सुकीलग-खेत्त-आदिं।।27।।
दो साहसत्तय-महे गज-उच्छवो वि कल्लाण-पंच-सगए इगवीस-काले।
एलक्क-दिक्ख-पण-जादि विणिच्छचल्लो विस्सो विसेस-वि विस्स-एसो।।28।।
इदि विमल-पही आचार-दिव्वाणुभावी किद-जण-उवयारं सुत्त-दिव्वाणुदेसं।
पउदिण पडि-णंदं आद-गंगप्पवाही चरिद णियय-संघेणं सहे गामाणुगामी।।29।।
विरहिद-माण-मच्छर-ममेदं परम-सुसुत्त-आगम-सुलेहं।
कुण करमाण-विराग-पदेगं अणुगण-बंह-बंहि-बहुणेहं।।30।।

आचार्य विरागसागर अनेक नियम, गुणात्मक कार्य वाले परमागम सूत्र मार्गी थे। इसलिए आपने श्रेयांसगिरि पर्वत पर अनेक प्रेरक कार्य सम्पन्न करवाए। गिरि मार्ग पर जाने के 300 सोपान विशेष रूप से निर्मित कराए गए।।26।। यहाँ पर चौबीसी प्रांगण, दीवार, चारों ओर द्वार, श्रेयांस, बाहुबलि मंदिर मानस्तम्भ आदि को बनवाया गया। यहाँ यात्री निवास, आचार्य विमलसागर की चरण-पादुका की छतरी, धर्मशाला एवं उत्तम क्रीड़ा स्थल आदि को भी महत्त्व दिया गया।।27।। सन् 2003 को गजरथ महोत्सव भी पंच कल्याणक समय पर हुआ। सन् 21.02.2003 को दीक्षा कल्याणक को पाँच ऐलक दीक्षाएँ हुई। क्षु.विनिश्चल- ऐ.विनिश्चल, क्षु.विश्वरत्न - ऐ.विश्वरत्न, क्षु. विनीत - ऐ. विशेष, क्षु. विश्वस्त - ऐ. विश्वस्त और क्षु. विश्वेश - ऐ. विश्वेशसागर हुए ।।28।। इस प्रकार वे आचार्य विमलसागर के पथगामी, आचार की दिव्यता के अनुगामी जन-जन का उपकार करते तथा सूत्रों के रहस्य का भी ज्ञान कराते हैं। वे प्रतिदिन आनंद की ओर अग्रसर आत्म गंगा के प्रवाही अपने संघ के साथ गामानुगामी बने रहते हैं।।29।। आप नहीं रखते मान, मात्सर्य एवं ममत्व को। आप तो परमागम उत्तम रचना को करते अपने हाथों से एकमात्र विरागपद की अभिव्यक्ति को। इसलिए तो अनेक ब्रह्मचारी एवं ब्रह्मचारिणी नाना प्रकार की प्रवृत्तियों को प्राप्त होते हैं।।30।।

इदि अड़तीस विरागो समत्तो।

उणचालीस-विरागो

तुं सिद्धंत-परम-पवित्तमेव झाणं तुं आगार-रद-रदणत्तमेव पाणं।
गच्छेज्जेज्ज चरण-चरित्तमेव भाणं सज्झायं धवल-जय-सुसुत्त-णाणं।।1।।
वत्थुं चित्तेज्जं खजुराहो खजु राहो देसे विद्देसे पहुभावं पहुभावं।
दाएज्जा णेज्जा णयणाए मदणाए अब्भितेज्जाए परमत्थाए सदणाए।।2।।
अज्जेव सिप्प-चिदचित्तिद-अंकिदा हि अच्छेर-भाव-मणुजेसु कुणेंति णिच्चं।
अच्छिज्ज अच्छसर-णिच्च-तरंगणेज्जं भावंगणा हि सयएग मण-मोदएज्जं।।3।।
पत्तेग-देव-णिलए बहि भंगिमाए कामग्गि-कारि-भव राग-विकारि-दिट्ठिं।
अंते गदे हि मणुजा वि विराग-मुत्ती जाएज्ज णिच्छउभए ण हु अण्णध हिं।।4।।
संघो वि तं दरिसणिज्ज-पदेस-मुत्तो देविंद-पण्ण-णयरं-अवि चंद-भागं।
वम्मीठ-पंत-बहुगाम-चरंत-सम्मं पत्ते पुरे छवर-छत्ततए हि दिण्णं।।5।।

आप हैं सिद्धान्त के परम पवित्र रहस्य को प्रतिपादित करने वाले, आप हैं रत्नत्रय रूपी आगार में रत, उसी का पान करने वाले। आप चारित्र की चर्या को प्रतीत कराने के लिए एक गच्छ से/एक ग्राम से दूसरे ग्राम की ओर चल पड़ते हैं, उस स्थलों पर आप धवल, जय धवल आदि के ज्ञान सूत्र के स्वाध्याय को आधार बनाते हैं।।1।। खजुराहो की वास्तुकला खजुराहों जो आगंतुकों के चित्त को वशीभूत कर लेती है। देश एवं विदेश से समागत जन इसकी अनुपम कला की प्रशंसा करते हैं। वे उसकी बाहरी शिल्प की मदना सृजनता को अपने नेत्रों में समाहित करते हैं और आभ्यंतर में जाते हैं। परमार्थ के सदन में प्रवेश कर जाते हैं।।2।। हजारों वर्ष से भी आज तक शिल्प, चित्रकारिता आदि जो खजुराहो में बनाई गई वह अब भी लोगों में आश्चर्य भाव उत्पन्न करती है। साक्षात् अप्सराओं के नृत्य, तरल चंचल अक्षियों के भाव लोगों को तरंगित करते हैं। उनकी सभी भावनाएँ या अंगनाओं की भाव भंगिमा सभी तरह मन को प्रभावित करती हैं।।3।। प्रत्येक देवनिलय के बाहरी भंगिमा में लोग पाते हैं कामाग्निकारी भाव, संसारराग एवं विकारमयी दृष्टि को। वे ही मनुष्य आभ्यंतर में प्रवेश करते ही पाते हैं विरागमूर्तियाँ/वीतरागी की आकर्षक मुद्रा। इसमें निश्चय ही दोनों भाव उत्पन्न नहीं होंगे क्या? अन्य भाव कैसे हो सकते हैं।।4।। संघ उस दर्शनीय प्रदेश से मुक्त देवेन्द्रनगर, पन्ना, चन्द्रनगर, बमीठा आदि अनेक ग्रामों में अच्छी तरह विचरण करते हुए छतरपुर को प्राप्त हुए, जहाँ तीन छात्र-ज्ञान, दर्शन एवं चारित्र की छाया प्रदान की।।5।।

डेरापुरे मलहरे गिरिदोण-खेत्ते गामे बडे वि भगवे बहुगम्म-सुत्ते।
दाए विराग-जुव-जोव्वण-जोव्वणीए णाणा-अरण्ण-अवणिं खुरइं च वीणं।।6।।
बीणा सुरम्म-परिखेत्त-सुधण्ण-पुण्णा गोधूम-गोधण-धणी किसि-कम्मि-धण्णा।
सव्वत्थ जंत-विहि-टेकटरादि-जण्णा पण्णा गुणी उदय-सिक्खय-वंसि वण्णा।।7।।
णत्थि त्ति विज्ज-विहि-अज्ज विणाण-धरा सेट्ठीमणा धणधणा पुर-सक्किोदं च।
खीएज्ज किं ण कुणएंति विराग-घादं मे माण-माणसमदी इध कोसदे हि।।8।।
भत्ताजणा मुणिमणा वि विराग-सूरिं पत्तेज्ज अज्ज किद-किच्च भवा हि अग्गे।
सम्माणुसासण-गदा गुरु-माण-दिण्णं चिट्ठेज्ज हत्थवर-अंजलि-पोम्मजुत्ता।।9।।
बीणाइ बीण-झुणि-विस्स-जिओ वि भूदी वित्थी वि विस्स-धरमो अवि संति-जोदी।
सेयंस-सेल-सम-आगद-विंझ-विवोह-मोही विस्सास-विण्ण-विजिदा वि विजुत्त-जुत्ता।।10।।
एल्लक्क-विस्स-रदणो विजयो विसोगो विस्सत्थ-विस्सइ विणिच्चलो त्ति।
कुंदो-विभद्द-विसुदो य विसारदो वि खुल्लग्ग-विस्स-बहु-भूस-जुत्ता।।11।।

डेरा पहाड़ी, बड़ा मलहरा, द्रोणगिरि, छोटे-बड़े ग्राम होते हुए भगवाँ, बड़गाँव आदि में सूत्रों का जो दान दिया, वह युवाओं, युवतियों में विरागभाव देने में सक्षम हुआ। संघ ने नाना अरण्य की भूमि को स्पर्श किया खुरई और बीना को चल पड़े।।6।। बीना अति सुरम्य धन्य से पूर्ण स्थल है, जहाँ गोधूम/गेहूँ की अधिक पैदावार होती है, जिससे यहाँ गोधन से धनी कृषि कर्मी भी धन-धान्य से समृद्ध हैं। यहाँ आधुनिक यंत्रविधि टेक्टर आदि साधन से कृषि की जाती है। यहाँ नाभिनंदन विद्यालय है जहाँ रचनाकार उदय का शिक्षण कार्य हुआ। यहाँ के बंशीधर व्याकरणाचार्य जैसे प्रज्ञ जन सर्वत्र प्रशंसनीय हैं।।7।। वह पुरा विद्या, पुरा संस्कृति का स्थान नहीं रहा, अब तो आ गई विज्ञान की धारा, धनार्जन की दृष्टि सो ठीक है। श्रेष्ठमन तो धन-धान्य वाला ही होता है। इससे वे क्या अपना मान, मानसिक दशा सुरक्षित रख पा रहे हैं? अपितु नहीं। वे तो विराग का घात कर रहे हैं। मैं एवं मेरी मति इस क्षेत्र में आते ही कोसने लगती है।।8।। भक्तजन, मुनिमन वाले, सम्यक् अनुशासन युक्त उत्तम अंजलि रूपी पद्म वाले आज कृतकृत्य हैं। वे आचार्य विरागसागर के श्री संघ को अत्यधिक मान दे रहे हैं।।9।। श्रेयांसगिरि से आए और बीना में प्रवेश कर गए आचार्यश्री एवं श्री संघ के विश्वजीत सागर, विश्वभूतिसागर, विहितसागर, विश्वलोचन, विश्वशान्ति, विश्वधर्म, विश्वज्योति आदि मुनि बीन ध्वनि युक्त ही आए। आर्यिका विन्ध्यश्री, विबोधश्री, विमोहश्री, विविक्तश्री, वियुक्तश्री, विजेताश्री, विद्वत्श्री, विशोधश्री, विश्वासश्री आदि का भी बीना में प्रवेश हुआ।।10।। ऐलक विश्वरत्नसागर, ऐ.विजय, ऐ.विशोक, ऐ.विश्वेश, ऐ.विनिश्चल, ऐ.विश्वस्त सागर, आदि तथा क्षु.कुन्दकुंद, क्षु.विभद्र, क्षु.विनेय, क्षु.विशारद, क्षु.विश्वमूर्ति, क्षु.विश्वभूषण, क्षु.विश्रुत भी उपस्थित हुए बीना में।।11।।

भोवाल-खेत्त-उवसंघ-विसुद्ध-संतो विस्सो मुणी विसदो रहलीइ सीलो।
बीणाइ विस्स-मुणि-पुज्ज-विणम्म-एलो क्षुल्लो विधेय अणुअग्गभूदी।।12।।
जाबल्ल-साहु-विहवो वि विवेग-खुल्लो विम्मस्स सागर-विणग्घ-सदण्ण-संतो।
पुज्जो विहास-मुणि-एलभ विकस्स-राजे उज्जेणसाहु-विमदो रदणो वि खुल्लो।।13।।
अज्जी विसा विपसणा य विभा गाले विण्णासिरी विणद-गाम-बडे विराजे।
विण्णा-विसिट्ठसिरि-अज्जि-विभूदि-रत्ता अज्जी विणीद-विजया-सिलवाणि-पत्ता।।14।।
कल्लाण-पनंचविहि-काल-अणेग-विण्णा बीणाइ खेत्त-परिराजिद-सम्म-धम्मे।
सज्झाय-झाण-तव-भावण-सुत्त-णंदे सव्वे विरागि-भगिणी तध भदु-बंही।।15।।
इच्छेज्ज बंहवद-सावग-साविगाओ तं देसदे परममंगल-पाढ-सव्वं।
सुद्धप्प-सुद्ध-परिमंडिद-साहु-संघो तिक्काल-जोग-अणुजोग-सुसुत्त-बज्झे।।16।।
अस्सिं विसाल-सिरि-संघ-पुणीद-भावे अण्णण्ण-साहग-जण परिवेदएंति।
ते के परिक्खण-विहिं अणुसासणं च किं पत्तिहिंति इध सोह-विसेस-कुव्वे।।17।।
मे मे गुरुत्ति पढमो अमुगो अहेसि एदेण भीद-करणेण विवाद-मुत्तो।
एसो सदा हि समए समए पउत्तो सुत्ताण सुत्ति-णिलयाहिसठाण-अम्हे।।18।।

भोपाल से मुनि विशुद्धसागर, मुनि विश्रान्तसागर, मुनि विश्ववीरसागर, रहली से मुनि विशद्सागर, मुनि विश्वशीलसागर बीना में उपस्थित थे पहले से ही मुनि विश्वकीर्ति, मुनि विश्वपूज्य, ऐ.विनम्रसागर एवं क्षु.विधेयसागर आदि।।12।। जबलपुर से मुनि विभवसागर, क्षु. विवेकसागर, सतना से विमर्शसागर, मुनि विनर्घ्यसागर, राजनांदगाँव से विहर्षसागर, ऐलक विकर्षसागर तथा उज्जैन से मुनि विमदसागर और रत्नकीर्ति क्षुल्लक भी आए।।13।। आर्यिका विशाश्री, विभाश्री, विपश्यनाश्री ग्वालियर से, विज्ञाश्री, विनतश्री बड़ागाँव से, विशिष्टश्री, विदुषी श्री, विभूति श्री, विजयश्री, विरक्तश्री, विनीतश्री, विनेताश्री तथा क्षुल्लिका विधाताश्री आदि सिलवानी से आई।।14।। बीना में पंचकल्याणक के समय अनेक विद्वानों का समागम होता है। इससे यह क्षेत्र धर्म की उत्तम भावना से पूर्ण होता है। यहाँ स्वाध्याय, ध्यान, तप भावना आदि के साथ सूत्र ग्रंथों एवं विरागी भाई-बहिनों एवं ब्रह्मचारी-ब्रह्मचारिणियों आदि सभी की भावना पर विचार किया जाता है।।15।। श्रावक एवं श्राविकाओं को ब्रह्मचर्यव्रत पालन के लिए मंगल पाठ दिया जाता है। संघ के सभी साधक शुद्धात्म के शुद्ध क्षेत्र में लीन तीनों समय जहाँ योग निग्रह को महत्त्व देते वहीं पर अनुयोग-चारों अनुयोग- प्रथमानुयोग, चरणानुयोग, करणानुयोग और द्रव्यानुयोग के सूत्रों की ओर प्रवृत्त होते हैं।।16।। इस विशाल श्रीसंघ के पुनीत भावों के प्रति अन्य संघों के साधकजन भी आते हैं और आचार्यश्री से निवेदन करते हैं। वे उस समय परीक्षणविधि और अनुशासन की पद्धति क्या है? इस पर विचार करते हैं तथा वे इस विषय पर विशेष दृष्टि करते हैं।।17।। आचार्य श्री यह भी चिंतन करते हैं कि अन्य संघ से समागत ब्रह्मचारी-ब्रह्मचारिणी आदि कहेंगे कि पहले मेरे गुरु अमुक थे, इस भय से रहित विवादमुक्त सदा ही समय पर समय/सिद्धान्त में लीन रहते हैं और सोचते हैं कि हमारा स्थान तो है सूत्रों के सूक्ति रूपी निलय।।18।।

गुत्तीइ गुत्त-समणो सयला हि जोगे सो काय-जोग-अणुचिट्ठिद-रोग-रोहे।
जत्तो दु सो तध विरोग-कदा णो णायो उस्सग्ग-जुत्त-अणु-आहि-विहीण-पत्तो।।19।।
सम्मं सहेज्ज अणगार-विराग-मुत्ती सूरी अवि त्ति अविराम-रदे हि झाणे।
आराहएंति अणुपेहण-पेहणं च आदा-विसुद्ध-परिणाम-समत्त-सीलं।।20।।
पच्छा चरेदि खिमलास-अणेग-गामे चांदे जहाजपुर-आदि-पयंत-पंते।
देवेगढे वि जखलोण-पउत्तमाणे पत्तेदि सो वि ललिदंपुर-खेत्त-पाले।।21।।
धम्मीजणा सयल-सावग-साविगाओ सूरिं विराग-तिरि-संघ-पवित्त-पादे।
णम्मा णमोत्थु उवसंत-मणेहि अज्ज धण्णा कुर्णेति णिय-जम्म-जरं च वाहिं।।22।।
अत्थेव गोट्ठि-मुणि-दिक्ख-सुजोयणं च भत्तामुणीण पियचंदय उत्तमो हि।
संयोजगत्त-परिमाण-विसेस-जाए उण्हे त्ति अक्खद-तिही-परिपूजणं च।।23।।
सेयंस-सीदल-जयो विमलो णिहालो फूलो गुलाव-सणदो हि विणोद-रमेसो।
कप्पूर-जोदि-कमलो उदयो सुरेसो बाबू-दया-विजय-सेहर-वड्ढमाणो।।24।।
दिक्खा हवेदि विहि-पूजण-आदि-सव्वे पण्णा-सहस्स-जणसागर-सक्खिगा वि।
साहू विणम्म-विजयो वि विकस्स-विवेगो विस्सेस-विस्सय-विसोग-विणिच्छ-सोगो।।25।।

श्रमण तो गुप्तियों से गुप्त रहने के लिए प्रयत्नशील होते हैं, फिर भी जब तक काययोग रहता है, तब तक रोग नहीं हटते। रोग कब हटेंगे यह ज्ञात नहीं? इसलिए उपसर्ग एवं अनेक प्रकार की आधि-व्याधि आती रहती है, उससे दूर नहीं हो पाते हैं।।19।। विरागमूर्ति अनगार आदि रोगदि उपसर्ग को अच्छी तरह सहन करते हैं। आचार्य विरागसागर भी निरंतर ध्यान में रत अनुप्रेक्षाओं पर दृष्टि रखते हैं और आत्मविशुद्ध परिणाम स्वरूप समत्व एवं शील की आराधना करते हैं।।20।। बीना के पश्चात् खिमलासा आदि अनेक ग्रामों, चांदपुर, जहाजपुर आदि छोटे-मोटे भागों, देवगढ़, जखलोन होते हुए श्रीसंघ ललितपुर के क्षेत्रपाल स्थान पर पहुँचा।।21।। समस्त धर्मीजन, श्रावक-श्राविकाएँ तो आचार्य विरागसागर एवं उनके मुनि संघ के चरणों में नमोऽस्तु करते हैं उपशान्त मन से। वे उससे आज धन्य करते अपने जन्म, जरा आदि व्याधियों को।।22।। ललितपुर में विद्वत् गोष्ठी एवं मुनि दीक्षा के समायोजक मुनि भक्तों के प्रिय पं.उत्तमचन्द्र 'राकेश' थे। इसी समय अक्षय तृतीया आदि विशेष पूजन जैसे कार्य भी हुए।।23।। संगोष्ठी में उपस्थित थे श्रेयांस, शीतल, जयकुमार, विमलकुमार, निहालचंद, फूलचंद, गुलाबचन्द 'पुष्प', सनत, विनोद, रमेश, कर्पूर चन्द ज्योति, कमलकुमार, उदयचंद (रचनाकार), उदयचन्द (सर्वदर्शनाचार्य), सुरेश, बाबूलाल, दयाचन्द, विजयकुमार, शेखर जैन, वर्धमान सौंरया आदि।।24।। साधु बने विनम्र, विजय, विवेक ही जिसका विकर्ष है, विश्वेश, विश्वरत्न, विनिश्चल, विशोक सागर आदि। साक्षी थे पचास हजार जन समूह का सागर। जब हुई दीक्षा विधि एवं पूजन आदि सभी।।25।।

खुल्ली विधय-सिरि-अज्जि-अज्जिगाए बंही उमा अवि विसाह-सिदि वि रिंकी।
अज्जी विदीस-विगला वि वबीद-णामी मुत्ती विमुत्तिसि विसाल-विभाला।।26।।
बंहे चरेंति बहुध सुयखुल्लगो त्ति आसीस-भादुर्यविवड्ढण-जितिंद-वज्जो
जीदो दु विस्स अ कोमल विस्सदिट्ठो विस्सो वि विस्स-विहु-विस्स-आदा।।27।।
आयार-विड्ढी-परिविड्ढ विराग-हेदुं गच्छे विणोद-सणदं रजवांस-गामे।
आरक्खि-रेह-अहियारिय-वंदरीए बडा-रहेलि-पुर-सागर-गोर-आदिं।।28।।
सोम्मासिरी महमहीधर-पस्समाणो पीऊस-दाण-कुणमाण-छपार-पारी
पत्तेज्ज पंत-सिवणिं च दिवापुरव्व सेयंस-सेयस-सुमेर-जणाण बोहे।।29।।
मग्गे दु घोर-उवसग्ग-जणाण जाए आरण्ण-वसि-मणुजा ण हु सब्भवासी।
छत्तीस-अंक-पडिरोहकदा ण कुव्वे तत्तो वितत्त-अयसव्व इमो परेदि।।30।।

क्षु. विधाताश्री हुई आर्यिका विधाताश्री, ब्र.उमा बनी आ.विशाखाश्री, रिंकी बनी आ. विदीक्षाश्री, बबीता हुई आ.विकक्षाश्री, मुक्ति बनी आ.विमुक्तिश्री, सुभद्रा बनी क्षु. विशालश्री तथा कस्तूरीबाई बनी क्षु.विभालश्री।।29।। जो श्रुतानुसार ब्रह्म में विचरण कर रहे थे, वे आशीष हुए क्षु. विवर्धन, जितेन्द्र विवर्जन, जीत हुए विश्वलोकेश, कोमल बने क्षु.विश्वदृष्टा, सनत-विश्वविद, गुलाब-विश्वविभु और फूलचंद हुए विश्वात्मासागर नाम वाले क्षुल्लक।।27।। आचार्यश्री संघ आचारवृद्धि के साथ विराग परिवर्धन हेतु अनेक ग्रामों की ओर विचरण करते हैं। वे पं.विनोद एवं सनत के ग्राम रजवांस को प्राप्त होते हैं। वांदरी की पुलिस इंस्पेक्टर रेखा के स्वागत के पश्चात् बंडा, कर्रापुर, रहली, सागर, गोरझामर, नरसिंहपुर आदि पुरों में प्राप्त होते हैं।।29।। यह संघ सोम्यश्री/ चन्द्रश्री की तरह सम्पूर्ण भूमंडल के महीधरों की दृढ़ता देखता हुआ, पीयूष दान करता हुआ छपारा आदि का पारगामी होता हैं इसके अनन्तर दिवाकर की तरह दिव्य सिवनी को प्राप्त होता हैं जहाँ श्रेयांस, अभिनन्दन आदि के श्रेय को पूर्व वृद्धि करने वाले पं.सुमेरचन्द्र दिवाकर के दिव्यजन समूह को भी बोध देते हैं।।29।। यह तो निश्चित है कि उपसर्ग मार्ग में बाधक ही होते हैं यदि वे अरण्य वापीस मनुष्यों के अतिरिक्त सभ्यवासी करते हैं तो निश्चित ही घातक होते हैं। छत्तीसगढ़ नक्सलवादियों का गढ़ है। छत्तीस का आंकड़ा अच्छा है, पर छत्तीस में बाधा हो तो उस पर वह संघ विचार नहीं करता है। छत्तीसगढ़ लोहे की तरह है, वह तप्त लोह के समान जहाँ आचार्य संघ विहार करते हैं।।30।।

इदि उणचालीस विरागो समत्तो।

चालीस-विरागो

पसवागार-संघस्स, आयार-पूद-णंदणं। विवक्ख-माण-सूरीसो, चरेज्ज विमले पधे।।1।।
कालो त्ति विसमो वट्टे, वट्टणा-लक्खणो भणे। अच्चंत-सुहुमो अत्थि, अणुपरिछिदप्पमो।।2।।
असंखेज्ज-अणंतो त्ति, अत्थ-वट्टण-कारणं। एगाए परमाणु त्ति, लोगागास-पदेसगे।।3।।
जधा कुलालचक्कस्स, भंतेत्ति कील-कारगो। तधा कालो-पदत्थाणं, वट्टणे उपगेहिणी।।4।।
परिवट्टदि अप्पेवं, पदत्थाणि सदा भवे। गुण-पज्जव-अप्पेहिं, कालो त्ति सह-भागिणो।।5।।
अत्थित्तो अत्थिकायो त्ति बहुप्पदेसिणो हवे। जीव-पोग्गल-धम्मो त्ति अधम्भागास-सत्तिगो।।6।।
एगोत्ति काल-दव्वोत्ति, ववहार-गदी गदी। पज्जायं विणु णत्थि त्ति, सिंहो माणवगो जधा।।7।।
वत्तिदो वट्टणेणं च, दव्वकालेण लक्ख ए। ववहारादु खण्णादी वि, धडि-धंडय-आवली।।8।।
उस्सप्पिणी अवासरपी सु-सु-सु-दु-दु-सुस्समो। दु-अदिदुसमा दुहु छ-सम-विस-वट्टणं।।9।।

आचार्यश्री संघ का आगार तो नूतन आचार के पवित्र आनंद को लेकर चल रहा था। इसलिए आ.विरागसागर बिना कुछ कहे जिन प्रभावना करते हुए विमलपथ की ओर अग्रसर रहे।।1।। काल विषम है, एक सा नहीं रहता, इसलिए उसका वर्तनालक्षण/परिवर्तन लक्षण है। जो सूक्ष्म है अत्यंत परमाणु की तरह।।2।। यह असंख्यात है, फिर भी अनन्त पदार्थों के परिणमन में कारण होता हैं इसके एक-एक परमाणु लोकाकाश के एक-एक प्रदेश पर स्थित हैं।।3।। जैसे कुम्भकार के चक्र की कील घूमने में सहायक होती है, उसी तरह पदार्थों के परिणमन कराने में कालद्रव्य सहकारी है।।4।। इस लोक में समस्त पदार्थ अपने आप ही परिणमन होते हैं, गुण-पर्यायों के द्वारा काल तो उसमें सहभागी होता है।।5।। अस्तित्व या सत् स्वरूप बहुप्रदेशी अस्तिकाय द्रव्य है। अस्तित्व या सत् स्वरूप जिसका गुण है, वह अस्तिकाय है। जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और आकाश बहुप्रदेशी हैं।।6।। काल द्रव्य एक प्रदेशी है, व्यवहार से जिसमें गति/परावर्तन ही परावर्तन होता रहता है। वह परावर्तन बिना पर्याय के नहीं होता, उसी तरह, जिस तरह सिंह बालक सिंह के बिना पराक्रमी नहीं होता है।।7।। द्रव्य के कारण वर्तना से वर्तित काल द्रव्य घड़ी, घंटा, आवली, क्षण आदि भी व्यवहार से हैं।।8।। उत्सर्पिणी- वृद्धि युक्त काल, अवसर्पिणी- हानि युक्त काल है। जिसमें सु-सु-सुषमा-सुषमा, सु-सुषमा, सु-दु-सुषमा-दुषमा, दु-सु-दुषमा-सुषमा, दु-दुषमा, और दु-दु-दुषमा-दुषमा। इसके विपरीत दु-दु-दुषमा दुषमा, दु-दुषमा, दु-सु-दुषमा-सुषमा, सु-दु-सुषमा-दुषमा, सु-सुषमा और सु-सु - सुषमा-सुषमा।।9।।

पत्तेग-काल-समए णिय-कम्म-धम्मो संतिप्पदायग-गुणी-गण-णायगो वि।
आहार-चारुचरिया-उवसग्ग-आदी पज्जुप्पणे चरदि छत्तिस-अंगधरी।।10।।
सो राजणाद-गढ डोंगर-दुग्ग-आदिं पत्ते तिवेणि-जिण-तित्थ-सुधंम्म-ठाणं।
सूरिस्स घोस-जय-साहु-भिलाइ-खेत्ते सत्ताइसे ति-दु-सहस्सय-वास-वासे।।11।।
जा पुण्णिमा-ससि-समाहिद-सोम्म-भावी सा एव माणुज-अयस्स-गणे वि सोम्मा।
मण्णेंति सोम्म-हिद या अवि सोम्म हेदुं तं वीरसासण-जयंति-विसेस-णंदे।।12।।
वच्छल्लमुत्ति-गहिरोदहि-सूरि-एसो सिस्से समूह-परिसिंचिद-सोम्म-पुण्णं।
सल्लेह-वारह-तवी अवि विस्स-धम्मे सामित्त-सम्म-विहि-जादि-गुरूस्स पादे।।13।।
अस्सिं च रास-समए सुचिभाव-जुत्तो सो गच्छदे हि अणिलो वि कमंडलं च।
गेण्हित्तु अग्ग-अणुगामि-गुरु त्ति अग्गे आगच्छदे हि मुहवत्थ-अल्वेद-कुज्जे।।14।।
चेदा विहीण-दिढ-सूरि-इगे वि जाणे विट्टेंति ते हि अवहारि-इणं अणिल्लं च।
किंचिं च दूर-णय-भूदचएज्ज ते वि कत्थं पलाय-पल-जाण-णयंत-सव्वे।।15।।
सव्वे असंत-मणुजा अहियारि-मंती णिंदेंति सोह-अणुसोह-कुणंत-सव्वे।
धुत्तो ण जाणदि इणं ण हु पुण्ण-पावं पण्णेच्छ-पण्ण-मदिहीण-कुदो विरोही।।16।।

प्रत्येक काल के प्रत्येक समय में अपने-अपने कर्म एवं धर्म थे। शान्तिप्रदायक गुणी एवं गणनायक भी थे। आहार चर्या, विहार एवं उपसर्ग आदि भी थे। आज इक्कीसवीं शताब्दी में छत्तीस गुणधरी छत्तीसगढ़ में प्रवेश करते हैं उपसर्ग आदि सहन करने के लिए।।10।। आचार्य संघ राजनाद गाँव, डोंगरपुर, दुर्ग आदि को प्राप्त हुआ। वह संघ त्रिवेणी तीर्थ जिन तीर्थ के उत्तम स्थान को प्राप्त हुआ। भिलाई क्षेत्र में, जहाँ आचार्य एवं मुनिसंघ का जयघोष हुआ और हुई चातुर्मास की स्थापना 27 जुलाई 2003 में।।11।। जो पूर्णिमा राशि से पूर्ण थी, वह भिलाई में अयष्क/लोह के सदृश्य जनों में सौम्यता अर्थात् शीतलता का पाठ पढ़ाने लगा। यहाँ जो भी सौम्य/समत्वशील व्यक्ति थे, वे समत्व हेतु गुरू पूर्णिमा और वीर-शासन जर्यंति आदि को सौम्यगुरु आचार्य विरागसागर के सानिध्य में आनंदपूर्वक मनाने लगे।।12।। आचार्य तो वात्सल्य मूर्ति थे, वे सागर की तरह गंभीर थे। वे अपने शिष्यों में पूर्णिमा के चन्द्र की तरह शीतलता का सिंचन करते थे। भिलाई में बारह वर्ष की सल्लेखना वाले मुनि विश्वधर्मसागर की समाधि तो समत्व की विधिपूर्वक ही कराई। सो ठीक है गुरू के चरणों में समत्व तो सम्यक्त्व देता ही है।।13।। आचार्यश्री इस वर्षावास में एक दिन रात्रि में शुचिभाव युक्त हुए। आगे चले तो अनिल कमंडलु को लेकर उनके साथ चलने लगा। इसी बीच एक व्यक्ति मुँह पर वस्त्र रखकर उन्हें अचेत कर देता है।।14।। वे सूरी अचेत एक वेन में ले जाए गए। अपहरण करने वाले आचार्यश्री और अनिल को कुछ दूरी तक ले जाते हैं, परन्तु ले जाने वाले कुछ ही क्षण बाद उन्हें सड़क पर छोड़ पलायमान हो जाते हैं।।15।। सभी जगह अशान्त वातावरण, मनुष्यों का मन भी अशान्त हो गया, मंत्री अधिकारी भी इसकी सम्यक् समीक्षा एवं अनुसन्धन करने में लग गए। धूर्त तो पुण्य-पाप कुछ नहीं जानते, वे तो पुण्य/धनाभिलाषी अपनी बुद्धि को भ्रष्ट कर लेते हैं। बुद्धिहीन व्यक्ति ही ऐसा तुच्छ कार्य करते हैं यही सोचकर सर्वत्र निन्दा करते हैं लोग।।16।।

मंते समाहिद-मुणीसर-आद-भावे पविट्ट-अज्ज अवरेह-सदा हि संतो।
झाणे रदो सदद-संतिपियो त्ति सूरी ओसग्ग-जाण-जणदेक्क-सुदेससज्जा।।17।।
अस्सिं हवेदि मणुजेसु विसेस-खेदो सव्वत्थ दंसण-पदंसण-विरोह-जादो।
साहाविगो मणमदी-कुमदीण णासं कज्जं हवेज्ज किद-कूर-सदा हि रज्जे।।18।।
रोहेज्ज कूर-मणुजाण सदा हि लोए सत्ताहिगारि-सचिवादि'पसासगादी।
आराजगं जदि पसम्म-कुणंत-लोए णो साहसं दुरहिभाव-कदा वि कुव्वे।।19।।
मोणी इमो तण-किसी गमणे असक्को जाएज्ज क्रूर-परि-बंध-कारणेणं।
बंहीजणा अड-असीदि-पहे भिलाइं णेएज्ज णो असण-पाण-विहिं च सम्मं।।20।।
अच्चंत-तावास-गणी किसकाय-साहू सूरी दु सम्मदि-वदी मह-देसणाए।
ओसग्ग-जाण-धरणी-सयणासणी सो झाणे रदी मणण-णाणपही हवेज्जा।।21।।
आदेसएज्ज मुणि णायग-सोम्म-भावी भा वित्त-भावण-पधी णिय-देह-रक्खं
आहार-सुद्ध-अणवेसण-सुद्धि-रीदिं कुव्वेज्ज सो असण-पाण-विधिं च सम्मं।।22।।
छत्तीस-पावण-गुणं च गणिं च पत्ता छत्तीस-रज्ज-मणुजा उव सग्ग-जेत्ता।
दुग्गो भिलाइ-सयला परिवट्ट-पिच्छिं साहिण्हु-संत-खम-सील-इणं च सव्वे।।23।।

वे आचार्य विरागसागर तो आत्म स्वरूप में स्थित करने वाले मंत्र को समाहित अपहरण को महत्त्व नहीं देते हैं, अपितु सदैव ध्यान में रत रहते हैं। वे शान्ति प्रिय इसे उपसर्ग मानते हुए लोगों को प्रेरित करते हैं।।17।। इसमें है खेद मनुष्यों में। इसलिए सर्वत्र दर्शन-प्रदर्शन, विरोध आदि हुआ। स्वाभाविक रूप में मन एवं बुद्धि कुमतियों के कार्य एवं किए गए अक्रूर कर्मों का राज्य में विरोध हो।।18।। इस संसार में क्रूर मनुष्यों के अपराध सत्ताधिकारी, सचिव, प्रशासक आदि ही रोक सकते हैं। यदि वे अराजकता को नहीं रोकेंगे तो कौन रोक सकता है? इसलिए क्रूरों के क्रूर भाव को रोका जाना ही राजसत्ता की प्रभुसत्ता है।।19।। 16 अगस्त से 18 अगस्त तक अशन-पान रहित आचार्य का शरीर क्षीण एवं अशक्य हो गया था, क्रूर परिबंध के कारण से। उन्हें 88 किमी दूरी से भिलाई ले जाया गया ब्रह्मचारी जनों द्वारा। फिर भी असन-पान विधि नहीं की।।20।। इधर आचार्य सन्मतिसागर जी के आज्ञा संदेश से वे ध्यान में रत, मनन युक्त ज्ञानप्रधी उपसर्ग समझकर धरणी शयन-आसन वाले आचार्य विरागसागर पुनः स्वस्थ हो गए क्योंकि जो अत्यंत तपस्वी आचार्य हैं, जिनका शरीर क्षीण है, पर साधु क्रिया में सूर्य की तरह तेजस्विता है। उनकी आज्ञा सर्वोपरि रही। वे आचार्य श्री आदेश युक्त सौम्य भावी अपनी बुद्धि में उचित भावना लाते हैं, वे अपने शरीर की रक्षा हेतु आहार शुद्धि की रीतिपूर्वक आहार लेते हैं तथा उस समय अशन-पान की सम्यक् विधि का पालन करते हैं।।22।। छत्तीसगढ़ के दुर्ग, भिलाई आदि की समाज पिच्छि परिवर्तन के समय उन्हें सहिष्णु, क्षमाशील कहती है तथा उन छत्तीस गुण के आचार्य को 'उपसर्ग विजेता' की उपाधि से अलंकृत करते हैं।।23।।

तिव्वेणि-मंदिर-जिणे कलसाहिरोहो सत्तं च तुंग-फुद्रं-अदिरम्म-रम्मं।
बंधाइ पंच-फुड-उण्णद-सोह-सीलं राजेज्ज राज-जिण-मंदिर-भव्व-कम्मं।।24।।
इध साहु-साहु-तवसी हवद जगएक्क मग्गि-रदणी रदणे।
सुद-सत्थ-अंबुणिहिं-मुत्त-गणी तव-णाण-पंथि-सुचारिस-मणी।।25।।

भिलाई के त्रिवेणी जिन मंदिर में 7 फुट ऊँचा रम्य कलशारोहण हुआ और आचार्य श्री की प्रेरणा से ही रूआबांध में भी अति रमणीय पाँच फुट ऊँचा स्वर्ण कलश रखा गया, जो भव्य कर्म की प्रेरणा देने वाला था।।24।। सच है इस संसार में, जो साधु होता है, वह तपस्वी होता है सम्यक् पथ का। वह जगत् का एकमात्र रत्न, रत्नत्रय का मार्गी होता है। वह श्रुतशास्त्र रूपी समुद्र की मुक्ता है अपने से मुक्त, मुक्त पथ का गणी है। वह है तप, ज्ञान आदि का पथिक तथा चारित्र की उत्तम मणि भी।।25।।

इदि चालीस विरागो समत्तो।

इगतालीस-विरागो

तुमसि मग्ग-जिणामिद-पुण्णगो तुमसि साहु-समाहिद-सत्थगो।
तुमसि चारु चरित्त-पभावगो जय विराग-विराग-सुसाहगो।।1।।
एगो तवी थल-भिलाइ-अयस्स-पुण्णो एसो तवी पडिदिणं तव-यंत-तत्ती।
सव्वे विराग-परिणाम-पपूरमाणं मासे हि चादुचरिए चरिए पमाणं।।2।।
वासं च पच्छ वसदिं परिचत्तमाणं देसेज्ज सावग-जणा-णयणस्सु-धारं।
णेएज्ज णीरज-समं अहिचारदे तं दुग्गे वि आइरिय-संघ-विसेस-माणे।।3।।
कप्पद्दुमो हवदि कप्प-विहाण-सम्मो धम्मं च बोहदि विराग-विराग-पण्णं।
आबाल-बुड्ढ-णर-णारि-जणा हि सव्वे रंजे ण राग-आदिराग-मणा हि कुव्वे।।4।।
सीदे रिदुम्मि अदिकंपय-जण्ण चिंते सव्वे हि गंथपरिचत्त-विरागि-झाणी।
सज्झाय-झाण-परिणाण-पउत्त-साहू वेसालि-आदि-उवगाम-गदिं कुर्णेति।।5।।

आप हैं जिनामृत पूर्ण मार्ग वाले, आप शास्त्रज्ञ साधुओं से समाहित हैं, आप उत्तम चारित्र के प्रभावक हैं और हैं विराग ही विराग के साधक। आपकी जय हो।।1।। भिलाई स्थान में निरंतर जलती हुई भट्टियाँ हैं लोह गलाने की। यहाँ ही यह तपस्वी प्रतिदिन तप यंत्र से तप्त सभी लोगों में विराग परिणाम भर रहा है। इस चातुर्मास में ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप की चर्या में उत्तम गुण ही प्रमाण बनें।।2।। वर्षावास के पश्चात् श्री संघ वसति को छोड़ते हुए जब गमन करते हैं, तब श्रावकजनों के नेत्रों से अश्रुधारा को प्रवाहित भी लोग देखते हैं। वे नीरजसम समत्व के नीर को लेकर उन्हें दुर्ग की ओर प्रस्थान कराते हैं, उनके साथ जाते हैं। दुर्ग में आचार्य संघ का आचार्य स्याद्वादसागर भी सम्मान करते हैं।।3।। जहाँ कल्पद्रुम है, वहाँ सम्यक् कल्पद्रुम विधान जैसे कार्य भी होते हैं। आचार्य श्री के प्रभाव से कल्पद्रुम विधान कार्य हुआ, धर्म बोध दिया गया, विराग से विराग प्रज्ञा के भाव आबाल, वृद्ध, नर-नारियों आदि सभी लोग इससे प्रभावित हुए, जो अब तक राग से रंजित थे, अतिराग मन वाले थे, वे राग से विरक्त विराग की ओर चल पड़े।।4।। शीत ऋतु में जहाँ अतिशीत लोगों को प्रकंपित करने वाली थी, वही वे लोग सोचते कि ये सभी ग्रन्थ/परिग्रह त्यागी, विरागी, ध्यानी हैं, ये स्वाध्याय, ध्यान, ज्ञान में प्रवृत्त निष्कंप वैशाली आदि उपग्रामों की ओर गति कर जाते हैं।।5।।

चादुक्क-दो सहसकाल-विचारपुण्णो छत्तीस-छत्ति-मुणिणाध-पुरे वि राजे।
घम्मप्पभाव-कुणमाण-सदा विरागं उप्पज्जएंति रदिराग-जणे जणीए।।6।।
गच्छो इमो अनुपवड्ढदि पुरे वि णागे तस्सिं च पंचमि-सुदं अणुमण्णिदे वि।
सुत्ताण वायण-पवायण-भावणाए बंहे चरिंति गद-बहजणा अणुपत्त-दिक्खे।।7।।
चंद व्व कोमल-हिदो लहुकोमलो त्ति विस्सस्स-तित्थ-विलसंत-सुपंकजो वि।
खुल्ले पदे वि विहसंत-सदा हि संतो मुत्तागिरिं च अणुगामि-सिरी हि संघो।।8।।
रण्णावली परम-रम्म-विणम्म-भूदा सीसेहि हिंडगद-आगाद-सूरि-संघं।
वंदेंति साह-पडिसाह-करग्ग-सव्वे संरक्ख-भावण-मदिं मणुजेसु कुव्वे।।9।।
उच्चासणी तवगिरिम्हि इमे हि मुत्ता भव्वादिभव्व-मुद-मोण-किदी हि विण्णा।
तुं सूरि-सूर-पडिभास-गदाणुगामी पस्सेहि खिण्ण-परिहास-मिलीण-पत्ता।।10।।
तत्थेव दंसण-किदेज्ज-किदिज्ज-आदं धण्णं कुणंत-सयला सिरि-संघ-साहू।
पच्छा करंज-चदुमासचदुस्सए हि पुण्णी गुरु विविह-धम्म-समायुजो वि।। 11।।

समय 2004 का भी विचारपूर्ण रहा। जहाँ छत्तीस गुणों के धरी मुनिनाथ छत्तीसगढ़ के राजनांद गाँव में प्रवेश करते हैं, वहाँ छत्तीस गुणों की धर्म प्रभावना करते हुए रतिराग युक्त लोगों एवं नारियों में विराग को उत्पन्न करते हैं।।6।। आचार्य संघ नागपुर में प्रवेश कर जाता है। वहाँ श्रुतपंचमी पर्व को मनाया जाता, वहीं सूत्र ग्रंथों की वाचना होती, पृच्छना होती और उनका अनुशीलन किया जाता है। ब्रह्मचर्य रहित लोग ब्रह्मचर्य को पालन करते और कुछ दीक्षा को प्राप्त होते हैं। जिनमें क्षु.विवर्धनसागर-ऐ.विवर्धनसागर, क्षु.विवर्जनसागर-ऐ.विवर्जनसागर, क्षु.विश्वदृष्टासागर-ऐ.विश्वदृष्टासागर, क्षु. विश्वविद्सागर-ऐ. विश्वविद्सागर बनते हैं।।7।। चंद्र की तरह कोमलचन्द्र तो चाहता है कोमल/विशुद्ध आत्महित, इसलिए अतिकोमल होता हुआ विश्व का तीर्थ क्षु.विश्वतीर्थ बन गया, बा. ब्र.पंकज क्षु.विहसंतसागर, बा.ब्र.पंकज (छतरपुर) क्षु.विलसंतसागर बा. ब्र. उमेश (समसावाद क्षु. विकसंत सागर बन गए। वे शान्त आचार्य विरागसागर जैसे संत आदि चल पड़े मुक्तागिरि की ओर-मुक्ताओं के शिखर-सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र के स्थान की ओर चल पड़े।।8।। नागपुर के पश्चात् मुक्तागिरि की ओर प्रस्थान करते ही पाते हैं परम रम्य, विनम्र भूत अरण्यावली को। वे शीर्षों से हिलती हुई आगत सूरि संघ की वंदना करती हैं। उनकी शाखा-प्रशाखाएँ रूपी कराग्र तो मानो यही भावना भा रही हैं कि हे आचार्य प्रवर! इन मनुष्यों में हमारे संरक्षण की भावना भरें।।9।। इस मुक्तागिरि के उच्चासन पर उत्तम तपस्वी मूर्तवान् हैं, मुक्त हैं, वे भव्यातिभव्य हैं, मुदित हैं, पर मौनकृति युक्त बिम्ब/प्रतिमाएँ हैं। परन्तु आप तो हैं सूरी संघ को लेकर चलने वाले सूर्य की तरह प्रकाशमान एवं एक दिशा से दूसरी दिशा की ओर गमनानुगमन करने वाले भी। आप देखें हमें भी। हम खिन्न हैं, परिहास रहित/पराग से रहित मलीन/ क्षीण पत्र वाली।।10। वहाँ पर भव्य कृतियों के दर्शन कर समस्त साधु समूह अपने को धन्य करते हैं। इसके अनंतर कारंजा चातुर्मास, गुरुपूर्णिमा के विविध आयोजन के साथ स्थापित किया जाता है।।11।।

एगे दिवे मुणिवरो कुणदे झाणं सामाइगे हि समए चरणे हि चिंहं।
दंसेदि अच्छरिय-जाद-मणे इण्म्हि अण्णे वि दंस-अदि-अच्छरिएज्ज कुव्वे।। 12।।
पीढे त्ति चिहंचरणाण करंजवासी दंसेति मासदि विराग-मुणि-णायगं च।
सो संत-संत-मुद-कंत-करे हि देसे णो मे तवी इध जणे वि अणेग-पण्हं।।13।।
पादारविंद-जुद-पीढ-पखाल-णीरे चिंहे ण खीयदि तध णियवेक्खदे तं।
एगे अले परम-मुद्दिअ-ताल-पुण्णे पेरंत-मास-उवरिं चरणे हि दंसे।।14।।
पंथे पडंतचरणे कविभाव-मुद्दे पोम्माणि ताणि चरणाणि अवस्स-जादे।
सूरिस्स पाद-थिर-अच्छरियं कुणेज्जा तावो पहाव-अणुदंसण-णंदएज्जा।।15।।
आसीस-पत्त-मणुजो सुह-संति-णंदं कुव्वेंति मंति-विहि-विहायग-जीद-जुत्ता।
राजिंद-पाडणि-सुहंस-अणेग-भव्वा ते दूरदंसण-पसारण-जंत-छाही।।16।।
सम्मं पसारण-इणं जण-सङ्ग-जादा इंदो वि अच्छरिय-जुत्त-अदीव-खिण्णो।
लक्खाणि लक्ख-खय-कुव्व-पसारण च मुल्लं विणा कध-कधं मण-मंतएज्जा।।17।।

आचार्य विरागसागर एक दिवस छत के ऊपर पाटे पर खड़े होकर बरसते पानी में ध्यान कर रहे थे। सामायिक के समय में साधुओं को चरण चिन्ह दिखाई पड़ते हैं। इससे उनके मन में अत्यंत आश्चर्य उत्पन्न होता है। अन्य साधु भी आश्चर्यचकित होते हैं।।12।। पाटे पर चरण चिन्हों को कारंजावासी देखते हैं, वे आचार्यश्री से कहते है, पर वे शान्त, मुदित हाथ से उन्हें आशीष देते हैं और कहते कि मैं कोई तपस्वी नहीं हूँ। इस पर लोगों में अनेक प्रकार के प्रश्न उपस्थित हुए।।13।। उस चरणचिन्ह को पाटे के पास से साफ किया गया, चिन्ह मिटाए गए। फिर उसे एक अलमारी में ताला एवं मुद्रा युक्त पूर्ण रूप से सुरक्षित रख दिया गया। एक माह पश्चात् वे चरण चिन्ह वैसे ही दिखाई दिए आचार्य श्री के जो पूर्व में थे।।14।। मार्ग में निर्ग्रन्थ के चरण कवि के भाव में पद्मचरण हो जाते हैं, पर सूरिविराग के स्थिर चरण लोगों में आश्चर्य पैदा ही करते हैं। सो ठीक है जो तापस होते हैं, उनका प्रभाव अवश्य देखा जाता है। वह लोगों में आनंद भी उत्पन्न करता है।।15।। जो भी आते, आशीष पाते, सुख-शान्ति एवं आनंद का अनुभव करते। मंत्री, विधायक आदि भी जीत की भावना के लिए आशीष लेते। राजेन्द्र पाटनी 28 अक्टूबर 2004 को विजयी होते तब वे आचार्यश्री के पास पहले आशीष के लिए आते। टी.बी. चैनल, दूरदर्शन के प्रसारण कर्मी एवं वीडियोग्राफी वाले भी साथ में आते हैं।।16।। इस तरह के उचित प्रसारण को जानकर लोगों के मन में अधिक श्रद्धा उत्पन्न करती है। इन्द्र जैसे व्यक्ति जो सदैव कुत्सित प्रसार वाला भी आश्चर्यचकित हो जाता है। जो लाखों खर्च करते हैं वे भी प्रसारण को प्राप्त होते हैं, परन्तु बिना मूल्य यह कैसे क्या हुआ, उसके मन को झकझोर देता है?।।17।।

एगो हि णिम्म-मणुजो अधमे कुणेदि ओसग्ग-जाण-मुणिणायग-मोण-झाणी
जाएज्ज सङ्ग-सयला सयलारि-मंते सच्चं असच्च-कुणमाण-कदा पमाणी।।18।।
कारंग-माणुज-गणा सिरि-णिम्मलो वि तं दंसिदूण कुणएज्ज पसंस-भूरी।
चारित्त-सीसमणि-भूसिद-सूरि-तेजिं गच्छे महाहिसिचि-गोम्मटेसं।।19।।
अग्गेज्ज कुंथुगिरि-चारि-अकल्लुज च केसापुरि अकलि-संगलिऊदगामं।
जत्थेव आदिमुणि णायग-साह-सम्मं दंसेज्ज अग्गचरिएज्ज इमो हि संघो।।20।।
ओसग्ग-हेदु-सम-संति-गुरुं च णामं कुंथ मुणीसर-सुही चरएज्ज मंतं।
कल्लाण-पंचसेमए दुसए हि साहू आलंकिदे समण-रण्ण-उवाहि-सूरिं।।21।।
पुज्जो सिरी वि गणधराइरियो वि कुंथू तस्सिं च वंदण-मुणंत-तदा पयाणे।
दो-साहसे पण-सणे अहिसिंच-काले सो गोम्मटेस-पहु-बाहुबलिं च पत्ते।।22।।
कुंथम्हि देव-णमि-पोम्म-वरो त्ति णंदी कप्पो गुणो वि वरहत्त-मुणीस-गुत्ती।
सूरी वि देव-कुमुदो कुमुदव्व साहू तस्सिं विराग-मुणि-माणस-हंस-भत्ती।।23।।

इस संसार में एक निम्न मनुष्य यदि अधम करता है तो उसे आचार्य श्री उपसर्ग मानते हुए मौन ध्यानी ही रहते हैं। तभी तो विरोधियों के विचारों में भी श्रद्धा के पात्र बने सभी के। सत्य को असत्य करने वाले सभी प्रमाणी हुए। अर्थात् नहीं।।18।। तभी कारंजा समाज व महासभा अध्यक्ष श्री निर्मल कुमार सेठी तथा अन्य गणमान्य लोगों ने पू. आचार्य श्री विरागसागर जी के निर्मल चारित्र की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए '**चारित्र शिरोमणि**' की उपाधि से विभूषित किया तथा सेठी जी ने श्रवणबेलगोला के महामस्तकाभिषेक में पधारने हेतु श्रीफल चढ़ाया।।19।। उनके आग्रह व आज्ञानुसार कुंथुगिरी के लिए विहार होता हुआ अकलूज, केशापुरी, सांगली, अंकली, उदगांव जो परम पूज्य आचार्य श्री आदिसागर जी अंकलीकर की साधना व समाधी स्थली है वहाँ के दर्शन कर आगे बढ़ा।।20।। यहाँ पर पू. गुरुवर पर आ रहे उपसर्गों की शांति हेतु परम पूज्य आचार्य कुंथुसागर जी ने 40 दिन तक पू. गुरुवर के नामोच्चारण के साथ शांतिधारा की थी तथा पंचकल्याणक के अवसर पर लगभग 200 साधुओं व हजारों श्रद्धालुओं के मध्य आपके विशाल संघ में श्रमण रत्नों को देख आपको (पू.आचार्य श्री विरागसागर जी को) **श्रमणरत्नाकर** की उपाधि से अलंकृत किया था।। 21।। पूज्य आचार्य गणधराचार्य कुंथुसागर तो कुंथुगिरि में थे। वहाँ पर वंदन एवं वार्तालाप के पश्चात् प्रस्थान कर गए गोम्मटेश बाहुबलि के क्षेत्र की ओर। जहाँ 2005 में महामस्तकाभिषेक होना था। वहाँ आचार्य संघ पहुँचा।।22।। कुन्थुगिरी में आचार्य कुन्थुसागर के अतिरिक्त आचार्य देवनंदि, आचार्य नेमिसागर, आचार्य पद्मनंदि, आचार्य वरदत्तसागर, आचार्य कल्पश्रुतसागर, आचार्य गुणधरनन्दि, आचार्य गुप्तिनंदि, आचार्य देवसेन, आचार्य कुमुदनंदि आदि एवं कुमुद की तरह अन्य साधु आदि भी थे। उसमें आचार्य विरागसागर और मुनिजन मानस के हंस वहाँ भक्ति युक्त थे।।23।।

कुंभोज-बाहुवलि-साजणि-खेत्त-पत्तं साहस्स-फण्णजुद-पास-पहुंच दंसे।
पच्छा चरेज्ज इचले तध खुल्लगं च पच्चीसवं च दिवसं विधि-संति-णंदं।।24।।
अत्थेव चिट्ठगद-पाढ-पदे पदेज्जा आहार-काल-गज-पाटणि-चिंह-दंसे।
ते मुत्त-मुत्त-परमो अमिडो हि लोए अच्छेर-जाद-सयला अदि-सङ्घ-भूदा।।25।।
सूरी वि सूरि-इगमेव दु णिच्छयो वि सो णादणी हि जिणसेण-भडारगे वि।
सम्मं च सागद-गुणं मुणि-पोम्मसेणं एल्लक्क-सागसधिदिं अणुपत्तएंति।।26।।
वाडीइ-मज्जरसमण्ण-अणेग-गामं कम्मत्थलिं समण-देस-सुजम्म-णंदिं।
कल्लाणमंदिर-विहाण-सुदंस-सम्मं सो मेडि-कल्ल-मह-विज्ज-जिणं च वाणिं।।27।।
भोजे हि संति-गणि-संति-थलं च पत्तं कोटधल्लिगाम-सिरडोण-कुरू-सदल्ला।
सूरीवरो हि वरदत्त-समे समेज्जा गामेथवे थवि विराग-विराग-सिंचे।।28।।
सामित्त-सील-मुणिसंघ-चरंत-पंथे जाणं च वाहण-पधे विणु थोव-मग्गे।
सो बेलगाम-अणुचारि-सदा पसण्णो दंसेज्जदे कमलमंदिर-धरवाडं।।29।।
चारेज्ज चारिहुवलिं च णवग्गं-तित्थं पोम्मावदिं च हुमचं अणुपच्छ-सोदं।
सामित्त-सूरि-अकलंक-णमंत-संघो वारंग-गाम-सिरलाल-दहिण्ण-खेत्तं।।30।।

कुंभोज बाहुबली के पश्चात् यह संघ साजणी क्षेत्र को प्राप्त हुआ, यहाँ सहस्रफणी पार्श्वप्रभु के दर्शन किए, फिर इचलकरंजी में 25वां क्षुल्लक दीक्षा महोत्सव मनाया गया तथा शान्ति विधान को सानंद सम्पन्न किया गया।।24।। इचलकरंजी में दो बार आहार के लिए जिस पाटे पर आचार्य श्री खड़े थे, उस पर चरण चिह्न बन गए, वे मिटाने पर भी नहीं मिटे। इस पर गजराज पाटनी उनका परिवार तथा देखने वाले आश्चर्य को प्राप्त श्रद्धाभूत हुए।।25।। सूरी तो सूरी होते हैं, आचार्य विरागसागर और तपस्वी आचार्य निश्चयसागर भी एक-दूसरे से मिलते हैं। नादनी में जिनसेन भट्टारक, मुनि पद्मसेन, ऐलक सागरसेन, ऐलक धृतिसेन आदि उनका स्वागत करते हैं और वे सागर की तरह गंभीरता को प्राप्त होते हैं।।26।। मजरेवाडी, समनेवाडी आदि अनेक ग्राम को प्राप्त आचार्य विरागसागर आचार्य देशभूषण की कर्मस्थली और आचार्य गुणधरनन्दि की जन्मस्थली को प्राप्त हुए। जहाँ कल्याणमंदिर विधान सम्पन्न हुआ। यहाँ के मेडिकल कॉलेज के छात्र अपने परिसर में जिनवाणी का श्रवण कर सके।।27।। आचार्य शान्तिसागर की जन्मस्थली को प्राप्त यह संघ, कोथली, सिरडोन, कुरुदवाडी, सदलगा (जो आचार्य विरागर जी की जन्म स्थली है)आदि को प्राप्त हुआ। फिर आचार्य वरदत्त सागर से सम्यक् मिलन के पश्चात् संघ स्तवनिधि पहुँचा, विराग ही विराग सिंचन हेतु।।28।। ईर्या समिति समत्व का आदर्श है, शील मुनि संघ की सम्यक् चर्या है, ऐसे मार्ग पर चलते हुए यान-वाहन के बिना लघुमार्ग पर चलते हैं। वह संघ अति प्रसन्न बेलगाम पहुँचा जहाँ कमलमंदिर के दर्शन करता है, फिर धारवाड़ में प्रवेश कर जाता है।।29।। संघ की सम्यक् चर्या तो थी ही, पर ग्रामानुग्राम में विचरण करते हुए हुबली को प्राप्त हुआ, नवग्रह-तीर्थ (वरूर), हुमचा पद्मावती के पश्चात् सौदा मठ को प्राप्त हुआ, जहाँ पर आचार्य अकलंक की समाधि स्थल को नमन करते हुए दक्षिण कन्नड में संघ प्रविष्ट हो गया।।30।।

णल्लूर-कारकल-मूडविदिं च भागं सम्मं विराग-परिमाण-पपुण्ण-माणो।
सो मूढ विद्दि-णयरे चदुमास-जुत्तो सिद्धंत-रण्ण-समलंकिद चारुकित्तिं।।31।।
देसे विदेस-मणुजा अणुदंसणत्थं पुव्वप्पहाण-सिरि-एच-डि-देवगोड़ा।
एल.डी. वि इडवोकिड-जीवणो वि मित्तो हरेग-उडवी सिरि-योग-भट्टो।।32।।
कंटा-अरोण्ण-अमरेग-पदीव-लिंगा लच्छीइसेण भड वी-कडणाडगो त्ति।
सुण्णाणमुत्ति-जणगो वि कपूरचंदो चंदेज्ज चंद-किरणं च विराग-सूरिं।।33।।
रण्णागिरिं च परिदंसणं-पुव्व-बाहुं तत्थेव दिक्ख-मुणि-चोव्विस-मण्ण-सम्मं।
रण्णंब-भासिद-जणं सरलो हि सूरी अज्जीगणी मुणिगणा समयो हि सुत्ते।।34।।
रण्णाइ-अंब-परि-हेगडे हेम-हस्सो पिय्या-सुरिंद-अणिदा-सुद-सङ्घ-सुत्ता।
धम्मो त्ति चारु-भड-णेग-महा जणा वि। अज्झप्प-जोगि-उवहिं समलंकिदो सो।।35।।
हालेविडुं अडगुरो पुरसालगामं वेणूर-पच्छ-सवणं सिरि-गोम्मटेसं।
पत्तेज्ज एस मुणिसंघ-मिलेज्ज अण्णे सूरिं च वड्ढ-गुण-वड्ढण-हेदु-सम्मं।।36।।

नल्लूर, कारकल, मूढबिद्रि आदि भाग में विरागपूर्ण वातावरण बनाते हैं। मूढबिद्रि में चातुर्मास युक्त आचार्य विरागसागर की चारूकीर्ति भट्टारक चारूकीर्ति को चारू बनाती है, वे उन्हें इस प्रसंग पर **'सिद्धान्तरत्न'** की उपाधि से अलंकृत करते हैं। पिच्छी परिवर्तन के समय प.पू.आ. श्री की पुरानी पिच्छी प्राप्त करने का सौभाग्य मातो श्री रत्नम्मा हेगड़े धर्मस्थल को प्राप्त हुआ। नई पिच्छी चाँदी की पालकी में लाई गई एवं धर्माधिकारी श्री वीरेन्द्र हेगड़े जी ने चतुर्विध संघ को दी।।31।। इस चातुर्मास में 10/7/05 को एडवोकेट एल.डी.बलाल, डॉ.जीवनधर बलाल, पूर्व प्रधानमंत्री एच.डी.देवगोड़ा, डी.ए.एस.पी. मित्र हरेग (16/7/05) श्रीमती माधवराव (उडुवि सांसद) योगेश भट्ट विधायक मगलूर (17/7/05) भी दर्शनार्थ आए।।32।। 22.7.05 श्री कंटाकरणपना (M.P. चिक मंगलूर), 26/7/05 को आरोग्य (M.P.(4/8/05 अमेरिका से प्रदीप शर्मा, 14/8/05 श्रीलिंगा सेट्ठी (शिक्षण सचिव) 16/8/05 श्री लक्ष्मीसेन भट्टारक, ज्वालामालिनी, 17/9/05 डॉ. वी.एस.कर्नाटक विधान परिषद् 22/9/05 को गुरु शिव सुज्ञान मुनि महास्वामी (हासन) 16/10/05 को कपूरचंद्र जैन (पू. आ. विरागसागर जी के पिता श्री)।। 33।। संघ ने रत्नागिरि में प्रभु दर्शन पूर्वक बाहुबली के दर्शन किए। वहाँ (धर्मस्थल) पर 24वाँ मुनि दीक्षा दिवस सानंद मनाया गया। वहीं पर रत्नम्मा ने कहा कि आचार्य विरागसागर सरल हैं।।34।। रत्ना अम्मा, डॉ. हेगड़े का समस्त परिवार डॉ.वीरेन्द्र हेगड़े श्रीमती हेमावती, हर्षेन्द्र श्रीमती प्रिया, सुरेन्द्र हेगड़े श्रीमती अनीता एवं श्रद्धा, श्रुती जैसी बालाएँ, धर्मकीर्ति एवं चारूकीर्ति भट्टारक एवं गणमान्य लोगों के समक्ष आचार्य विरागसागर को **'अध्यात्म योगी'** उपाधि से अलंकृत किया जाता है।।35।। संघ हलेवेड्डू, पुष्पगिरि, अडगूर, शालेगाम आदि के पश्चात् वेणूर फिर श्रवणबेलगोल गोम्मटेश को प्राप्त हुआ। जहाँ आचार्य वर्धमानसागर और आचार्य विरागसागर का मिलन हुआ, जो मानो आचार्य के गुणवर्धन हेतु ही था।।36।।

महामहिम-रट्ठो त्ति, सिरि-अब्दुल-भागो वावीस-एग-छट्ठोचोसिद-मत्थगं हवे।
अण्णे दिवे सुदं-चंदं-गाणं गणिज्ज गायदे सम्मं असोग-कुंदं च सुधम्म-गाण-गीदगं।।37।।
चामुंडराय-गुणणं गणएज्ज संतिं अण्णे विधिं महट्टिसेग-सिरिं च बाहुं।
जाएज्ज अद्ध-इगरेह-पभाद-कम्ले पच्चीस-दिक्ख-वर-मंगल-दायिणी हि।।38।।

सन् 22/1/06 को महामहिम राष्ट्रपति अब्दुल कलाम ने मस्तकाभिषेक के कार्यक्रम का उद्घाटन किया, 23 को श्रुतकेवली, 24 को चंद्रगुप्त, 25 को सम्राट अशोक, 26 को आचार्य कुन्दकुन्द का गुणानुवाद किया गया। 26/1/06 को सर्वधर्म सम्मेलन हुआ।।37।। सन् 2006 के फरवरी माह में 8/2/06 को 10.30 पर बाहुबली का महामस्तकाभिषेक हुआ। जो 16/2/06 तक चलता रहा। इसी मध्य 13/02/06 को 25 दीक्षार्थियों के दीक्षा संस्कार हुए।।38।।

ऐ. विश्वस्त सागर जी महा.	मुनि विश्वस्त सागर जी
ऐ. विवर्धन सागर जी ''	मुनि विवर्धसागर जी
ऐ. विशेष सागर जी ''	मुनि विशेष सागर जी
ऐ. विवर्जन सागर जी ''	मुनि विवर्जन सागर जी
ऐ. विश्वदृष्टा सागर जी	मुनि विश्वदृष्टा सागर जी
ऐ. विश्वविद् सागर जी	मुनि विश्वविद् सागर जी
क्षु. विनेय सागर जी	मुनि विनेय सागर जी
क्षु. विशारद सागर जी	मुनि विशारद सागर जी
क्षु. विश्रुत सागर जी	मुनि विश्रुत सागर जी
क्षु. विलसंत सागर जी	मुनि विलसंत सागर जी
क्षु. विकसंत सागर जी	मुनि विकसंत सागर जी
बा. ब्र. रीतु जैन	आ. विवक्षा श्री
बा. ब्र. विनीता जैन	आ. विदक्षा श्री
बा. ब्र. आरती जैन	आ. विरम्या श्री
बा. रत्ना जैन	आ. विकाम्या श्री
बा. सुमति जैन	आ. विकम्पा श्री
बा. सरिता जैन	आ. विप्रा श्री
बा. सीमा जैन	आ. विप्रभा श्री
क्षु. विश्वविभू सागर जी	ऐ. विश्वविभू सा. जी
बा. ब्र. आनन्द कुमार जैन	ऐ. विदाम्बर सा. जी
बा. ब्र. विजय कुमार जैन	ऐ. विभास्व सा. जी
श्री भागचंद जैन	क्षु. विश्वमित्र सा. जी
श्री विजय जैन (पन्ना)	क्षु. विश्वप्रिय सा. जी
बा. ब्र. सोनू जैन	क्षु. विभजंन सा. जी
बा. ब्र. कमलेश जैन	क्षु. विरंजन सा. जी

साहस्स-दो छह वि तेरह-फारवरिम्ह काले भव्वादि भव्व-पहु-बाहुबलियं से गो।
पच्चीस-दिक्ख-जण-जीवण-धम्म-लेहं देंति त्ति ते भव-भवंतर-णास-हेदूं।।39।।
दिक्खा-मुणी परम-सिक्ख-विराग-भावी भाविंजणं भमण-भंजण-संघ-चत्तं।
आलेहमाण-णिय-भाण-सुणाण-सत्तं संतं विणा ण हु भवे भव-अंत-संतं।।40।।
दाहिण्ण-पंत-सुद-सागर-खाणि-साहुं पासाण-सव्व-मणि-माणिग-बिंब-बिंबा।
सोवण्ण-हीर-रजदा अवि पित्तलादी धण्णासिरीफलय-काजु-बदाम-खेत्ता।।41।।
सव्वत्थ संति-सम-सील जणा जणी वि सिक्खप्पसार-बहु-जंत-गणी विसाला।
देसप्पदेस-बहुदेस-विणिम्म-माला सद्धा-विसेस-बहु-खेत्त-सुदंसणिज्जा।।42।।

सन् 2006 माह फरवरी 13 दिवस के समय बाहुबली प्रभु का भव्यातिभव्य अभिषेक हुआ। उस समय पच्चीस दीक्षाएँ लोगों के जीवन में धर्म भाव का लेख कर देती हैं और वे यही संकेत दे जाती हैं कि इस भव-भवान्तर के नाश हेतु ये दीक्षाएँ हैं।।39।। मुनि दीक्षा, परम दीक्षा है, जो शिक्षा देती है भविष्य के विराग की। भा-विशुद्ध स्वभाव व्यंजित करती हैं यह भव भ्रमण मिटाती है, संघ-बाह्य-आभ्यंतर परिग्रह छोड़ने को कहती है। यह लिखती है आत्म-प्रतीति, उत्तम ज्ञान की सत्ता को और सिखलाती है संत के बिना इस संसार को अंत नहीं कर सकते हैं। संत तो शान्त है, हम भी भव का अंत करके शान्त/प्रशान्त भावों को धारण कर सकें। यह दक्षिण प्रान्त जहाँ श्रुत/आगम का सागर है, वहीं साधुओं की उत्पत्ति का स्थान भी है। यहाँ सर्वत्र पाषाण की मूर्तियाँ, मणि-माणिक्य बिंब, स्वर्ण, हरक, रजत, पीतल आदि के प्रतिबिंब हैं। यहाँ नाना प्रकार के धन्य, श्रीफल, काजू, बादाम आदि के खेत हैं।।41।। दक्षिण प्रांत में अब भी शान्ति है, क्षम-श्रमणों एवं आर्यिकाओं के शील के कारण। यहाँ शिक्षा प्रसार है, यहाँ नाना प्रकार की यान्त्रिक शालाएँ हैं, शोध केन्द्र, गणित आदि के मानक यंत्र आदि हैं। यहाँ देश, विदेश एवं नाना क्षेत्रों के वस्तु विनिमय केन्द्र हैं। यहाँ श्रद्धा है श्रद्धालुओं की, क्योंकि यह श्रद्धा के साथ दर्शनीय स्थल भी है।।42।।

संत-समणं विणा इधजगे कदावि भव-भवंतरं णासिदुं समत्थो णो होदि जणो। भव-अंतो-भव-भवंतरं अंतं-चहुगदिं णासं च अत्थि संतं-समण-दिक्खं णेदूण जणो संतो होदि। संतोत्ति सरलो उत्तम सहावो संतो सो विराग-भावोत्ति। संतो हि संतो भव-अंतो हि संतो।।40।।

गीत

जत्थ सव्व-कम्म-धम्म-रम्म-भव्व-णंदगा पत्त-पुप्फ-संत-सुज-सत्त-गत्त-वंदगा।
तत्थ एस सूरि-सोम्म-चंदत्तुल्ल-सीयलो णम्म-भूद-पेम्म-पूर-सत्थ-सत्थ-णिम्मलो।
तुमं विराग-सूरि सुर-तुल्ल राजदे तुमं विचार-पूरि-चारू चंद धरदे।
तुमं पगास-सत्थ-सार-सुत्त णीयदे तुमं पमाद-मुत्त-मुत्त-मुत्त पालदे।।
संघ-साहु-साहु-साहू, कुंदकुंद-णंद-णंदी सेद-सुब्भ-अज्ज-अज्जी मंत-मुद्ध-सुत्त-पंथी।
झाण-सील-सील-धरी, सार-सत्थ-पत्त-पत्ती लेह-लेह-पेह-पेही, पोम्म-पोम्म-पल्ल-पत्ती।।

इदि इगतालीस-विरागो समत्तो।

बयालीस-विरागो

महिदोदयस्स कर-कव्व-देसगो, सुर-सिप्पि-णिम्मिद-जिणारहं पदं।
महिदूण वाणि-जिण-अत्थ-भूसणं, स विराग-सागर-गुरु मणं मदिं ।।1।।
वित्थिण्ण-णेग-जिण-साहपसाह-कप्पं कव्वं रसायण-जसं विह-गज्ज-पज्जं।
मग्गे चरंत-सुद-सत्थ-पुराण-सुत्ते छाए महाकवि-तरुम्हि विसामणेज्जा।।2।।
कव्वे पुरु अजिद-संभव-साहि-णंदे इट्ठं मदिं च रिदुं सुमदिप्पहे सो।
पोम्मे सुपास-ससि-चंदय-पुप्फ सीए सेयंस-वासु-विमले वि अणंत-धम्मे।।
संतीइ कुंथु-अरहे पहुमल्लि णाहे सुव्वे वदे वि णमि-णेमि सुणेहि णामे।
पासे वि वीर-जिण-सासग-अज्ज-अज्जे आयार-आइरिय-भूद-सुपुप्फ-कुंदे।।3।।
सिद्धंत-सत्थ-णिउणो हि विरागसूरी रत्तो तमेव गुण-रीदि-कवित्त-सुत्ते।
गामादि-दोस-रहिदे पद-सोट्ठवम्हि वाचामलंकिरियं सुपबंध-पत्ते।।4।।
सारस्सदिं परमसार-पसार-हेदुं सुंदेर-कव्व-लहु-बंध-पबंध-रूवे।
णिक्खेवदे णियम-पुव्व-णए हि णंदे साहुत्त-सिद्धि-गद-संक्किद-सक्किदीए।।5।।

जिनका उद्देश्य जिनवाणी के अर्थ के भूषण को प्राप्त है, जो स्वर शिल्पी से निर्मित जिनार्हत् के पद को आधर बनाते हैं, उनको मथकर मन एवं मति को अलंकृत करते हैं, वे विरागसागर गुरु लिपिकर्म आदि अनेक कलाओं में निपुण भी हैं।।1।। वे विस्तृत, नाना प्रकार के जिन रूपी शाखा-प्रशाखाओं वाले कल्प, काव्य रसायन रूपी यश से युक्त गद्य एवं पद्य (निबन्ध या कवित्व) की ओर अपने को स्थित करते हैं, क्योंकि विरागसागर के मार्ग में श्रुत, शास्त्र, पुराण एवं नाना प्रकार के सूत्र होने पर उन्हीं महाकवियों के तरू छाया में विश्राम लेना चाहते हैं।।2।। वे पुरु/ऋषभ, अजित, संभव, अभिनंदन, सुमति, पद्म, सुपार्श्व, चन्द्रप्रभ, पुष्पदंत, शीतलनाथ, श्रेयांसनाथ, वासुपूज्य, विमलनाथ, अनंतनाथ, धर्मनाथ, शान्ति, कुन्थु, अरह, मल्लि, मुनिसुव्रत, नमि, नेमि, पार्श्व और महावीर में जो भी देखते वह काव्य में प्रविष्ठ हो जाता हैं वे जिनशासन के आर्य, आचार्य निष्ठ आचार्य भूतबलि, पुष्पदंत एवं कुन्दकुन्द के काव्य में आनंद लेते हैं।।3।। आचार्य विरागसागर सिद्धान्त शास्त्र में निपुण हैं। वे गुण-रीति कवित्व एवं सूत्र में रत ग्रामादि दोषों से रहित पद-सौष्ठव में भी प्रवेश करते हैं। वे वाणी से अलंकृत समस्त क्रियाओं को/पठित अंश को उत्तम प्रबन्ध /अलग-अलग विधाओं में रख देते हैं।।4।। वे सरस्वती के परमसार के प्रसार हेतु सुन्दर काव्य, लघु लेख, शोध प्रबन्ध आदि में प्रवृत्त होते हैं। वे नियमपूर्वक नय के आनंद में स्थित साधुत्व की सिद्धि युक्त संस्कृत की संस्कृति में निमग्न होते हैं।।5।।

भव्वाण णंद-पयडिं मह पागिदं च कव्वं मुणीसर गुणं महकव्व-णादुं।
सद्दत्थ-पुण्ण-गुरु-सिस्स-पवाह-अत्थं मूलं धणं च मुणमाण-सदा रचेज्जं।।6।।
सक्कार-पाढ-सुरहीइ सुसिक्खगा हि अस्सिं विराग-मदि-धम्म-गदित्ति अत्थि।
आरुण्ण-पुव्व-परमप्प-सरं च लेहं मंगल्ल-भाव-सद-झाण-विचार-पूदं।।7।।
आराहणा हवदि देव-गुरुत्ति सत्थं मंतो त्ति मंगल-धुदी थवणादि-णेगा।
भत्ति त्ति वंदणविही जिण-थोद-आदि इट्टोवदेस-दवियं रदणं च सुत्तं।।8।।
बालाण बोह-सुलहो सुलहो हि लेहो चित्ताणि अंगलिय-भास-सुपण्ह-माला।
पाढे सुलेह-पढमे परमेट्ठि-णामा मंगल्ल-तित्थथर-णाम-सुभावणादी।।9।।
तित्थो त्ति एग-भगवं च विसुद्धअप्पा साहू त्ति अज्जि-गिहि-साविगसाविगाओ।
दाणंच तित्थचदुदाण-महत्त-पुण्णा अस्सिं पसिद्ध-मणुजाण कधदि-लेहो।।10।।
संका-समाहाण-विसए णय-दुण्हि-रूवा दव्वत्थिगो अवर पज्जवदिट्ठिगो त्ति।
सब्भूदसब्भुवणयो ववहार-दिट्ठी सम्मं च दंसण-सरूव-महा हि सिद्धी।।11।।
जस्सिं च काल-परिवट्टणं वट्टणं च तक्काल-तम्मय-तदो हि सरूव-जादो।
सुद्धो-असुद्ध-सुह-जोग-पजोग-रूवो सुद्धोपयोग-धरणे परमत्थ-मग्गो।।12।।

वे भव्यों की आनंद देने वाली प्रकृति से महत् प्राकृत और उनके मुनीश्वरों के करण्य गुणों तथा महाकाव्य की प्रतीति के लिए शब्दार्थ सहित काव्य को गुरु-शिष्य परंपरा से प्रवाह रूप अर्थ को मूलधन मानते हुए उसमें ही लिखने में समर्थ होते हैं।।6।। **'संस्कार सुरभि'** के पाठ एक सुशिक्षिका है, जिसमें पाते हैं विरागमति, धर्मगति भी। जिससे सीखते हैं अरूणोदय से पूर्व उठना, परमात्म का स्मरण करना, पढ़ने-लिखने के आदर्श को। इसके अन्दर समाहित हैं मांगलिक भाव, उत्तम ध्यान और पवित्र विचारों का आदर्श।।7।। **'आराधना'** हमारे देव, गुरु और शास्त्र की। मंत्र णमोकार, मंगलाष्टक, विविध स्तवन, भक्ति, वंदनविधि, जिनसहस्त्रनाम आदि भी हैं। इसमें हैं इष्टोपदेश, द्रव्यसंग्रह, रत्नकरण्ड श्रावकाचार एवं तत्त्वार्थसूत्र के पाठ भी।।8।। बालकों के बोध के लिए अत्यंत सरल चित्र सहित अंग्रेजी में लिखित **'बाल विज्ञान'** सराहनीय है। इसमें पंच परमेष्ठियों के नाम, मंगलपाठ, तीर्थंकर नाम एवं भावना आदि हैं।।9।। तीर्थ एक है भगवत् तीर्थ, विशुद्ध आत्मतीर्थ/ साधु आर्यिका, श्रावक और श्राविकाएँ भी तीर्थ हैं। **'दानतीर्थ'** आचार्य विरागसागर की दृष्टि नहीं, सृष्टि है, जिसमें चार दान और उनमें प्रसिद्ध जनों के कथात्मक लेख हैं।।10।। आ.श्री के आध्यात्मिक **शंका समाधान** के विषय में है- दो प्रकार के नयों का स्वरूप। द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक दोनों ही दृष्टियाँ भी। व्यवहार दृष्टि में है- सद्भूत और असद्भूत तथा सम्यग्दर्शन के स्वरूप की अनेक सिद्धियाँ हैं।।11।। आ.श्री के **'शुद्धोपयोग'** विचार में है परमार्थ मार्ग। शुद्ध, अशुद्ध और शुभ योग, प्रयोग के स्वरूप क्योंकि जिस समय जो वस्तु जिस रूप परिणमन करती है, उस समय वह वस्तु उसी रूप को प्राप्त हो जाती हैं।।12।।

सुद्धोवजोग-अणुसीलण-सोध-बंधे सोहत्थिणो परम-मुल्ल-पदायिणी जो।
संदब्भ-सुत्त-पुर-आगम-सूरि-माणो णाणंजणो मुणिजणाण सुसावगाणं।।13।।
चेदण्ण-चिंतणलहु त्ति विचार-सेली अस्सिं समाहिद-जिणं-च दंसणं च।
सज्झाय-सङ्ग-सद-जीवण-संग-सुत्ता कत्तव्व-सेट्ठ-दय-दाण-सुमग्ग मुत्ता।।14।।
चारित्त-णिम्मल-सुमग्ग-सुसुत्त-णंदे णंदे कध कधण-सिक्ख-खमा-तवंगे।
सच्चे वि संजम-सुणाण-सुदंसणे हि सज्झाय-संगदि-समत्त-सुहे सुझाणे।।15।।
जो माणतुंग-मुणि-णायग-णंत-जुत्तो मुत्तेज्ज सिंखल-चदुस्स-अडे हि बंधं।
कंतं गुणं च पढमं जिण-आदिणाधं पामण्णजुत्त-पद-सम्म-विवेयम्हि।।16।।
मे अप्प-तित्थपरमो वि विसुद्धि-जुत्तो तित्थंकरस्ससम-भावण-भावणाए।
सुद्धि त्ति दंसण-णद-सील-अभिक्ख-णाणे संवेग-सत्ति-अणुगणे इध मूल-मंते।।17।।
सामाइगो समय-सुत्त-सदा पदेज्जा दाएज्ज सो अभिदं अभिदं गदिं च।
आदाहएज्ज मुणएज्ज समं समत्तं सिद्धं विबुद्ध-धुद-कम्म-परं पदेज्जं।।18।।

'शुद्धोपयोग' नामक अनुशीलन है- शोध-बंध/शोध प्रबन्ध। जो है शोधार्थी के लिए अमूल्य कारणों को देने वाला क्योंकि इसमें है संदर्भ सूत्र ग्रन्थों, पुराणों, आगमों एवं आचार्यों के विचार भी। यह मुनिजनों एवं उत्तम श्रावकों के लिए है ज्ञानांजन देने वाला।।13।। **'चैतन्य चिन्तन'** में है, लघु विचारात्मक शैली। जिसमें समाहित है जिन दर्शन, स्वाध्याय, श्रद्धा, उत्तम जीवन, संगति आदि के सूत्र। इसमें कर्तव्य, श्रेष्ठ दान, दया आदि की मार्ग की मुक्ताएँ हैं।।14।। **'कहानी सबसे सुहानी'** में है चारित्र की निर्मलता, उत्तम मार्ग, सद्सूत्र कथा कथन में है शिक्षा क्षमा एवं तप के अंग। इसमें सत्य, संयम, ज्ञान, दर्शन, स्वाध्याय, संगति, शुभ और ध्यान में प्रवृत्ति भी होती है।।15।। आचार्य मानतुंग तो थे अनंत गुण युक्त, तभी तो 48 तालों और श्रृंखला के बंधन खुल गए उत्तुंग ताप से। क्योंकि उन्होंने लिख दिया प्रथम जिन आदिनाथ की स्तुति को अपने शब्दों में। जिसे देख सके **'मानतुंग की अमर भक्ति'** आचार्य श्री को एक-एक पद के प्रामाणिक एवं सटीक विवेचन में।।16।। मेरा आत्मा है परमतीर्थ, विशुद्धि युक्त। **'तीर्थंकर ऐसे बनो'** के विचारों में है तीर्थंकर नामकर्म की सम्यक् भावनाओं का भावपूर्ण विवेचन। उसमें दर्शन-विशुद्धि, विनय सम्पन्नता, शीलव्रत, अभीक्ष्णज्ञान, संवेग, शक्ति आदि अनेक गुण। जिसके पालन से बनते हैं अनंत शक्ति के अधिकारी। यही तो है इसके मूल में।।17।। **'सामायिक पाठ'** है समय सूत्र अर्थात् आत्मा की विशुद्धता को देने वाला सूत्र। जो आचार्य अमितगति की रचना अमितगति देती है और अमृतत्व को प्राप्त कराती है। सम, समत्व, सिद्ध, विबुद्ध एवं कर्म रहित करके जो परम पद प्रदान करती है, उसकी आराधना एवं मनन समत्व के लिए आवश्यक है।।18।।

तित्थंकरं च दिव-दंसण-तित्थ-हेदुं गब्भं च जम्म-तव-झाण-सुमुत्ति मंतं।
सव्वाण दिक्ख-परसिक्ख-गुणं च जंतं लेहेज्ज लेह-अणुसीलण-सत्थ-कंतं।।19।।
मोक्खस्स राह-पढमो सम-सड्ढ-भावो भत्ति त्ति धम्म-अणुवेह-विराग-चागो।
कम्मक्खयो समिद-संजम-भावणा वि सूरीवए वदतवी सहकलेहणो वि।।20।।
कल्लाणगो पण-महुच्छव-तितथ-कम्मी गब्भो दु जम्म-तव-णाण-सु-मोक्ख-धम्मो।
जोगो णिरोह-जम-संजम-झाण-सुत्तो जम्मंजरं च मरणं ण हु तस्स होदि।।21।।
सं-साहणा पवहसुत्त-सदा णियोज्जे जीवाण मंतणवयार-सुभावणादी।
चत्तालिसा वि जिण-आदि-पहुत्ति पोम्मो चंदो वि संति-महावीर-विराग-सोम्मो।।22।।
मंतेहि जंत-गुण-मंडिद-भत्ति-आदी संतिं पदेज्जदि सुवण्ण-सुभावणादी।
भावाविसुद्ध-खण-कव्व-पसूण-णंदे वड्ढे विराग-परिणाम-चिदे विछंदे।।23।।
कत्तव्वमेव सड-आवसगं च भावं-सुद्धं देवं गुरुं च परमागम-सड्ढ-पूदं।
सज्झाय-संजम-तवं चदुदाण-णिच्चं दाएज्ज जो परम-पावण-भावणाए।।
देव-पूजा गुरुसत्तिं सज्झाय-संयमं तवं। दाणं चदु-सुपत्ताणं, सड-कम्म-दिणेदिणे।।24।।

'तीर्थंकर दिव्य दर्शन' तो है तीर्थ के लिए। जिसमें गर्भ, जन्म, तप, ज्ञान और मुक्ति के मंत को दर्शाया गया है। इसमें सभी तीर्थंकरों की शिक्षा-दीक्षा आदि के संकेत भी तालिका एवं आगम प्रमाण अनुशीलन में होने से सभी तरह से लोगों को कान्त बनाते हैं।।19।। **'मोक्ष की राह'** में प्रथम सम्यक् श्रद्धाभाव। भक्ति, धर्म, अनुप्रेक्षा, वैराग्य, त्याग, कर्मक्षय, समता, संयम एवं भावना भी। सूरी के वचन में है व्रत, तपस्या और सल्लेखना भी।।20।। पाँच कल्याणक तो वास्तव में महोत्सव हैं तीर्थंकर कर्म की प्रकृति वालों के। गुरुवर आ. विरागसागर के **'कल्याणक महोत्सव'** में है गर्भकल्याणक, जन्म कल्याणक, तप कल्याणक, ज्ञान कल्याणक और मोक्ष कल्याणक। जिनके ये कल्याणक होते हैं वे पाते हैं जन्म, जरा और मरण के अभाव को।।21।। **'साधना'** में हैं सम्यक् साधना के प्रचलित सूत्र, जो लोगों को जोड़ने का कार्य करते हैं। जीवों के लिए णमोकार मंत्र, विविध भावना, भक्ति, जिनस्तुति, आदिनाथ, पद्मप्रभ, चंद्रप्रभ, शान्तिनाथ, महावीर और विराग चालीसा तो बनाते हैं सौम्य।।22। आ. श्री के द्वारा प्रस्तुत मंत्रों एवं यंत्रों के गुणों से मंडित आदिनाथ की स्तुति **'मानतुंग की अमरभक्ति'** में मिलती है। इसके विविध वर्ण में उत्तम भावनाएँ हैं, जो शान्ति प्रदान करती हैं। **'भावों के विशुद्ध क्षण'** वाले काव्य प्रसून भावों में विशुद्धता लाते हैं सो ठीक ही है, क्योंकि जो विराग परिणाम चित्त में लाना चाहते हैं वे छंदविहीन भाव रचना में निमग्न होते हैं।।23।। **'कर्तव्यमेव कर्तव्यम्'** में है छह आवश्यक कर्म, जो भावों को शुद्ध बनाते हैं देवों की उपासना, गुरु परमागम के प्रति श्रद्धा से पवित्रता पाते हैं। स्वाध्याय, संयम, तप और चारों दान जो परम भावना से देता है व पाता है परमार्थ से भावों की शुद्धता।।24।।

चारित्त-सुद्धि-वदपंच-समित्त-गुत्तिं रत्तिं च भुंजण-सुचत्त-अणुव्वदं च।
सव्वे हि सुत्त-उववास-फलं च भावं संक्किद्द-मंत-जव-सावग-संति-सव्वं।।25।।
विण्णाण-कम्म-भव-भंजण-कारणत्थं जोगो तिजोग-मण-वाउ-काउ-रोधं।
घादी अघादि-दुविहो हि खएण सिद्धो चादीइ घाद-अरहंत-सुतित्थो-बंधे।।26।।
अप्पाण सक्किदि-विराग-मदिं पदेज्जा दूरो ण मग्ग-जगदे सद-भावणं च।
चिंतेज्ज जो पवयणं च विराग-सुत्तं सव्वाणुजोडा-वन-णंदण-णंदएज्जा।।27।।
वाणी तरंग-तरणी भव-पार-गामी संक्कार-वाहिणि-णिही बहु-धीर-धरी।
गंभीर-गेह-गद-मुल्ल-मणिं च मुत्तं पत्तेंति दंसण-सुणाण-चरित्त-सुत्तं।।28।।
सम्मं च दंसण-पधं पढमं च मण्णे मोक्खस्स मग्ग-रदणे वि विसेस-मुल्लो।
सोवाण-वङ्ग गद-जणा अणुलब्भएंति सङ्गं विराग-अणु-संग-अउंवि अंगं।।29।।
सव्वोदयी हि जिणधम्म-सदा हि राजे तस्सिं दिगंबर-मुणी अजणाह-आदी।
तित्थो त्ति तित्थ-उसहो तणयोहपत्तो पुत्तादि भारद-मुणी-पुर-धम्म-लेहो।।30।।

'चारित्र शुद्धि व्रत' में पाँच महाव्रत, पाँच समिति, तीन गुप्ति, रात्रि भोजन त्याग आदि को आ.श्री ने जिस रूप में रखा है, उसमें उपवास, उसका फल और भावों की विशुद्धता है। जो संस्कृत में मंत्र रूप में है। जो भी श्रावक इसका जप करता है वह सब शान्ति को प्राप्त होता है। ।25।। विज्ञान तो सम्यग्ज्ञान है। **'कर्मविज्ञान'** भव भंजन के लिए उपयोगी है। योग है विविध रूप- मनोयोग, वचनयोग और काययोग, इनके रोध से बंध नहीं होता है। घाति और अघाति कर्म हैं दोनों के क्षय से सिद्ध होता है जीव और घातिकर्म-ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय के घात से प्राप्त होता है अरहंत पद एवं तीर्थंकर कर्म प्रकृति का बंध।।26।। **'दूर नहीं है मंजिल'** में है आत्म संस्कृति, विराग संस्कृति, जो देती है विराग मति को। उत्तम मार्ग एवं सद्भावना को। जो विरागसूत्र के प्रबन्धन का चिंतन करता है, वह सर्व अनुयोग युक्त नंदनवन को आनंद को प्राप्त होता है।।27।। **'संस्कार की लहरें'** जब वाणी से तरंग तरणी बनती है तब वह संसार सागर से पार ले जाती है। संस्कार वाहिनी निधि/संस्कार का समुद्र अत्यंत ही धीर धारी गंभीर है, फिर भी जो धीरता से उसमें प्रवेश करते हैं, वे बहुमूल्य मणियों एवं मुक्ताओं को पाते हैं। परन्तु इसमें प्रवेश करने पर दर्शन, ज्ञान और चारित्र के सूत्र को जो भी प्राप्त करते हैं वे विराग की बहुमूल्य निधि को प्राप्त कर लेते हैं।।28।। आ. विरागसागर ने **'सम्यग्दर्शन'** विचार करते हुए उसे मोक्ष का प्रथम सोपान, रत्नत्रय में विशेष महत्त्व दिया है। सम्यग्दर्शन श्रद्धा/जीवादि तत्त्वों के प्रति श्रद्धा को बढ़ाता है क्योंकि इसमें है विराग के लघुकण और है आठ अंग की संगति।।29।। **'सर्वोदयी दिगम्बर जैनधर्म'** सदा से अपनी पहचान बनाए हुए हैं। उसमें दिगम्बर मुनि, अजनाभ/नाभिराय, आदिनाथ प्रथम तीर्थ के तीर्थंकर ऋषभ, उनकी दोनों पुत्रियाँ (ब्राह्मी और सुन्दरी जो आर्यिकाएँ) बनी और उनके पुत्र भरत का भारत जो मुनि बने निर्ग्रन्थ उनका उल्लेख भी इसमें है तथा तीर्थंकर महावीर और उनकी परंपरा से लेकर अब तक की धर्म परंपरा के लेख हैं।।30।।

चक्खु त्ति आगम-पुरा जिणधम्म चक्खू साहूण चक्खु परमत्थ-सुपण्ह-कत्तू।
दंसेज्ज णो णयणेहि णएहि सुत्ते आवज्झ-सत्थ-गुरु-गारव-वड्ढमाणं।।31।।
विराग-चेद-संभूदी, पवयण-विरागणो। कल-कल-कलाणीरी, वा-वागीससरस्सई।।32।।
महासाहा पसाहाए, महाबंधे पबंध ए। विचारे चिर-रागाणं, विरागो हि विराग-धी।।33।।
पडिमा पडिमा-वंतो, णिग्गंथो सो दिगंबरो। अंबर-सम-विसालत्तं, आबाल-बुड्ढ-बंधए।।34।।
उत्तम-साह-आकिण्णं, महु-ओज-पसादणं। गुणालंकिद-सद्देहिं, सिस्साण रदणं भणे।।35।।
इदि विवहि-कविंदं जोदिदं मग्गएणं पवयण-सुद-बंधं आगमं सद्दएणं।
लहि लहिद-लभंगं लाल-बालाण जोग्गं उदिद-उदयचंदो सो विरागं रसेणं।। 36।।

'आगम चक्खू साहू' जिनधर्म की चक्षु है, जो देखती है, पुरा सांस्कृतिक मूल्यों को। उसमें भी साधुओं की चक्षु। आत्मदृष्टि तो साधु होती है, जो परमार्थ के प्रश्न कर्तृत्व वाली होती है। वह नेत्रों से नहीं, अपितु नयों से सूत्र में प्रवेश करती है तथा जो उसमें बंधी हुई शास्त्र और गुरु दोनों के गौरव को बढ़ाती हुई जो देखती है शुद्धनय से युक्त होती है।।31।। विराग चेतना की संभूति है आचार्य विरागसागर के प्रवचनों में, जो विरागियों को विराग देते हैं। उनके प्रत्येक वाक्य कथन में है कल-कल करती है सरिता प्रवाह। सो ठीक ही है पद में वा, वागीश और सरस्वती ही होती है।।32।। यह यथार्थ है कि जिनके विचारों में, महाबंध में या प्रबन्ध में विराग ही विराग बुद्धि हो, वे महाशाखा वाले वृक्ष अनेक प्रशाखाओं में फैलते हैं।।33।। जो प्रति समय माँ/सरस्वती की सारस्वत स्वरूप में दृष्टि देने वाले जो निर्ग्रन्थ हैं, वे यदि दिगम्बर है तो सभी दिशाओं में विराग रूपी अंबर से समत्व की विशालता को समस्त जन समूह के योग्य बंध-साहित्य की प्रत्येक विध में बंध /लिख लिखकर दशों दिशाओं में फैला देते हैं।।34।। वे आ.श्री गुणों से अलंकृत शब्दों से माधुर्य देते, ओज उत्तम करते, और प्रसाद की ओर ले जाते हैं शिष्यों के लिए, तभी तो वे उत्तम शाखाओं/आगम के चारों अनुयोगों से आकीर्ण रत्न को/सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र को कह पाते हैं।।35।। इस प्रकार नाना प्रकार के कवीन्द्र से द्योतित मार्ग से, प्रवचन, श्रुतबंध, प्रबंध, आगमशब्द से अपने आपको लाभान्वित करता है यह उदयचन्द्र जो इसमें प्रवेश हुआ है, वह विराग रस से यदि लाल बालकों के लिए/अज्ञान पथ में भटकने वाले लालों के विराग के योग्य मार्ग को दर्शाएगा।।36।।

इदि बयालीस-विरागो समत्तो।

तैंयालीस-विरागो

हे भव्व! सुधीसर-णंद-सुरीसर! वच्छल्ल-पहायर-वच्छ-मुणीसर!
तुं संत-सुहायर चंद-करणीसर सव्वे सुद-सागर अप्प-महीसर।।1।।
वच्छल्लमुत्ति-गुण-जुत्त-मुणी हि लोए राजेंति रज्ज-परिणाम-विमुत्त-सव्वे।
अण्णुण्ण-साहु-सद-भावग-भावणाए मिल्लेंतिएगवर-पिच्छिग-धारिगा ते।।2।।
एगो मयंग-मय-अंग-सदा हि सोम्मो अण्णो विराग-सुद-राग-पल्वीण-सूरी।
कंबद्दहल्लि-पुर-पावण-सुत्त-भावे पत्तेज्ज कम्म-कदली-फल-सत्त-धरे।।3।।
चारित्त-चारू-उणपंचप-पिच्छिगेहिं कम्बदहल्लि-सुह-खेत्त-मणुण्णहारी।
तं पत्त-साहु-गणणायग-बंहचारी सिस्सो विसुद्धय-ससंक-तारी।।4।।
वागीस-ईस-तरूणो तरूणत्तदाई सुत्तेण संग-इममेण विदाइ-संगी।
चारेज्ज मोद-परिमोद-अणंद-णंदी अण्णोण्ण-णंदग-सुवंदगमंग-गत्ती।।5।।

हे आचार्य विरागसागर! आप भव्य सुधीश्वर, नन्द सूरीश्वर हैं। आप हैं वात्सल्य प्रभाकर के वत्स-आचार्य विमलसागर के वत्स। प्रित्यशिष्य आचार्य भी। आप संत हैं, शान्त सुधाकर हैं, चन्द्र हैं और गुणीश्वर भी हैं। तभी तो सभी श्रुत सागर के ज्ञाता आत्म महीश्वर भी हैं।।1।। परस्पर में साधु तो एक-दूसरे की सम्यक् भावना को लिए रहते हैं, वे जब भी मिलते हैं, तब एक-दूसरे को पिच्छि परावर्तक होते हैं। उससे उनकी साधुता का बोध होता है। यदि वे वात्सल्यमूर्ति हैं, गुणों से युक्त मुनि हैं तो निश्चित ही वे राग परिणामों से विमुक्त सभी तरह से शोभायमान होते हैं।।2।। कम्बदहल्ली नामक दक्षिण भाग के एक ग्राम में सूत्र के पावन भाव में निमग्न आचार्य विरागसागर अपने कर्म रूपी कदली फल के सत्त्व को धारण किए हुए थे। वहाँ पर मृगांक/चंद्र स्वभावी मयंकसागर अंग-उपांग आदि के सूत्रों से सौम्य विराग श्रुत के सूत्रों को दे रहे थे, क्योंकि वे यथानाम तथा गुण युक्त श्रुतराग में स्थित सूरी तो सूर्य बन रहे थे।।3।। उत्तम चारित्र की रूचि वाले 49 पिच्छिकाओं सहित अतिशय क्षेत्र कम्बदहल्ली अत्यंत मनोज्ञहारी था, उसे प्राप्त होते हैं साधु, आचार्य एवं ब्रह्मचारी आदि। आ. सिद्धान्तसागर के शिष्य विशुद्ध सागर और शशांक सागर तो तारे रूप में देदीप्यमान थे।।4।। सरस्वती के सार वचनों के प्रतापी मुनि तरूणसागर अपनी तरूणता सूत्र/आगम रहस्य से आचार्य के साथी कुछ दूरी तक बनते हैं। वे एवं समस्त संघ चारित्र के आनंद से मोद-प्रमोद करते हुए परस्पर आनंद उत्पन्न करते हैं। इसके अनंतर परस्पर वंदनपूर्वक अपने मार्ग की ओर चल पड़ते हैं।।5।।

वासो वि पंदरह-दो सुव्ण-सुण्ण-खेत्तो भद्दारगो भुवण-भाणु-सुभाव-जुत्तो।
तं सागदं कुणदि अस्स विसाल-मुत्तो पूजेदि पादचरिए अदिणंद-मेत्तो।।6।।
सेलोण्णदे विविह-मोसह-पादवादी वाणफ्फदी-खण्ण-मोल्ल-पहाण-खेत्तो।
चंदप्पहु त्ति पह-सोहिद-गिरी पुणीदो संरक्खणेछापडिभावण-सुंदरो सि।।7।।
सोहग्ग-सलि-सयला मुणि-सायरा हि हं अज्ज सागर-सुदे परिरत्त-विराग-अंगी।
णेस्सेमि णं पवयणे कधणे समत्थो धण्णा तुमं परम-पूद-मुणीस-संघे।।8।।
अग्गे कुणेदि-पिच्छि-गहिण्ण-हेदुं वच्छल्ल-पीदि-रस-भूद-मयंग-साहू।
गिण्हेज्ज णेह-कर-पोम्म-पवाल-पत्ते दाएज्ज सीस-सुद-अंग-पगाढ-सव्वं।।9।।
तुब्भं णमोत्थु पउमव्व मुणीस-पुज्जं चारित्त-णिट्ठ-उवसग्ग-जयिं च सूरिं।
तुब्भं पमाण-परमागम-सत्थ-णंदि तुब्भं सुणाण-सुद-पत्त-णिमग्गसाहुं।।10।।
अच्छेर-जण्ण-मुद-भाव-पसण्ण-मुद्दं दंसेज्ज सावग-जणा विजणी वि सव्वे।
अम्हाण मित्ति-समभाव-इधेव जादे तत्तो मणाणमण-माणण-हंस-भूदा।।11।।
संदप्पहुं णमदि संघ-सु-संति-भावे गोम्मट्ट खेत्त-परिफासिद-णंत-णंदे।
मेसूर-सूर-रणखेत्त-पुणीद-पंते गच्छंत-गच्छ-कणगं गिरि-दंसणत्थं।।12।।

कम्बदहल्ली क्षेत्र 1500 वर्ष पुराना क्षेत्र अपनी शून्यता व्यक्त कर रहा था, क्योंकि अब तक इतना विशाल संघ यहाँ नहीं आया था। इस विशाल संघ का भट्टारक भानुकीर्ति पूर्णभाव युक्त अत्यंत आदर के साथ उस संघ का स्वागत करते हैं। वहाँ पाद पूजा की जाती अति आनंदपूर्वक।।6।। इस उन्नत शैल पर नाना प्रकार के औषधी पादप हैं, अनेक प्रकार की वनस्पतियाँ, बहुमूल्य संपदा की प्रमुखता वाला क्षेत्र है। यहाँ चन्द्रप्रभ की प्रभा से शोभित गिरि अत्यंत पुनीत है, प्रतिभावान् एवं सुन्दर है, पर संरक्षण से अति सुन्दर हो सकता है।।7।। मयंकसागर मुनि आज श्रुतसागर में रत विराग अंगी बन गए क्योंकि वे आ. विरागसागर को श्रुतसागर में निमग्न देख रहे थे। आज सौभाग्यशाली हैं समस्त मुनिजन, धन्य हैं आप इस पावन पवित्र आचार्य के संघ में। मैं आज अपने वचनों में उनके प्रवचन/आप्त वचन को लेना चाहूँगा ताकि मैं भी विराग के आधारभूत तत्त्वों की ओर दृष्टि कर सकूँ।।8।। वे वात्सल्य प्रीति रस भूत मयंकमुनि नवीन पिच्छिका आगे कर देते हैं अंगीकार करने के लिए। वे कहते - हे आचार्यप्रवर! स्नेह युक्त पद्म रूपी कमल के प्रवाल वाले पात्र में इसे ग्रहण करें और मुझे श्रुतांग की पूर्णता के लिए आशीष दें।।9।। पद्म की तरह आपका चारित्र है, आप जैसे चारित्रनिष्ठ, उपसर्गजयी सूरी को नमोस्तु। परमागम रूपी शास्त्र की प्रमाणता को आधर बनाने वाले नन्दी को भी नमोस्तु। मैं उत्तम ज्ञान, श्रुतरूपी पत्र में निमग्न साधु को नमोस्तु करता हूँ।।10।। श्रावक-श्राविकाएँ आदि सभी उनकी प्रसन्न मुद्रा, हर्ष भाव आदि आश्चर्य को उत्पन्न करने वाला था। वे सोचते हैं कि इस तरह की मैत्री, समत्व भाव आदि हम लोगों में उत्पन्न हो जाता, तो उससे मानसरोवर के मन रूपी मानस के हंस हो जाते हैं।।11।। संघ है सुशान्ति युक्त तभी तो अति शान्तिपूर्वक चन्द्रप्रभा के गिरि के चन्द्रप्रभु को नमन करते हैं, वही गोम्मटगिरि के भाग को स्पर्शित करते अति आनंद भाव से। वह सूर शौर्य पूर्ण धरा के क्षेत्र मैसूर के पुनीत प्रांत की ओर गतिशील कनकगिरि के दर्शनार्थ चल देता है।।12।।

अस्सिं च खेत्त-तरूणो तरूणो हवेदि रायंगणे मुणिगणा बहुपिच्छिजुत्ता।
सड्ढा-सिरा सिरसि णम्म-सदा जएज्जा कुव्वेंति संत-सदभावण-संतिभुत्ता।।13।।
एगो विराग-तरूणो तरूणोवरो वि पासिद्ध-रज्ज-गणरज्ज-अणेग-भागे।
आयार-णिट्ठ-जिण-जोदि-अणंत-दित्तिं मेसूर में बहु-जिणालय-मुत्ति-मोल्ला।।14।।
मेसूर-कट्ठ-कलणाइ जणे अपुव्वो पासाद-कट्ठ-बहुचंदण-सीसमस्स।
आलंकिदा वर-दुवार-पसंत-भागा दंसेज्ज दंत-अगुरिं अगुरुं च सिप्पं।।15।।
एदे विरागि-सुद-सिप्पि-पुराण-सिप्पं दाएज्ज अज्ज गणतंत-सतंत-देसे।
आदस्स-सच्छ-चरिया कढिणत्त-पुण्णा पुण्णाणुबंधि-मणुजा मणुजा हवेंति।।16।।
गामे वि णंजणगुडे पविसेंति साहू णिग्गंथ-चारू-चरियप्पह-सम्मचारी।
जेहिं सुणेज्ज परिदंसण-अज्ज-अग्गे सेदंबरा जिणमदी अधुणा विचारी।।17।।
अस्सिंचरे महुयरो विजयो मुणी वि जे सम्मदी वि विणयो वि णिरंजणो वि।
णिद्देसपुव्व-सयला अवि सावगा वि तेसिं च सागद-किदं च अपुव्व-भावे।।18।।

इस क्षेत्र में मुनि तरूणसागर अपने मुनित्व से लोगों को तरुण कर रहे थे, राज्यांगन में अनेक पिच्छिका युक्त मुनिगण आज लोगों को श्रद्धाशील बना रहे थे। सभी नम्रीभूत, शिर पर नम्रता धारण किए हुए जयकार किए जा रहे थे, सो ठीक है संत तो सद्भावना के साथ शान्ति की मुक्ता देते हैं।।13।। एक तरूण है विराग, विराग देने वाले, दूसरे हैं तरुण विराग की तरूणता दिखलाने वाले। दोनों प्रसिद्ध हैं, राज्यों में, गणराज्यों के अनेक भागों में। वे जिनाचार की निष्ठा की ज्योति हैं, तभी तो अनंत दीप्ति-अनंतदर्शन, अनंतज्ञान, अनंतसुख और अनंतकाल की दीप्ति को मैसूर में 'सूर' हूँ इनकी ऐसी शिक्षा दे रहे हैं। यहाँ अनेक जिनालय हैं, जिनमें बहुमूल्य प्रतिमाएँ हैं।।14।। मैसूर है काष्ठ कला के प्रसिद्ध सम्पूर्ण जगत् में। सब कुछ अपूर्व, प्रासाद/ राज पैलेस भी अपूर्व, नाना प्रकार की काष्ठ सज्जा युक्त, चंदन, शीशम आदि की लकड़ी के बरामदा, द्वार, प्रशान्त कक्ष आदि अलंकृत हैं। जो भी इन्हें देखते हैं, वे दाँतों तले अंगुलियाँ दबा लेते हैं, क्योंकि शिल्प को जिस रूप में बनाना वह गुरु होते हुए भी अगुरु ही है अर्थात् उस शिल्पकार की कला वाला अन्य कोई नहीं एक विश्वकर्मा ही होगा।।15।। ये विरागी तो श्रुत के शिल्पि हैं, इनकी शिल्पकला पुरातन होते हुए भी नवीन शिल्प/निर्ग्रन्थ परम्परा के शिल्प लेकर चल रहे हैं और इसे आज इस स्वतंत्र भारत देश के गणतंत्र - जन समूह को सतत् अपने-अपने तंत्र-आत्मतंत्र/ आत्म रहस्य की देशना दे रहे हैं। ये हैं आदर्श दर्पण की तरह स्वच्छ, पवित्र चर्या वाले, चर्या की कठिनता से पूर्ण भी, पर हैं पुण्यानुबंधि मनुष्य के उपकारी मनु जो मनुष्यों को मानवीयता का पाठ सिखला रहे हैं कि आप मनु हैं, मननशील प्राणी हैं इसी से आपकी मनुजता है।।16।। साधु नंजनगुड ग्राम में प्रवेश करते हैं। वे निर्ग्रन्थ उत्तम चर्या एवं चारित्र विधि वाले थे। जिन्होंने सुना वे सभी दर्शनार्थ आए। श्वेताम्बर उसमें अग्रणी आज जिनबुद्धि दिखाई पड़े।।17।। संघ नंजनगुड ग्राम में मधुकर मुनि, उपप्रवर्तक विजयमुनि, सन्मतिमुनि, निरंजनमुनि, विनयमुनि आदि भी उपस्थित थे। ये सभी स्थानकवासी और श्रावक भी इन्हीं के भक्त, किन्तु सभी निर्देशपूर्वक समागत दिगंबर आचार्य विरागसागर एवं उनके संघ के सभी साधुओं का अपूर्व स्वागत करते हैं।।18।।

सेदंबरो ण इध केइ दिगंबरो वि थाणक्कवासि-जिणभत्ति-मदी पवासी।
णेहाहि णारि-णर-सागर-एग-सुत्ती सुब्भंगणे धवलवत्थ-जयं जएज्ज।। 19।।
रम्मो दु णंजणगुडो त्ति अहेसि संतो भव्वेहि माणसजणेहि सुकम्म-सीलो।
एगंद-सुण्ण-सयला हि अणेग-पक्खी मग्गे विहार-गद-सङ्ग-अणुगामि-सक्खी।।20।।
सेंदबरा मुणिवरा अणुभासएंति एसो विराग-जधमाण-तधेव णामी।
संतो पियो परमसुत्त-समुद्द-मुत्ता वाणी जिणागम-णई णय-पंथ-गामी।।21।।
वाणी सरस्सइ-सरादु पपुण्ण-सुत्ता मुत्तासमा महुर-ओज-पसाद-पत्ता।
णो उत्तरे सवण-वेल-दहिण्ण-पंते आसादणे समण-सेय-सुसेय-जत्ता।।22।।
संझा-लालाम-दिण-दीव-मुणीस-आभं णेदूण अज्ज गदिसील-खणं रमेदि।
को एस सुज्ज-महणिज्ज-पवाल-पुण्णो चारित्त-चारूवर-दायग-सदा हि दित्तें।।23।।
दाहिण्ण-खेत्त-सुद-वड्ढिद-कित्ति-जुत्तो भट्टारगो भुवणकित्ति-जयंकरोत्थि।
णामेण अज्ज समए समयाणुसासी विज्जालए वि परमागम-सुत्त-इच्छी।।24।।

न कोई यहाँ श्वेताम्बर, न कोई दिगम्बर थे, यहाँ थे स्थानकवासी जिनभक्ति की मति वाले प्रवासी। वे सभी नारी-नर सागर रूप में एक सूत्री थे। वे सभी शुभ्रांगन में धवलवस्त्र धारी जय हो, जय हो का उद्घोष कर रहे थे।।19।। नंजनगुड ग्राम रम्य था संतों से शान्त भी। यह भव्यजनों से अत्यंत कर्मशील व्यक्तियों का स्थान भी है। यहाँ एकान्त से शून्य अनेकान्त पक्ष के पक्षधर आगे विहार कराते हैं मार्ग में अनुगामी बनकर, यही साख्य है अनेकान्त का और मानसरोवर के मानवों का।20।। श्वेताम्बर मुनिवर भी कहते हैं कि ये आचार्य विरागसागर तो यथानाम तथा गुण वाले हैं। ये शान्त प्रिय, परमागम सूत्र में निमग्न हैं, इनमें गहरे समुद्र की मुक्ताएँ हैं। ये वाणी प्रमाणी, जिनागम की नदी हैं और हैं नय पंथ के गामी भी।।21।। आपकी वाणी सरस्वती के स्वरों से पूर्ण सूक्त मुक्त है। वाणी से निःसृत स्वर मुक्ताओं के समान हैं, जिसमें मधुरता, ओज और प्रसाद की पात्रता है। जो न केवल उत्तर में, अपितु दक्षिण प्रान्त के श्रवण-बेलगोल आदि में प्राप्त हुई। उसके आस्वादन से हम श्वेताम्बर साधु उत्तम श्रेय मोक्षमार्ग की यात्रा समझ सके।।22।। इधर संध्या के समय लालिमा युक्त सूर्य आभा को लेकर कुछ क्षण गतिशील होते हुए भी यहाँ विराम ले रहा है वह देखता है और सोचता है कि यह सूर्य प्रवाल से पूर्ण महनीय है चारित्र से, जो आज दे रहा है उत्तम दीप्ति। सो ठीक ही है जो चारित्र की उत्तम परिणति को लेकर चलता है वह सदा चारित्र का प्रभाव छोड़ता है।।23।। दक्षिण क्षेत्र ने श्रुत संवर्धन किया, उसी से वह कीर्ति युक्त हुआ। भुवन में कीर्ति युक्त भुवनकीर्ति भट्टारक जयवंत हैं, तभी तो उनके नाम से आज के समय में समय की अनुपालना युक्त विद्यालय में परमागम एवं सूत्र के इच्छुक विद्यार्थी हैं।।24।।

ते आगदाण मुणि-माणस-हंसगाणं धण्णा कुणेंति णिय-जीवण-सागदेणं।
विम्हेज्ज-अज्ज कणगो गिरि-सव्वभागो णो अत्थि इंद-मणुजा तध मंगवादी।।25।।
हारिल्ल-हार-वण-भाग-पदे पदेज्जा दाएज्ज दाण-कणगो गिरि-अंचला वि।
सो केवलत्थ-बल-णंत-मुणिस्स तित्थो सिद्धंत-वागरण-सामि-सुपुज्ज-पादो।।26।।
भागिण्ण-पुत्त-भणजं भव-इट्ठकत्तुं णग्गज्जुणं विखदे समसिक्खणत्थं।
इट्ठोवदेस-बहु-इट्ठ-सुणाण-हेदुं तत्तो इमो कणग-हेम-सुवण्ण-णामो।।27।।
अत्थेव अत्थि विमलस्स गिरि त्ति रम्मो वच्छल्ल गो विमलसागर-सूरि णामं।
णिम्मेज्ज सेट्ठि पवरेण सुसेट्ठ भावे सो आर के जिण-सुसावग भत्त-सेट्ठी।।28।।
अस्सिं पवास-समए वरदत्त-णंदी धम्मो मयंक-मुणिसंघ-सुसाहु-साहू।
अज्जी वि पावणमदी मिलएज्ज सव्वे वच्छल्ल-साहु-समयोचिद-भावणाए।।29।।
सोवण्णसेल-अणुदंसण-हेदु-अण्णे अच्चंत-लोगपिय-सोणिय-सट्ठि-गांध।
तं खेत्त-सूरि-वयणं सुणिदूण सड्ढे सस्सूण धरपरिपुण्ण-मणाहिभूदा।।30।।

वे विद्यार्थी आगत मुनि रूपी मान सरोवर के हंसों का स्वागत करते हैं, वे स्वागत से अपने जीवन को धन्य करते हैं। आज कनकगिरि का सम्पूर्ण भाग कनक/सुवर्ण/सोने एवं सुवर्ण उत्तम जयघोष से वर्णों युक्त हो रहा था। यहाँ इन्द्र की तरह मनुष्य नहीं थे, फिर भी इन्द्र के समान विराग सागर के स्वागत के लिए उमंग युक्त हो रहे थे।।25।। इस प्रदेश में हरियाली की चादर ने पद-पद पर इन्हें स्वर्ण दान किया, क्योंकि कनकगिरि का अंचल जहाँ केवलज्ञान प्राप्त करने वाले का स्थान है, वह अनंतबल मुनि की तपस्थली। यहाँ पर स्वामी पूज्यपाद ने सिद्धांत, व्याकरण आदि की रचना से स्वामित्व दिया, वहीं इसके प्रत्येक पाद/अंचल को पूज्य बनाया।।26।। यहाँ आ.पूज्यपाद ने अपने भानजे नागार्जुन को इष्टभव बनाने के उत्तम शिक्षा पूर्ण इष्टोपदेश की रचना की। जो उत्तम ज्ञान के कारणों से इष्ट बनाने में सफल हुए। वे भी इष्टमार्ग के अनुगामी बने। आ. पूज्यपाद और नागार्जुन से इस स्थल को कनकगिरि, हेमगिरि एवं स्वर्णगिरि नाम से संबोधित किया जाता है।।27।। यहाँ है रम्य विमलगिरि वात्सल्य रत्नाकर आ. विमलसागर के नाम पर। जिसे निर्मित करवाया गया श्रेष्ठिप्रवर के द्वारा अत्यंत श्रेष्ठ भावों से। वे आर.के.जैन मुंबई के जिन भक्त, गुरु भक्त श्रावक हैं और श्रेष्ठी भी।।28।। यहाँ प्रवास के समय आ.वरदत्त, आ.कुशाग्रनन्दी, मुनि धर्मानंद, मुनि मयंकसागर के संघ आपस में अपनी साधुचर्या पूर्वक अपने-अपने योग्य साधुत्व की समयोचित् भावना से वात्सल्य भाव बनाते है। आर्यिका पावनमति ने तीर्थ के साथ गुरु वंदना की।।29।। कनकगिरि तो स्वर्णगिरि था, जहाँ अन्य लोग भी दर्शनार्थ आते हैं। अत्यंत लोकप्रिय श्रेष्ठी महिला श्रीमती सोनिया जी महाभाग उस क्षेत्र को देखकर एवं आचार्यश्री के वचन सुनकर अत्यंत श्रद्धा से सत्कार अश्रुओं को बहाने लगती है तथा वे वहाँ मन से अभिभूत कुछ करने का भाव रखती हैं।।30।।

तत्थेव फालिह-जिण पडिबिंब सोम्मं अप्पेज्ज तं इधगिरिम्ह वि अवणम्हि।
सोणत्थि मेत्त-कुणमाण-मुणीस-अज्ज णो घेत्त किण्णु परिदिण्ण-सुधम्म-एगं।।31।।
कल्लाण-मंदिर-णवं च विहाण-पूजं पत्तेज्ज सम्म-गुरु-गारव-सुत्त-णंदं।
सिद्धंतसागर-विसुद्ध-ससंग-साहू अग्गे चरे णयरचाम-सुपंत-पत्ते।। 32।।
अप्पेल चेत्त-महिजणा पहु-वीरजम्मो मेसूरए कुमुद-सूरि-मुणीस-णंदे।
वासेज्ज ठाणग-विराग-विराग-वंदे सो रंगपट्टणय-अक्खय-पाण-छंदे।।33।।
गामे पुरे तमिलणाडु-जणा ण जाणे के साहु-साहु-चरिया जुद-गंथचागी।
णग्गा इमे धरिद-पिच्छि-कमंडलुत्ति भासेंति हिंदि-बहुलं मुद-वेसधरी।।34।।
भत्ति च सत्ति-विगदं धण-दित्त-सव्वं णत्ता जदा इम-गणा चरिया-विचारा।
ते सव्व-अंजलिपुढं परिवज्झ-अत्ता पादारविंद-णद-आरदि-कित्ति-पत्ता।।35।।
विज्जालयंगण-गणी मुणि-साहगा दी सामाइगे परिगदे मणुजा वि दंसे।
सुज्जा-इमे सदद-भासिद-रत्ति-दिण्णे तत्तो पुरा पवल-भाव-पगास-कुव्वे।।36।।

वहाँ पर सोनिया जी के द्वारा एक स्फटिक की मूर्ति को जिनमंदिर में स्थापित करने के लिए सौंपी जाती है। आचार्यश्री उसे नहीं लेते, फिर भी मेलचित्तामूर क्षेत्र में स्थापित करने हेतु लक्ष्मीसेन भट्टारक जी को मठ के लिये दे दी जाती है।।31।। यहाँ कल्याण मंदिर, नवदेवता विधान पूजन की गई जहाँ से लोगों को गुरुओं का गौरव और शास्त्र का आनंद मिला। आ.सिद्धान्तसागर के शिष्य, मुनि विशुद्धसागर एवं शशांकसागर आदि तमिलनाडू की ओर चल पड़े तथा यह आ. विरागसागर का संघ चामराज नगर को प्राप्त हुआ।।32।। अप्रैल 11.04.2006 चैत्र सुदी तेरस महावीर जयंति मैसूर में बड़ी श्रद्धा के साथ मनाई जाती हैं यहाँ पर आचार्य कुमुदनंदी अति उत्साह से आचार्य विरागसागर की अगवानी पूर्वक स्वागत करते। आ.विरागसागर यहाँ के स्थानकवासी श्रावक संघ के स्थानक में निवास करके विराग की धरा छोड़ते, फिर वे रंगपट्टन में अक्षय तृतीया के अक्षयपान से लोगों को विराग की गति देते हैं।।33।। दक्षिण ग्राम या नगर में यह जानते कि कौन साधु है? साधुचर्या युक्त ग्रन्थ त्यागी कौन है? तमिलनाडू के लोग नहीं जानते, फिर भी नग्न ये पिच्छि कमंडलधारी हिन्दी भाषा बोलते हैं तथा प्रसन्न चित्त वाले हैं।।34।। ये भक्ति और शक्ति के बिना, धनादि से रहित जैसे ही साधु चर्या को समझते, वैसे ही वे सभी अंजलिबद्ध उन मुनियों के चरण कमलों में आरती एवं गुणानुवाद को प्राप्त हो गए।।35।। विद्यालय के प्रांगण में आचार्य विरागसागर और मुनि-साधक आदि सभी सामायिक में लीन हो गये थे, लोग उन्हें सूर्य सदृश प्रकाशवान देख रहे थे और सोच रहे थे कि ये सतत् सूर्य के प्रकाश वाले रात-दिन में प्रकाश फैलाते हैं, फिर भी ग्रामवासी उस प्रांगण में प्रकाश की व्यवस्था करते हैं।।36।।

रत्तीइ पाणसण-हीण-विरागि-रागी सव्वे भणेंति अणुरोहगदेंति गामी।
किंचिं च गेण्ह अणुकिच्च-कुणेज्ज अम्हे आसीस-पत्त-सयला विरमेंति णत्थि।।37।।
अग्गे हवेंति चरियाइ विमुत्त-सव्वे अण्णे दिणे हि अणुगाम-ससंग-गच्छे।
चत्तेज्ज मंस-मदिरं चर-णम्म-भावी आराहणं परम-पावण-मंत-झाणं।।38।।
ठाणे चरेज्ज अवरे अणुसासगा ते अण्णे पभासगद-गेह-णिय रमेंति।
आलोच्चमाण-सयला पडिभासएंति साहू इमे जच पवेस-तधेव अप्पं।।39।।
जत्थे चरेंति विहरेंति तधेव सोम्मं अप्प-सरूव-वयणं सरिदं वहेंति।
जत्तोजणा अदि-पसण्ण-पमोद-पीदिं पत्तेंति णंद-गुरु-गारव-संत-वाणिं।।40।।
जाणेंति जे वि मणुजा मणु-भावणं च ते हाणि-लाह-विमुहा गुरु आदरं च।
देंति त्ति णेंति सुद-सुत्त-सुगंध-णिच्चं धण्णा कुणेंति विण-जम्म-सदा णमेंति।।41।।
छक्कोत्तरे खा-पुरे इग-भत्त-जेणी किण्हागिरी-किस-कसाय-विमुत्त-णेही।
सज्झाय-काल-वयणादु पवाह-सव्वे पत्तंक-पत्त-पमुहा आदि-भत्ति-गत्ता।।42।।
पासंसगे दिवस-पत्त-दिवंध-जोई जस्सिं च साहु-समणाण पसंस-मूले।
जाणेंति जे वि अणुसीलण-भावएंति ते गाम-गामपुर-अग्ग-गदा हवेंति।। 43।।

संघ में विरागी और रागी दोनों ही तरह के व्यक्ति थे, वे भी रात्रि असन-पान आदि के त्यागी थे, फिर भी ग्रामजन अनुरोध करते हैं कुछ ग्रहण करने के लिए। स्वयं को अनुग्रहीत होने के लिए। हम सभी चाहते हैं आशीष, जो उन्हें प्राप्त होता है, फिर भी वे वहाँ से अर्थात् मुनियों की सेवाभाव से नहीं हटते हैं।।37।। वे सभी चर्या के विहीन दूसरे दिन विहार काल में उनके अनुगामी बनते हैं। वे संग/साथ में दूसरे ग्राम तक जाते हैं वे आराधना, परम-पावन मंत्र के ध्यान को समझते हैं तथा नम्रीभूत सभी मांस, मदिरादि को छोड़ते हैं।।38।। वे लोग अनुशासक स्थान पर विचरण करते हैं फिर भी लोग अपने गृह के द्वार बंद कर लेते हैं। कुछ लोग कहते हैं कि ये साधु जहाँ निवास करते हैं वहाँ ही अपना स्थान बना लेते हैं।।39।। जहाँ पर मुनिजन चलते हैं, विहार करते हैं वहाँ पर अपनी सौम्यता एवं आत्मस्वरूप वचन की सरिता बहा देते हैं। जिससे लोग अति प्रसन्न प्रमोद एवं प्रीति को प्राप्त होते हैं। वे सभी हर्षित गुरु के गौरव को समझते हैं और संत की वाणी को जीवन का आधर बनाते हैं।।40।। जो मनुष्य जानते हैं मनुभावना को/ आचार्य की भावना को, वे हानि-लाभ आदि से विमुख गुरुओं को आदर देते हैं। वे उनसे श्रुत सूत्र रूपी सुगंध को लेते हैं, फिर अपने जन्म को सफल करते हैं तथा उन्हें नमन करते हैं अर्थात् गुरुओं को सम्मान देते हैं।।41।। 25/4/2006 को कृष्णगिरि तो मानो कषाय से रहित कृष्णमयी हो गई थी, वहाँ का एक जैन परिवार के प्रसास से स्वाध्याय काल में जिन वचन के कारण सभी प्रभावित हुए। समागत जन, पत्रकार आदि सभी भक्ति को प्राप्त हुए।।42।। पत्रकारों के द्वारा दैनिक पत्रों में जो साधु श्रमणों की प्रशंसा में प्रमाण दिए उससे दिवान्ध लोगों को भी ज्योति प्राप्त हुई। जिन्होंने भी जाना या पढ़ा वे सभी ग्राम, पुर आदि के लोग आगे आए मुनियों के स्वागत के लिए।।43।।

सूरी इमो दिणयरो दिव-दिप्प-तेजो दोण्हं च दिव्व-समए समयं गणेंति।
गच्छेज्ज सूरि-गदिसील-दिणेस-गच्छे सीदं पदेज्ज अणुधाव-सुमेह-संघे।।44।।
छाही-समग्ग-मुणि-णायग-छत्त-अंगी अम्मो रसाल-पहमाण-कुणंत-छाही।
चारित्त-सिंचिद-इमो अणुजायदे हि णिग्गंथ-णंदण-वणे गद-गंथ-सव्वे।।45।।
धम्मप्पहावण-इमो सिरिसंघ-सत्ती भत्ती-पमोद-सम-दिट्ठि-सुसंति-पुण्णो।
दाहिण्ण-गाम-अणुचारि-इधे सुधम्मं दाणं कुणंत-सुद-तंत-सतंत-हेदुं।।46।।
जे अत्थि संत-किरिया-चारियाणुभिण्हू ते अज्ज पासिद-मुणिं असणं च पाणं।
लोंचं च पस्स-अहिभूद-मुदासु-णेत्ते सम्मादरेज्ज गुरु-धम्मंपहावणं।।47।।
सो बेंगलोर-णयरं तमिलं च पंतं होसूर-सावर-सिगार-अणेग-गामं।
पाडी वि आवलुर-पोण्णुर-आदि-खेत्तं तावत्थलं लहदि कुंद-मुणीस-पंतं।।48।।
जो पंडिचेरि-परमादरणिज्ज-भादू राजेस-अज्ज-इदिवुत्त-सुचित्त-लेहं।
पस्सेदि आइरिय-आदि-महाइकित्तिं सो सम्मदिं च विमलं-मुणीस-मुद्दं।।49।।
अस्सिं ण अत्थि सु विरागि-विरागसूरी पण्हे दु उत्तर-सडीग-गणी प वादे।
इत्थिम्हि पाद-सयला हि समाहिदा हि भत्तिं गुरुं गुरुयरं महणिज्ज-लोए।।50।।

ये सूर्य हैं और प्रभाव में सूर्य अपना तीव्र तेज उपस्थित करेगा, दोनों दिव्य हैं, किन्तु समय ने समय/सिद्धान्त को महत्त्व दिया, जो समय को गिनते हैं समय की वास्तविकता जानते हैं वे ही गतिशील होते हैं। सूरी गतिशील और सूर्य भी। दोनों चल पड़े। इधर मेघों ने दौड़ते हुए अपने संघ के साथ इस संघ को शीतलता प्रदान की।।44।। मुनियों और मुनिनायक ने विहार करते हुए छाया को प्राप्त किया। आम्र का छाया, तो रसाल को दर्शाने वाले हैं, उत्तम की छाया पथिकों को प्रेक्षामान बनाती है। ये चारित्र सिंचित आचार्य हैं। इस आम्र रूपी नंदन वन में निर्ग्रन्थ नंदनों से स्थित है मानो यह दर्शाने के लिए कि आम्र भी निर्ग्रन्थ है।।45।। धर्म प्रभावना युक्त यह श्री संघ भक्ति, शक्ति युक्त, प्रमोद एवं समत्व दृष्टि लिए हुए अत्यंत शान्तिपूर्ण दक्षिण के तमिलनाडू प्रान्त में विचरण कर रहा था। जो श्रुत तंत्र के कारणों से विहीन जनों को अपने तंत्र की शिक्षा दे रहा था।।46।। जो संत क्रिया एवं चर्या से अनभिज्ञ थे, वे आज देखते मुनियों के आसन/आहार एवं पान को। वे लोंच देखते ही अभिभूत होते हुए हर्षित नेत्रों में आसुँओं से परिपूर्ण गुरु की धर्म प्रभावना को सम्मान देते हैं।।47।। संघ बैंगलोर के पश्चात् तमिलनाडू प्रांत होसूर, सावरपट्टी, सिंगारपट्टे आदि अनेक ग्राम को प्राप्त हुआ। वह संघ पेरियावाडी, मलप्पापाडी के पश्चात् आवलुरपेटे आदि के साथ पोन्नूर में प्रवेश किया। यह क्षेत्र आचार्य कुन्दकुन्द का तपस्थली क्षेत्र माना जाता हैं।।48।। पाण्डिचेरी से समागत आदरणीय राजेश भैया देखते हैं चित्रांकन को। जो आचार्य आदिसागर अंकलीकर, आ.महावीरकीर्ति, आ.विमलसागर, आ.सन्मतिसागर जैसी मुद्रा को देखते हैं।।49।। इन चित्रों में मैं नहीं, फिर भी मैं हूँ आप सभी, विरागी और विरागसूरी भी। प्रश्न होने पर उत्तर में आचार्य श्री ने कहा- हाथी के पैर में सभी समाहित हो जाते हैं। गुरु की गुरुतर भक्ति को लोक में महनीय माना गया है।।50।।

आहार-कोल-पुर-जादि विहार-अण्णे गामं पडिं चरदिसंघ-सुसंझ-कालं।
विस्सामरत्ति-रिसणल्तुरगाम-भागे जाएज्ज किण्णु इग छण्ण-सुविट्ठि-जोगो।।51।।
पालिम्म-गाम-चरमाण-विसाल-संघो आसंक-सील-उवसग्ग-सुजाण-माणो।
बुद्धी पबुद्धि गण-आइरियस्स सेट्ठां सो संस मुत्त-अणुपत्त-इणं च खेत्तं।।52।।
गामिल्ल-गाम-णर-णारि-सुसास-बज्झा भुंजेज्ज वत्थु-इडलिं फल-दुद्ध-डोसं।
आवेदएति कुणमाण-करंजलीए पादारविंद-सिरिफल्ल-फलं च णिक्खे।।53।।
णिग्गंथ-साहग-सदा इगवार-भुंजे णीरंण णेंति असणं कध णेंति अण्णं।
भो माणुसो! तुम जय-सील-सुसंत-भावी चारेज्ज मंस-विरदा मदिरादिचत्तं।।54।।
अणंग-मुत्त-अंगी सो, विराग-बंध-पंथिणो। णएज्ज लेह-सायरो, महेज्ज व्यारिणंदिणो।।55।।
हेयोपादेय-दिट्ठिंच णेदूण चरदे सदा। विराग-दाण-हेदुत्तं, दंसिदुंजण-अंगणे।।56।।

कोलामंडल में आहार होता है, वहाँ से अन्य ग्राम की ओर विहार हो जाता हैं। संघ को सन्ध्या हो गई तब विश्राम के लिए रिण्ल्लूर ग्राम में पहुँचे। परन्तु वर्षा होगी ऐसा संदेह हो गया।।51।। आचार्य का विशाल संघ विहार करता हुआ पालियम पहुँचा, जहाँ उपसर्ग की आशंका जानते हुए भी आचार्य की बुद्धि उत्तम कार्य करने में समर्थ हुई। वह संघ आशंका से रहित इस क्षेत्र में विश्राम कर सका।।52।। ग्रामीण, ग्रामवासी नर-नारियाँ अनुशासनबद्ध इटली, फल, दूध, डोसा आदि खाने के लिए कहते हैं। वे अंजलीबद्ध निवेदन करते हैं और उन श्रीचरण कमलों में श्रीफल एवं अन्य फल आदि चढ़ा देते हैं।।53।। हम निर्ग्रन्थ-दिगम्बर संत हैं। एकबार भोजन करते हैं। हम नीर/जल भी नहीं लेते, फिर भोज आदि कैसे ले सकते हैं ? भो मानुष! आप सभी जयशील हो, सुशान्त स्वभावी हो। अतः मांस, मदिरादि त्याग दें तो आप अति श्रेष्ठ हो सकते हो।।54।। सत्य तो यही है कि निर्ग्रन्थ अनंग से मुक्त, अंगागमों की दृष्टि वाले होते हैं। वे विराग पंथ के पथिक, सम्यक्त्व मार्ग तो लेते हैं इसलिए वे उनके लेख सागर बने रहते हैं, वे वारिमंदी/अंग आगम रूपी सागर है तभी तो उनका मंथन करते हैं।।55।। जो हेय-उपादेय दृष्टि को लेकर चलते हैं सदा, वे ही विरागदान के कारणों को दर्शाते हैं। वे जन-जन के प्रत्येक भाग में विराग ही विराग चाहते हैं।।56।।

इदि समत्तो तैंयालीस विरागो।

चवालीस-विरागो

दिगंबरो दिगेसो हि, दिग-दिस-सु-अंबरो दिग-भासुर-दीवो त्ति, दिग-हिग-दिगंबरो।।
लोए विभिण्ण-मणुजा मदिहीण-पुण्णा पस्सेंति णो विविह-साहग-साहिगाणं।।1।।
पाढं पढेंति ण गणेंति मुणेंति किंचिं हूहं कणेंति भमएंति जणाण णिच्चं।।2।।
दाहिण्ण-खेत्त-पुरए हि दिगंबराणं खेत्तो त्ति अज्ज सयलेसु सुमुत्ति-बिंबा।
चारित्त-चारि-अणुचारि-विचारि-साहू फासं कुणेंति ण पुरं पुरगाम-भागं।।3।।
रागी विदोसि-बहुला जगदे जणा वि णंदेंति दोस-कलहं परिसिंचणम्हि।
संता सदा परम-संत-मदिस्सहावी तत्थे चरेंति जघ रोध-विरोध-भावी।।4।।
सत्थउहा सवर-कुंतल-भल्ल-लट्ठिं घेत्तूण कूर-पुरिसा आणुधवेंति।
तं पस्सिदूण वसणं रहिदं च लोगं णग्गाण णो वसणामाण-इधेव अत्थि।।5।।
णिब्भीग-साहग-विरागि-मणे असंती जाएज्ज णो परम-भावदिगंबरो त्ति।
रोहेंति तत्थ विरमो परमो विरागी फुक्कार-सप्प-विस-घादग-अप्पघादी।।6।।

दिगम्बर तो दिगेश/सूर्य हैं, दिशा ही जिसकी ओढ़नी है, उसी पर स्थित भ्रमण करता है अपने दिव्य तेज को लेकर। वे दिग्-भासुर दीप सर्वत्र आडम्बर विहीन होने का उपदेश देते हैं।।1।। इस संसार में नाना प्रकार के मनुष्य हैं, परन्तु जो मतिहीन से पूर्ण हैं वे देखते हैं साधक -साधिकाओं को, पर देखना नहीं चाहते हैं। वे पाठ पढ़ते नहीं, उनको समझते नहीं और न उन पर विचार करते हैं। वे तो हूहा करते और नित्य ही लोगों को भ्रम में डालते रहते हैं।।2।। पुराकाल में दक्षिण क्षेत्र दिगम्बरों का क्षेत्र था क्योंकि आज भी वहाँ अनेक भागों में एक से एक मूर्तियाँ हैं। जो दिगम्बरत्व की चर्या, चारित्र की अनुशंसा को व्यक्त करते हैं। वहाँ के साधु इस मार्ग पर चलते हैं, पर उन क्षेत्रों, ग्रामों, पुरों या भागों को स्पर्श नहीं करते हैं।।3।। इस जगत् में रागी, दोषी जन बहुत हैं, वे द्वेष-कलह सींचने में आनंद मानते हैं। परन्तु जो शान्त स्वभावी बुद्धि वाले संत होते हैं वे वहाँ विचरण करते है जहाँ विरोध ही विरोध रहता है।।4।। क्रूर पुरूष तो शस्त्र, आयुध, कुंतल, भाले, लाठी आदि लेकर आ जाते हैं, वसन रहित लोगों को देखकर। वे कह उठते यहाँ नागों '**नग्नों**' का नहीं प्रवेश, यहाँ तो वस्त्र धारक ही आ सकते हैं।।5।। निर्भीक साधक एवं विरागी के मन में यह अशान्ति घर कर सकती है, पर परम दिगम्बर भाव युक्त आचार्य विरागसागर इस पर विचार नहीं करते हैं, क्योंकि ग्राम से विचरण तो करना होगा। रोकते हैं लोग, परन्तु वे आचार्य सर्प की फूत्कार या उसके घातक, आत्मविष पर विचार नहीं करते। अपितु वे तो विष को दूर करने के लिए चल पड़ते हैं।।6।।

णिग्गंथ-रूव-मुणि-माणस-राय-हंसा साहेंति साह-पडिसाह-विदोसि-जूहं।
किण्णुत्ति तेण विरमेंति तघा विघोसं कुव्वेंति वत्थगहि दुंतध गाम-पत्तं।।7।।
मुत्तप्पहास-मुद-भासि-मुणीस-एसो संतं सहाव-परिणाम-विचार-मूलं।
घेत्तूण हत्थ-पुर-अग्ग-गदो हि सूरी जप्पेदि मंत-घडिघंडसुसज्झ-पूरी।।8।।
तस्सेव पूद-परमागम-सत्ति-भत्ती कुव्वेदि पावण-परं च विरोह-रोहिं।
उक्किट्ट-भाव-परिदंसण-मेत्त-सव्वे चारित्त-चारूचरणे पणमेंति णंदे।।9।।
णारी-णरा दहिण-खेत्त-पवासि-वासी सोम्मासहावि-अदिसंत-सुसेव-भावी।
साहूण दिव्व-परिदंसण-अज्ज-दंसी अच्छेर-गत्त-रमणी रमएज्ज तत्थ।।10।।
गच्छंत-सूरि-दहिणे पुर-णारि-पुव्वे णीरंजणा हि घड-णीर-गिहंत-माणा।
रोमंचभूद-णयणेहि सुकामकेलिं इच्छेज्ज भावण-मदी पवहेंति णीरं।।11।।
संतिप्पियों वि वसहो अणुतिव्वगामी मज्झिल्ल-मज्झ-अणुचारि-इणं पमाणी।
जाएज्ज हं च पहु-आदि-सुलक्खणो म्हि तुम्हे विसाल-घवलंग-सु-संत-सीलो।।12।।
पुण्णाणुबंध-इग-बाल-सुचालगं च संपेरदित्ति परिदंसण-भाव-मुत्ति।
दंसेज्ज सो वि गदिहीण-कदा विधादं जादेत्तिणो विजणणी ममदा पपुच्छे।।13।।

निर्ग्रन्थ रूप माने तो मान सरोवर के राजहंस हैं। वे विद्वेषियों के समूह को शाखा-प्रतिशाखा में समझाते हैं, किन्तु वे उद्घोष करते हैं कि जब तक ये वस्त्र धारण नहीं करेंगे, तब तक ग्राम में प्रवेश नहीं कर सकेंगे।।7।। वे मुक्त प्रहास, मृदु-भाषी मुनीश तो शान्त स्वभाव परिणाम मूलोत्तर गुणों को लेकर आशीष से हस्त आगे करते हुए सूर्यमंत्र को संघ सहित स्वाध्याय युक्त जपते हैं।।8।। उनकी पवित्र परमागम शक्ति और भक्ति तो विरोधियों के विरोध को शान्त करती है, उन्हें पावन बना देती है। वे सभी उत्कृष्ट भाव युक्त निर्ग्रन्थों के परिदर्शन मात्र पूर्वक चारित्र रूपी उत्तम चरणों में हर्ष पूर्वक झुक जाते हैं।।9।। नारी हो या नर दक्षिण क्षेत्र के रहने वाले सौम्य स्वभावी होते हैं, वे अतिशान्त, सेवाभावी भी होते हैं। वे साधुओं के दिव्यदर्शन करते हैं। आप आर्यदर्शी। वे आश्चर्य युक्त और उनकी रमणियों के गात्र भी आश्चर्यचकित उन्हें देखकर रम जाती हैं।।10।। दक्षिण में विहार करते हुए सूरी तो मानो पूर्व-पश्चिम की नारियों का आभास करा रही थीं, तभी तो वे नीरांजना घट में नीर भरते हुए बहने वाले नीर पर ध्यान नहीं देतीं, अपितु वे तो रोमांचित नयनों से उत्तम इच्छाओं को प्राप्त हो रही थीं। तभी तो उनकी भावना युक्त मति घट के मरने पर भी घट के नीर को बहा रही थी।।11।। वृषभ तो वृषभ/धवल होते हैं, वह तो शान्तिप्रिय यदि तीव्र गतिशील संघ के बीचों-बीच अनुगमन कर निकल जाता है तब वह यही संबोधित करता है कि मैं आदि प्रभु का लक्षण/चिन्ह हूँ। आप सभी शान्त संत धवलादि अंग ग्रन्थों की विशालता में लगे हुए साधु हैं यही लक्षण मैं देना चाहता हूँ।।12।। पुण्यानुबंध के प्रबल योग से एक बालक जो माँ को स्कूटर पर बैठाकर ले जा रहा था, वह मुनियों की मूर्ति को/निर्ग्रन्थ दिगम्बर मुद्रा को देखता है। देखकर स्कूटर की गति धीमी करता है तभी एक अन्य वाहन की टक्कर से घायल हो जाता है, तब ममतामयी जननी पूछती है कि चोट तो नहीं आई।।13।।

पसण्ण-सभभूद-समत्त-जुत्तो पुत्तो पपुच्छदि वि तं जणणिंजहेट्ठं।
इट्ठो हि इट्ठ-गुरु-दंसण-कारणेणं णम्मो हवेज्ज णिय-मग्ग-पुणो चरेदि।।14।।
संघो चरेदि पुरयेर-अणेग-ठाणे कंजीपुरं तिरूपणं च कलादि-खेत्तं।
मुत्तीण भव्व-कलमंदिर-दंसणिज्जा दंसेज्ज अग्ग-अणुगामि-सदा हवेज्जा।।15।।
छक्के सुदं च अरहंत-गिरिं च खेत्ते सत्थाण सो धवलकित्ति-भडारगो वि।
वावीस-साहु-कचलुंच-इधं कुणेंति सव्वाण माणव-मदीण विसाल-दिट्ठी।।16।।
जेणेदराण उवसग्गगणी सुणेज्ज तं देवसेण-मुणि णायग वारणं चं।
जप्पेज्ज कारण-सुहं अणु भूयएज्जा सोम्मं गिरी च अरहंत अरं च धदुं ।।17।।
मूगो वि दंसग-मुणीण कुणेंति णिच्चं ते मूग-माणव-पसू परिचत्तएंति।
तं संझ-काल-इग-मूग-सुधणरं च दंसेज्ज सूरिपवरो पड-पोत्थ-खुल्लं।।18।।
आसीस-पत्त-इणमो अवि सूरि-पासे मुद्दाइ संत-सरलो अणुचिट्ठदे सो।
एगो णत्थ अवरा बहुवाणरा वि णं अप्प-जम्म-सहलं अणुगच्छ-गच्छे।।19।।
पारंभ-जूण-वइसाह-महा हि उण्हा जत्थेव वारिस-कदा विण होदि अत्थ।
जे वत्थहेदु-कधणं कुणएंति देसं वासादुकारण-जणा बहु-अच्छदेज्जं।।20।।

वह सौम्य प्रसन्न समत्वभूत समतामयी पुत्र अपनी मातुश्री की भी कुशलक्षेम पूछता है। तब वह कहती - सब कुशलमंगल है, इन उत्तम गुरु दर्शन के कारण से। वह नम्र होता हुआ पुनः अपने मार्ग पर चल पड़ता है।।14।। संघ येरमूर आदि स्थानों के पश्चात् कांजीपुर, तिरूपनमूर, कन्दरे आदि के स्थानों की कलात्मक प्रतिमाओं का दर्शन करते हैं। वहाँ के भव्य कलापूर्ण मंदिर आदि भी दर्शनीय थे। वे सभी दर्शनीय स्थलों का दर्शन करते हुए अग्रगामी बने रहे।।15।। सन् 2006 दि.1/6 जून को श्रुत पंचमी पर्व पर अरहंतगिरि क्षेत्र में शास्त्रों की विधिवत् पूजन की गई जहाँ भट्टारक धवलकीर्ति भी, अपनी धवलता से इस क्षेत्र को पवित्र कर रहे थे। यहाँ पर 4.6.2006 को 22 साधु केशलोंच करते हैं तो मनुष्यों की मति की विशाल दृष्टि भी साक्षी बनी।।16।। अरहंतगिरी में आचार्य श्री देवसेन महाराज के संघ पर जैनेतर लोगों के द्वारा किए गए उपसर्ग का समाचार सुन, साधुवत्सल्य से पूरित पू. गुरुवर ने ससंघ, उपसर्ग निवारण हेतु बडी शांतिमंत्र की सामूहिक जाप्यानुष्ठान किया और जापपूर्ण होते ही उपसर्ग निवारण का सुखद समाचार मिला।।17।। मूक भी मुनियों के दर्शन करते हैं, वे मूक हैं मौन हैं सदैव। मानव भी मूक और पशु भी। पर पशुत्व जो छोड़ देते हैं वे मानव श्रेष्ठ हैं इस लोक में। इस दृश्य को सन्ध्या के समय प्रतिक्रमण काल में आचार्यश्री एवं अन्य मुनिराज देखते हैं कि एक वानर पुस्तक की पोटली खोल देता है।।18।। वे सूरी शान्त थे, यह वानर भी शांत समीप में स्थित हो जाता हैं। यही एक मात्र नहीं, अपितु अनेक वानर आ जाते हैं वे मानो अपने जन्म सफल करने के लिए इस गच्छ से गच्छ में लेने का आशीष चाहते रहे थे।। 19।। जून/वैशाख माह के प्रारंभिक अवस्था में जहाँ कभी बरसात नहीं होती थी, जहाँ गर्मी ही गर्मी थी। जहाँ के लोग दिगम्बरों को वस्त्र धारण करने के लिए कहते, वहाँ प्रवेश पर विरोध करते हैं वे ही दिगम्बरों के आगमन के पूर्ण बरसात का लाभ लेते हैं और आश्चर्य को प्राप्त होते हैं।।20।।

णिग्गंथ-गंथ-सयला परिचाग-सीला चारित्त-णाण-बहुसत्थ-पमाणकारी।
दाएज्ज वारिस-जलं वर-णाण-सिक्खं दाहिण्ण-उत्तर-पपंत-सुसंत-हेदुं।।21।।
साहस्स-अट्ठ-मुणिठाण-वलत्ति पीढं सूरी-विसाह-तव-साहण सम-भागे।
पासस्स मुत्ति-मण-भावण-दंस-पुव्वं अग्गेचरेदि करूणाकर-सील-धरी।।22।।
गामे पुरे व णयरे जिण-आण-सिक्खं दीणं च हीण-पसु-पक्खि-अणंत-जीवं।
णिग्गंथ-संत-वण-कंत-मुणीस-दिट्ठिं दंसेज्ज ते तमिलणाडु-जिणा जिणादी।।23।।
अस्सेव-खेत्त-करूणाणिहि-मुक्खमंती अज्झेदि सुत्त-जिण-आगम-कव्व-मालं।
सव्वोदयी-समण-सहग-मूल-भावो किं अत्थि एस तमिले अणुवाद-पेक्खे।।24।।
सोसंघ-चारूचरियाइपउत्त-सीलो मेलाइचित्त-पुर-खेत्त-समीव-पत्ते।
सड्ढालु-सीलगुणि-धीर-जणा हि सव्वे बज्झत्थ-हत्थगुरु-दंसण-बज्झमुत्ता।।25।।
दिव्वंचला गिरि-विसाल-पहाण-खंडा अत्थित्ति मुत्ति-जिण-दिव्व-गुहारि-मज्झे।
सो मेलचित्त-चिद-चंद-कुणंत-सूरी लच्छीइसेण-भड-भत्ति-पवासएंति।।26।।

वे कह उठते- ये निर्ग्रन्थ तो समस्त ग्रन्थ के त्यागी हैं। वे चारित्र, ज्ञान एवं अनेक शास्त्रों के जानकार हैं। वे ज्ञान देते हैं और इनके आगमन से दक्षिण हो या उत्तर सभी प्रान्त जहाँ जलीय वर्षा को प्राप्त होते हैं वहीं शान्त वातावरण उत्पन्न करते हैं।।21।। आचार्य विशाखा की तपस्थली, साधना का रम्य भाग तथा 8000 मुनियों के स्थान वलत्रीपीट के 1 किमी पूर्व सम्यक् ज्ञानगुफा को प्राप्त हुए। जहाँ पर पार्श्वनाथ की मन भावन मूर्ति के दर्शनपूर्वक आगे चल पड़ते वे करूणा के सागर शीलव्रतधारी।।22।। निर्ग्रन्थ संत तो वन को कान्त बना देते हैं, मुनीष दृष्टि को जो भी देखते हैं, वे ग्राम, पुर एवं नगर में जिनाज्ञा की शिक्षा को पा जाते हैं। दीन को, हीन को, पशु को, पक्षि को एवं अनंत जीवों को जीवन दान मिलता है। तमिलनाडू के जैनेतर जन इसके प्रमाण बनते हैं।।23।। तमिलनाडू के मुख्यमंत्री करुणानिधि तो इस क्षेत्र में करूणा प्रदान करते हैं। वे स्वयं जैनसूत्र, आगम एवं जैन काव्यों का अध्ययन करते हैं। आचार्य प्रवर की लेखनी से प्रसूत **'सर्वोदयी दिगम्बर जैन मुनि'** की पांडुलिपि सराहनीय है। इसे तमिल भाषा में अनुवाद करके प्रस्तुत किया जाए तो दक्षिण की यात्रा अत्यंत सफल मानी जाएगी।।24।। वह संघ मेलचित्तामूर क्षेत्र के समीप पहुँचा। वहाँ बंधे हाथ आए व्यक्ति भी बद्ध मुक्त हुए। वे श्रद्धालु, शीलगुणी एवं धीरजन बन गए।।25।। इधर इस क्षेत्र में सर्वत्र दिव्यता है। गिरि विशाल और पाषाणखंड भी विशाल है। यहाँ की गुफाओं के मध्य में हैं विशाल जिनमूर्तियाँ, जो चित्त में चार चांद लगा देती है। सो ठीक है मेलचित्तामूर में आचार्य विरागसागर जैसे साधुओं के आगमन से चित्त में प्रसन्नता तो होगी ही क्योंकि यहाँ पर लक्ष्मीसेन जैसे भट्टारक की भक्ति से यहाँ सभी प्रवास की इच्छा करते हैं।।26।।

विज्जू-तरंग-घण-हिंडय-वायु-वेगो वेसाह-साह-तरू-डोल-पचंड-रूवो।
तं संति-हेदु-मणणायग-संतिजावं कुव्वेंतिसाहु-सयला सुह-संति-पुण्णं।।27।।
लोए पचंड-मणुजा ण हु केवलो त्ति वाउत्ति पावस-पवाह-पसुत्ति पाणी।
णिब्भीग-तावस-दिढं अणुडोलणत्थं ओसग्ग-कुव्व पहगदिं ण चलेंति तेसिं।।28।।
पारिक्खमाण-पयडी पयडि च जाणे तत्तो वि तं च उवसग्ग-कधं कुर्णेदि।
राहू गहित्थ-दिणणाध-दिवं ण खीणं जाएज्ज तेज-फुरमाण-दिगंतरम्हि।।29।।
खीणो सहावि-दिणसामि-कदा ण होज्जा सूरी पदावि-जण-णायग-दिव्व भासी।
ओसग्ग-कूर-मुणमाण-सदा तवं च विस्सस्स-संति-परमं अवि इच्छमाणो।।30।।
सज्झाय-सील-इणमो अणुजोग-पुव्वं पण्हाण उत्तर-ससुत्त-पमाण-वुत्तं।
वंदित्तु-सव्व-अरहंत-मुणीस-इट्ठं इट्ठेव इट्ठ-भवियाण जणाण णिच्चं।।31।।
चेण्णेइवासि-सुमणो परिवाददे तं सड्ढाइ तं गुरुवरं ण इमे कदा वि।
णिग्गंथ-दंसण-णमं च कुर्णेति के वि अज्जेव सड्ढ-वयणं सुणएंति सव्वे।।32।।

मेलचित्तामूर में 20/6/2006 में कड़कड़ाती बिजली एवं वायुवेग वैशाखमाह में तरूशाखाओं को प्रचंड कर देता है, तब आचार्य श्री रात्रि में जागृत हुए सभी साधु भी। इसकी शान्ति की कामना के लिए शान्ति जाप करने लगते हैं। जिसकी कुछ समय शान्ति हो जाती है पूर्णत:।।27।। इस संसार में केवल मुनष्य ही प्रचंड नहीं होता है, अपितु पवन, वर्षा प्रवाह, पशु या अन्य प्राणी भी। वे निर्भीक, दृढ़ तपस्वियों को विचलित करने के लिए नाना प्रकार के उपसर्ग करते हैं, परन्तु मार्ग पर गति से वे विचलित नहीं होते हैं।।28।। प्रकृति भी परीक्षा प्रधानी होती है, सो ठीक है, क्योंकि वह भी प्रकृति/निर्ग्रन्थ को समझती है, फिर भी उन पर उपसर्ग क्यों करती है? दिननाथ राहु ग्रसित तो किया जाता है, पर वह अपनी दिव्यता नहीं छोड़ देता है। वह तो गतिशील तेज फैलाता हुआ दिशाओं को तेजस्वी बनाता रहता हैं।।29।। अरे! इस जगत् में दिनस्वामी क्या कभी क्षीण हुआ है? उसी तरह सूरी तो प्रताप फैलाने वाले जननायक दिव्यता/अरहंतवाणी का आभास कराते हैं। वे जानते हैं क्रूर उपसर्ग को, फिर भी तप करते हैं। वे तो परम विश्व की शान्ति के इच्छुक होते हैं।।30।। वे स्वाध्याय शील अनुयोगपूर्वक प्रश्नों का उत्तर देते हैं, सूत्र प्रमाण समझाते हैं- '**सुयणि भद्दबाहु गमयगुरु भयवदो वयओ**' वंदित्तु सव्वसिद्धे, सव्व-संजदे सिरसा आदि। अरहंत, आचार्य आदि सभी इष्ट देते हैं। इसलिए जो इष्ट हैं, उन इष्ट जनों को वे सदैव नमन करते हैं।।31।। चेन्नई निवासी सुमन ने कहा कि ये श्रद्धा से रहित कभी भी हमारे गुरुवर को नहीं देखते है। वे निर्ग्रन्थ के दर्शन नहीं करते और न कभी भी कोई नमन करते हैं। वे ही आज श्रद्धा से आपके वचन को सुनते हैं।।32।।

णेणार-माणुस-मणा दिमसेय-सव्वे जेणी-जिणा हि जिणभत्ति-विहीण-णंदे।
तुम्हे सुसुत्त-परमागम-अत्त-वयणं सुण्णेज्ज संति-सरला परिणाम-जुत्ता।।33।।
अग्गे गदी-रामण-सूरि-मुणीण जादि उण्हे भवे मणुज-तत्थ-वियाकुलो त्ति।
जत्थे हवेदि वरिखा दिवदीव-पच्छा अस्सिं पवेस-बडुमेह-सुवास-कुव्वे।।34।।
अस्सिं च आगमण-जाण-जणा पफुल्ला वच्छल्ल-णिम्मल-सहावि-गुरुं च गाणं।
कुव्वेंति सागद-सुगीद-सुवज्ज-संगे जंगल्ल-मंगल-समंदर-रेगित्थे।।35।।
सो अज्ज चित्त-मढगे जिण-जिण्ण-सत्थं संरक्ख-भावण-मदी सयला हि साहू।
ताणिं च सत्थ-पडिपत्त-विसेस-पत्तं लेहेंति सोह-भवणे परिणिक्खवेंति।।36।।
चादुरमास-समयं णिगडं च अतिथ एगो वि भत्त-परिवंदण-पुव्व-भासे।
णाणं च चंद पडिपण्हय-उत्तरम्हि जत्थेव ठावण-हवे तध ठाण-मासो।।37।।
सज्झाय-जुत्त-मुणिणाध-सदा हि चिंते चित्त णएंति जिणवाणि-विराग-सुत्तं।
सज्झाय-हेदु-भवणं अवि णाम-तस्स सम्मं कुणेदि परिठावदि सत्थ-सव्वं।।38।।
पासे हि पास भगवं जणइच्छमाणा जिण्णं च मंदिर उवंकर-सत्थ-रक्खं।
तत्थे कुणेज्ज अदिभव्व-गुणाकिदिं च तित्थं च सेव-जिणसेव-अणण्ण-सेवा।।39।।

नैनार समाज का सम्पूर्ण जन मानुष, दिगम्बर-श्वेताम्बर जैनी, जिना, जिनभक्ति विहीन जैनेतर आज प्रसन्न हैं वे आपके सूत्र, परमागम एवं आप्त वचन को सुन सके। जिससे उनके परिणामों में शान्ति एवं सरल भाव उत्पन्न हुए।।33।। आगे गतिशील थे सूरी और मुनि जन । जहाँ तमिलनाडु में गर्मी की तपन से लोग व्याकुल हो रहे थे, जहाँ दीपावली के पश्चात् वर्षा होती थी, वहाँ इन मुनिजनों के प्रवेश से अनेक मेघ आए और वर्षा करने लगे।।34।। वर्षा के आगमन पर लोग प्रफुल्लित हुए और आचार्य विरागसागर के मुनिसंघ के वात्सल्य, निर्मल स्वभावी गुरु के गान करते हैं, वे उनके स्वागत में मधुर गीत और बाघ के साथ जंगल में मंगल और रेगिस्तान के समुन्दर में विरागभाव उत्पन्न कर देते हैं।।35।। वे आचार्य श्री मेलचित्तामूर के एक मठ में निवास करते हैं, जहाँ जीर्ण-शीर्ण शास्त्र संरक्षण की भावना वाले सभी साधु उन शास्त्रों एवं ताड पत्रों आदि को विधि वत् सुरक्षित करते हैं तथा वे सभी सुरक्षित स्थान में उन्हें रखते हैं।।36।। चातुर्मास का समय निकट है, एक भक्त ज्ञानचंद झांझरी परिवंदन पूर्वक पूछते तथा आचार्य श्री उत्तर देते कि जब जहाँ ठहर गए वहाँ चातुर्मास हो जाएगा। अभी से क्या चिंता करना?।।37।। आ.श्री स्वाध्याय युक्त मुनिनाथ को महत्त्व देते हैं। वे जिनवाणी के विरागसूत्र को अपने चित्त में स्थापित करते हैं और उसी के अनुसार **'विमल विराग स्वाध्याय भवन'** की स्थापना करवा करके उसमें सभी शास्त्रों को रखते हैं।।38।। मठ के समीप ही जीर्णोद्धार का कार्य करवाया जाता है, जहाँ पार्श्वनाथ का मंदिर, शास्त्र भंडार आदि को सुरक्षित किया जाता है। जो अतिभव्य एवं गुणाकृति युक्त बनता है। सो ठीक है- जो स्वयं तीर्थ हैं वे तीर्थ सेवा और जिनसेवा को अनन्य सेवा मानते हैं।।39।।

लोए सरण्ण-सरणं अरहंत-सेट्ठ सिद्धं च साहुसरणं च सुसम्म-भावं।
दाएज्ज केवलि-कलं सरणं भव-माणवाणं वच्छल्ल-पीदि-गुणरीदि-अणंत-णंदं।।40।।
अत्थेव दिण्ण-णव-सत्त-महिण्ण-छट्ठि-सण्णे जाएज्ज मास-चदुमास-पहावकारी।
राजिंद-मत्थण-विधायग-सेट्ठि-कित्ती भट्टारगो वदितवी बहुगा सुमंती।।41।।
वच्छल्ल-भाव-गुण-धारण-जीव-रक्खी संरक्खदे गुरुवएण वदाण देज्जा।
पाणीण कंप-अणुकंप-सुसेव-भावी आराहएज्ज गुणणेज्ज सदा पउत्तो।।42।।
मज्जारि-कुक्कर-विलाडि-कबूतरादी वच्छल्ल-णेह-गुणरागि-पमोदभागी।
जाएंति अण्ण-पर-संत-विसेस-पाणी कारूण्ण-सूरि-सरिदप्पवाहयादी।।43।।
मज्झण्ह-काल-जिण-वंदण-अज्जिगाओ विब्भाल-खुल्लिग-मदीवि-अचेदभूदा।
संबोधदे गुरुवरो भज-पास-सामिं चिंतामणिव्व अदिचिंत-विमुत्त-संतिं।। 44 ।।
कम्मोदयो परिचत्तदि के वि लोए वीरा सिरोमणि-जणा तव-सील-रत्ता।
धीरा मरेंति वि अधीर-सुधीर-संता झाएज्ज ईसगुण-णिच्च-सु-आद-सम्मं।।45।।

लोक में अरहंतशरण, सिद्धशरण, साधुशरण और केवलि प्रणीत धर्म शरण संसार के मानवों के लिए सम्यक्भाव, वात्सल्य, प्रीति, गुणरीति एवं अनंत आनंद को प्रदान करती है।।40।। मेलचित्तामूर में 9/7/2006 को चातुर्मास की स्थापना हुई। जो अत्यंत प्रभावकारी था। इस समय धवलकीर्ति भट्टारक, लक्ष्मीसेन भट्टारक, विधायक राजेन्द्र, विधायक मस्तान, श्रेष्ठी डी.अजितदास, निर्मल कुमार, एम.के.जैन, शोभालाल आदि से यह क्षेत्र प्रगतिपथ की ओर अग्रसर हुआ। व्रती, त्यागी, तपस्वीजनों एवं अनेक मंत्रियों के आगमन से इस क्षेत्र की महिमा बढ़ी।।41।। आ.विरागसागर तो वात्सल्य भाव युक्त गुणों के धारक/मूलोत्तर गुणों की ओर अग्रसर सदैव जीव रक्षक बने हुए अपने वचनों से संरक्षण की गुरुता को देते तथा लोगों को व्रतों की ओर अग्रसर करते। वे प्राणियों के प्रति अनुकंपाशील, कंपमान जनों के सम्यक् सेवाभावी भी बनते हैं। वे नित्य आराधना करते हैं और गुणों की ओर प्रवृत्त लोगों को गुणी बनाते हैं।।42।। बिल्ली, बिलाव, कबूतर आदि वात्सल्य, स्नेह के गुणों से युक्त एक दूसरे के प्रति राग एवं प्रमोद को उत्पन्न करते हैं। जहाँ करूणा मूर्ति आचार्य होते हैं, वहाँ सरिता की तरह वात्सल्य का प्रवाह होता है और प्राणी मात्र परस्पर में शान्त भाव धारण कर लेते हैं।।43।। मध्याह्न के समय जिन वंदन में आर्यिकाएँ स्थित थीं, तभी विभालश्री क्षुल्लिका अचेत हो गई। तब उन्हें आचार्यश्री ने चिंतामणि पार्श्वनाथ के स्मरण के लिए कहा और संबोधित किया कि चिंतामणि आप भी चिंता से मुक्त हो जाएगी।।44।। इस संसार में कर्मोदय किसी को नहीं छोड़ते हैं, वीर, शिरोमणि, तपस्वी, शीलगुणी, धीर, अधीर, सुधीर, संत आदि सभी मरते हैं। अतः ईश गुण/प्रभु गुण का स्तवन निश्चित ही सम्यक् आत्म दृष्टि देता है।।45।।

एगो त्ति में वि सरणं तुममेव अत्थि तुम्हं विणा ण अवरं करूणत्त-सीलो।
संसार-सागर-तरं तरणिव्व अम्हे हं हं कुणेटिदिण किंचि पत्ते।।46।।
आसाम-पंत-सम-आगद-एग-सेट्ठी राजेश-राज-पहु-साज-गुरुं च जाणे।
णंदी भवो रमदि सासद-आद-भावे सूरी-विरागचरणे रद-घण्ण-मण्णे।।47।।
वच्छल्लमुत्ति-मुणिणाधं-सुसम्मादि त्तो जो णेहजुत्त-णिह-दिक्ख-गदा या सूरी।
सिस्साण सिस्स-अणुसास-गुणं पदेज्जा संतो सदा विमल-चंद-सम्मत्त-पण्णो।।48।।
सिस्साण दाण-उवहार-असीस-णिच्चं सिक्खागमाण णिरवेक्ख-पमाण गाणं।
किण्णु त्ति पिच्छिग-कमंडलाण सुदेसएज्जा अच्छेर-भाव-परमं कुणदे वि विरागसूरिं।।49।।
सूरी-मुणीसर-गणी-गण-णायगो त्ति गच्छेस-गच्छवइ-आइरियो गणी सो।
झाणी-तवीसर-गणीसर-सुत्त-णंदी दिप्पेस-तुल्ल-तवर्धगण-संघ-णेतू।।50।।

एकमात्र ईश की शरण श्रेष्ठ है। ईश के बिना कुछ भी नहीं प्राप्त होता है। ईश तो करूणाशील है। वे संसार सागर से पार करने के लिए तरणी की तरह हैं। इस संसार में मैं-मैं करेगा तो कुछ भी नहीं प्राप्त होगा।।46।। केंसर रोग से पीड़ित आसाम से आगत राजेश श्रेष्ठी ने प्रभु का राज समझा, गुरु के गौरवपूर्ण रहस्य को जाना। वे आनंदित हुए शाश्वत् आत्मभाव में रत गणाचार्य विरागसागर के चरणों में नम्रीभूत हुए अपने जीवन को धन्य करते हैं।।47।। आचार्य सन्मतिसागर वात्सल्यमूर्ति सन्मति का दान करते हैं। वे दीक्षा को प्राप्त अपने शिष्यों को स्नेह दान अनुशासन जैसी प्रवृत्ति के गुणों का दान करते हैं। वे शान्त संत तो विमल की तरह हैं और चन्द्र की तरह समत्व युक्त हैं।।48।। वे दान रूप जो शिष्यों को उपहार दिया करते हैं वह आगमों का निरपेक्ष भावों एवं आगम प्रमाणों का होता है किन्तु पिच्छि और कमंडलों का उपहार आचार्य विरागसागर को अत्यंत आश्चर्य उत्पन्न करता है।।49।। आचार्य तो सूरी-सूर्य हैं, वे मुनीश्वर-समस्त मुनियों के द्वारा पूज्य हैं। वे गणी-अंग-उपांगादि आगम के गणित/सूत्र पाठों वाले हैं, वे गणनायक हैं, गच्छ के ईश-गच्छेस-गच्छ के परम प्रभावक हैं। वे गच्छपति गच्छ के विचारक हैं व गणीश हैं, ध्यानी हैं- वे तपीश्वर, गणीश्वर, सूत्रनंदी एवं संघनेता तो सूर्य की तरह चमकते हैं अपनी तपधी से और गण के कुशल संचालन से।।50।।

जयचरे जयं चिट्ठे जयं सए जयं मुणे। जयचिंते जयं चित्ते, जयं गच्छे जयं धरे।।
झादि झादिस्सदे णिच्चं, झादि विसुद्ध-आगमं। झादि सुत्ताण मुत्ताणं, झादि रदण-मग्गिणो।।

इदि समत्तो चवालीस विरागो।

पेंतालीस-विरागो

कव्वे काले च सिद्धंते, पुराण-पंडिगे मुणे। सुत्ते पबंध-अलेहे, विरागो विरदे मदी।।1।।
धण्णो इमो मुणिवरो वरचिंतमाणो मग्गे चरंत-गदिमंत-गणी मुणी वि।
सट्ठंग-सील-मणुजाण सुपेरदे सो णो हिंस-भुंजण-मणो ण दिढो त्थि लोए।।2।।
णारी-णरा पडिदिणं पध-गम्म-सीलं साहूण वंदण-कुणंत-पपण्हुजुत्ता।
एगा जणी पडिणिवेददि तुम्ह कज्जा किं अत्थि सत्थ-जिणसुत्त-पदे पमाणं।।3।।
सत्थे पमाण-बहुमाण-अणंत-णाणं ते अत्त-आगम-पुराण-जिण-सुत्त सव्वे।
णिग्गंथ-छत्तिस-गुणेसु अलंकिदा हि पुज्जा पमाद-रहिदा तव-झाण-सीला।।4।।
सव्वाण देस-अणुदेस पमाण-भूदा तस्सिं च अत्थि महपंच-समित्त-गुत्ती।
आवस्सगो दसविहो परमत्थ-धम्मो वावीस-पारिसह-साहग-सम्म-सीलो।।5।।
जग्गे पहाद-अरुणोदय-पुव्व-णिच्चं सामाइगं दसदिसे विहझाण-जोगं।
णच्चा झादि अरहंत-सुसिद्ध-इट्ठं पंचं णमुक्कर-गुणं सरदे अणंतं।।6।।

आ. विरागसागर तो विराग की खोज करते हैं, काव्यकला में, सिद्धान्त के सिद्ध+अंत प्रसिद्ध कारणों में, पुराण के पाण्डित्य में, सूत्र प्रबन्ध एवं आलेख/ विशद् विवेचनों में लगे रहते हैं। वे मतिवान् राग से/रति से रहित मुनिचर्या में लीन रहते हैं।।1।। धन्य हैं मुनिवर जो चिंतन युक्त हैं, मार्ग में गतिशील गणी एवं मुनिजन श्रद्धाशील मनुष्यों को प्रेरित करते रहते हैं और समझाते हैं कि हिंसा पूर्वक भोजन, मांस, अंडे आदि से मन लोक में दृढ़ नहीं होता है।।2।। गमनशील आचार्य के गमन में आचार की प्रमुखता है। इसलिए नर-नारी सभी तमिलनाडू के वंदन पूर्वक अनेक प्रश्न उपस्थित करते हैं। साधुओं की चर्या क्या है? इस पृच्छा से एक महिला पूछती है- शास्त्रों एवं जिनसूत्रों के पदों में चर्या सम्बन्धी क्या प्रमाण है?।।3।। शास्त्रों में अनंतज्ञान युक्त आप्त वचन, आगम, पुराण, जिनसूत्र तो प्रमाणित हैं, उनमें अनंतज्ञान है, वे आप्त वचन निर्ग्रन्थ के छत्तीस गुणों पर भी प्रकाश डालते हैं। छत्तीस गुणों से अलंकृत निर्ग्रन्थ सदैव पूज्य होते हैं, वे प्रमाद रहित, तप एवं ध्यानशील होते हैं।।4।। सभी के मूल में लिखा है, वह पूर्ण प्रमाणित है। उसमें पाँच महाव्रत, पाँच समिति, तीन गुप्ति, छह आवश्यक, दशविध परमार्थ प्रेरक धर्म, वावीस (22) परीषहजय आदि साधक की सम्यक् क्रिया है।।5।। साधु अरूणोदय से पूर्व सदैव उठते हैं, फिर वे दशों दिशाओं में विविध प्रकार के योग-आसन, पद्मासन, कायोत्सर्ग पूर्वक सामायिक एवं ध्यान-धर्मध्यान करते हैं। उसमें अरहंत, सिद्ध आदि पंच परमेष्ठियों के अनंतगुणों का स्मरण करते हैं।।6।।

देगंबरी-किरिय-एग-अपुव्व-लोए आहार-एसण-समित्त-सुसोहणं च।
पत्तेव-पाणि-इग-भुत्त-जलादि-सव्वे णेंति त्ति ओहगण-हेह-गिही-विहिं च।।7।।
पस्सेंति गच्छ-पडिगच्छ-पडे हि णिच्चं केसाण जीव-रसवंति-रसे द्वि दोसा।
तं अंतराय-गण-खेद-कुणंतए णो सोम्मासुही णियपवास-सुलेहणं च।।8।।
एसा मयूर-सम-मज्जणि-जीव-रक्खं पत्तेज्ज पंख-पडमाण-पमाण-भूदा।
मारेज्ज णो मउर-माणव-साहलब्भे काढिण्ण-पुण्ण-परिखीण-हवे सए हि।।9।।
सम्मा इमा हि चरिया इा काल-जेणं जग्गेज्ज मग्ग-अरहंत-अणंत-सिद्धं।
सव्विंदियाणि विसयाणि जए जिणो त्ति कम्माणि घादि-ख्पय-केवलणाणि-जादा।।10।।
भत्तो विणोद-पिदु-णाण-सहेव भज्जा बाला वि दंसणपिया रमदे हि विंसे।
ते णिच्च-वंदण-सु-सत्थ-वचं सुणेंति सम्मं गुणं चलहिदूण णएंति णंदं।।11।।
सम्मंच दंसण-विहिं पिदु णाणचंदो खीणंग-अंग-गणि-गारव-णाणभूदो।
गाहेज्ज बारह-वाए सदलेहणं च अंते हि पंच-णवयार-सरेज्ज पत्ते।।12।।

इस संसार में दिगम्बरी क्रियाएँ/ दिगम्बर साधुओं की क्रिया अपूर्व हैं। आहार में एषणा समिति और शुद्धि का पूर्ण विवेक गृही एवं गृहिणी का विचार, एक बार पाणिपात्र से आहार, जल, औषध आदि सभी में अवग्रह होता है।।7।। आहार के समय में गच्छ, प्रतिगच्छ, तथा चंदोवा एवं स्थान आदि को देखते हैं। विधिपूर्वक आगत भोजन में भी रस परित्याग दिन के अनुसार रखते हैं। आहार में केशों के या अन्य किसी प्रकार के जीव आदि के आने पर अन्तराय मानते हुए उसमें खेद नहीं करते, अपितु साम्यभाव को धारण कर लेते हैं और वे उसी समय सौम्यसुधी अपने प्रवास पर सुलेखन को प्रायश्चित्त आदि विधि को प्राप्त होते हैं।।8।। दिगम्बर मुनि मयूर पिच्छिका रखते हैं, जो समभाव एवं जीव रक्षा के लिए होती है। मयूर द्वारा स्वतः छोड़े गए पंख ही इसके बनाने में उपयोग किए जाते हैं। मारे गए मयूर के पंख कोमल नहीं होते हैं, अपितु वे कठोर होते हैं, जिससे वे शीघ्र टूट जाते हैं।।9।। जिन के भक्त जैन हैं, जिन समस्त इंद्रिय-विषयों को जीतने से होते हैं। वे घातियाकर्मों के क्षय से केवलज्ञानी होते हैं। इस समय में उनके मार्ग पर चलने वाले जैन हैं। उनकी चर्या आज भी इस इक्कीसवीं शताब्दी में है। जो अर्हंत के मार्ग को दर्शा रहा है और जो यह भी कह रहा है अनंत आत्माएँ सिद्धगति को प्राप्त हुई हैं।।10।। विनोद बाकलीवाल अपने परिवार के पिताश्री, पत्नी एवं बच्चों सहित बीस दिन सेवा के लिए रूक जाते हैं। वे दर्शन प्रिय श्रद्धाशील नित्य वंदन एवं शास्त्र स्वाध्याय की ओर दृष्टि देते हैं उन्हें सुनते हैं। सम्यक् गुण को जानकर आनंद का अनुभव करते हैं।।11।। विनोद के पिता श्री ज्ञानचंद भी सम्यग्दर्शन की विधि की ओर अग्रसर होते हैं। वे क्षीणांग आचार्य के अंगसूत्र के गौरव से ज्ञानभूत/ प्रभावित होते हैं और उसी क्षण 12 वर्ष की विधि सल्लेखना को ग्रहण कर लेते हैं। वे घर पर पंच नमस्कार का स्मरण करते हुए अंत/मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं।।12।।

णिज्जावगत्त-सुगमो हि पमाण-अज्ज पत्तं च जोग्ग-समयं समयं सुलेहे।
दिट्ठी-विसाल-विसदा विसदं कुणेदि सल्ली-विसल्ल-विगदा सुगदिं लहेंदि।। 13 ।।
सण्णत्थ-संघ-पण-साहस-सिस्स-साहू दाहिण्ण-भूल-गदि-सील-इमा वि साहू।
जे गंथहीण-सयला अवि सुत्तधरी ते सुत्तधरी-अधुणा बहुपण्हकारी।।14।।
पण्हाण उत्तर-ससुत्त-पमाण-जुत्ता ते आगमाण परमत्थ-जणाण मुत्ता।
रामो सिवो वि सिवराम-अणेग-सीसा वच्छल्लमुत्ति-गुरु गारव-मंगल त्तं।। 15।।
अहिंसं च साग-असणे महगोट्ठिए हि गोविंद-सेवरिण-सिद्दिक-सच्चसायी।
लच्छी वि कित्ति-पमुहाजण-सक्खिपुव्वा पालेज्ज णेज्ज णियमं तिसदाजणा हि।।16।।
पंथा ण मग्ग-अववग्ग-विचार-सुत्तो वेरग्ग-मग्ग-मुणि-माणस-हंस-जुत्तो।
संवाहगो परम-बोह-चरित्त-पत्तो संकिण्ण-मुत्त-परमागम-णेत्त-दत्तो।।17।।
महाजत्ती महासुत्ती, महावदी महामही। महाणंदी महालेही, महापेही महारसी।।18।।

यह सत्य है, प्रमाण जन्य है कि निर्यापकाचार्य का निर्यापकत्व/अंत समय में योग्य पात्र को दिया गया योग्य सिद्धान्त समय की प्रतीति करा देता है। जिसकी दृष्टि सम्यग्दृष्टि होती है वह विशाल अत्यंत व्यापक विष को भी वि-सद/शान्त कर देती है और लोगों को विशदता प्रदान कर देती है। शल्य युक्त जनों को शल्य रहित करती है और उत्तम गति को दर्शा देती है।।13।। सन्यास तो सम्यक् गुणों की रक्षा पर है। साधु भी न्यास के प्रमुख पाँच हजार शिष्य परिवार वाले थे। वे दक्षिण में प्रभावी और दक्षिण में विहार करने वाले साधु थे। ये भी साधु और वे भी साधु, ये सभी साधु ग्रंथहीन/परिग्रह रहित सूत्रधारी/आगमसूत्र को पढ़ने-पढ़ाने वाले थे। ये भी सूत्रधारी/वस्त्रधरी, सूत्र/वेद रचनाओं को महत्त्व देने वाले थे। दोनों का सूत्र/मिलन हुआ। दक्षिण के दक्षिण में विचरण करने वाले ये अनेक प्रश्नों को करने में समर्थ हुए।।14।। प्रश्नों के उत्तर सूत्र सहित प्रमाण युक्त थे, वे आगमों और परमार्थ ज्ञायक जनों की मुक्ताएँ थी, तभी तो राम/आत्मा है जहाँ, वहाँ शिव/कल्याण मार्ग है। परन्तु साधु शिवराम यहाँ अपने अनेक शिष्यों सहित शिवराम/आत्म-कल्याण समझने में समर्थ हुए तथा वात्सल्यमूर्ति गुरु के गौरव से मंगलत्व की ओर अग्रसर हुए।।15।। इस प्रसंग पर शाकाहार सम्बंधी एक विशाल आयोजन किया गया। जिसमें गोविंदसिंह (हिन्दू समाज), सेपस्टिन (ईसाई विचारक) मुकमदु सिद्दिक इमाम (मुस्लिम), सच्चिदानंद स्वामी, भट्टारक लक्ष्मीसेन, भट्टारक धवलकीर्ति आदि प्रमुख लोग इसके साक्षी बनें। इसी समय 300 लोगों ने शाकाहार अपनाने और पालन करने के नियम भी लिए।।16।। पंथ मोक्षमार्ग नहीं, वह तो विचार है। वैराग्य मार्ग एक मार्ग है, जो मानसरोवर के हंस की तरह लोगों को मुनि बनाता है। वे मुनि संवाहक है, परमार्थ के, परमबोध के और परम चारित्र के पात्र भी। वे संकीर्णता से मुक्त परमागम के नेत्रदान भी देते हैं।।17।। साधक तो महायात्री होता है, वह महासूत्री, महाव्रती, विशाल पृथ्वी रूप होता हैं वह महानंदी-अंतत: चतुष्टय का आनंद लेने वाला महालेखी/आगम का पर्यालोचक उसी की प्रेक्षा करता है और उसी के रस में लीन रहता हैं।।18।।

आदस्स-णिम्मल-सुसच्छ-पुर्णाद-पूदो णो भासदे विमल-सोम्म-सहाव-सम्मो।
गच्छेंति संमुह-सदा विमला हि हुंति सूरीसरो त्तु विमलो विमल कुणेंति।।19।।
भादुत्ति एग-गुरु-गारव-पुण्ण-जुत्तो णामेण जो वि भरहो भरहो हि मुत्तो।
भत्तासदा हि विमलं विमलं च हेदुं दीवो वि दीव-पढमे समहिं णएदि।।20।।
सड्ढोदहिं च विमलं च गहिरं च भावं झाणग्ग-दिट्ठि-परमत्थ-पगास-मग्गं।
णेदूण ऊण-गुण-दूण सदा पउत्तो णिप्फेहि-णेहि-तव-सील-समत्त-सूरी।।21।।
धम्मिल्ल-भावण-पहावण-पुण्ण-वासो जाएज्ज मेलचिदभूद-पुरे हि सम्मो ।
लच्छीइसेण भड-भट्ट-गुणं च पुणेज्ज आलंकएज्ज समदंक पर मुर्ति पादं ।।22।।
सव्वे विहार-समए विणयस्सु-जुत्ता वेरग्ग-सेल-सिहरं पुण णम्मएंति।
मंगे हि मंगलिग-थाल-फलाण अग्घं देंति त्ति ते सयल-सोम्म-मणाजणा वि।।23।।
दाहिण्ण-खेत्त-परिदंसण-इच्छमाणो संघो चरेदि तल्लिस्स-अणेग-भागे।
कण्णाडगे पवसदे गिरि-गोम्मटेसं आदिं च पंच-महमत्थग-सिंच-काले।।24।।
गुरु-गारव-धण्णो त्ति, चागो तवो महापहे। संक्कारेंति चरित्तादो, भव्वाण भव्व-णंदगे।।25।।

आदर्श-दर्पण निर्मल, स्वच्छ, पुनीत एवं पूत होता है, वह नहीं कहता कि मैं विमल हूँ, सौम्य हूँ और स्वभाव से समीचीन हूँ। अपितु जो उसके सम्मुख जाते हैं वे विमल हो जाते हैं। सो ठीक है जिनके सूरीश्वर विमल हैं तो विमल क्यों नहीं करते हैं? अवश्य करते हैं।।19।। एक गुरु भ्राता गौरवपूर्ण थे, वे नाम से आचार्य भरतसागर, भार-बाह्य और आभ्यन्तर भार से मुक्त, आचार्य विमलसागर के भक्त आत्मा के निर्मल परिणामों के कारणों को चाहते हैं, परन्तु वे दीपावली से पूर्व (2006) समाधिमरण को प्राप्त हुए।।20।। आचार्य भरतसागर तो शिष्य ही संत थे, वे तपस्नेही, शील एवं समत्व के सूर्य सूरी थे, तभी तो श्रद्धोदधि विमलसागर के गंभीर भाव, ध्यान दृष्टि एवं परमार्थ के प्रकाश मार्ग को लेकर गुणों से ऊन/कम नहीं होना चाहते हैं, अपितु वे उनके गुणों को दिन दूना, रात चौगुना बढ़ाने में प्रवृत्त रहे।।21।। मेलचित्तामूर का धार्मिक प्रभावना पूर्ण चातुर्मास हुआ। पश्चात् भट्टारक श्री लक्ष्मीसेन जी व सम्पूर्ण जैन समाज द्वारा पू. गुरुवर की अपार समता की प्रशंसा में **'समतामूर्ति'** की उपाधि से अंलकृत किया गया।।22।। जैन-जैनेतर सभी विहार के समय विनय रूपी अश्रुओं से युक्त वैराग्य रूपी पर्वत शिखर को प्रणाम करते हैं। वे उमंग से युक्त, सभी सौम्यजन किंचित् भी मन से उन्हें नहीं हटा पाते हैं। वे मांगलिक थाल से फलों के अर्घ समर्पित करते हैं।।23।। दक्षिण क्षेत्र के परिदर्शन की इच्छा युक्त श्रमण संघ तमिल के अनेक भागों में विचरण करता है। कर्नाटक में भी प्रवेश करता है गोम्मटेशगिरि की यात्रा हेतु। जहाँ आदिनाथ का पंचकल्याणक और महामस्तकाभिषेक का आयोजन हुआ था।।24।। गुरु तो गौरवशाली होते हैं, वे ध न्य हैं त्याग, तप आदि के महापथ पर चलते हैं वे अपने चारित्र रूपी संस्कारों से भव्य जनों को भव्य बनाते और भाव आनंद में निमग्न रहते हैं।।25।।

ते सम्म-दंसण-सुणण-चरित्त-मग्गी अत्थेव दाण-बहुलं च कुणेंति अज्ज।
अम्हाण माण-बहुमाण-सदा इमादो अण्णुण्ण-णेह-परमागम-सिक्ख-संता।।26।।

संत सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रमार्गी होते हैं। वे आज भी यहाँ अनेक प्रकार का उपकार करते हैं। हम लोगों का मान, बहुमान इन्हीं से है, ये पारस्परिक स्नेह एवं परमागम की शिक्षा देते हैं।।26।।

इदि समत्तो पेंतालीस विरागो।

छियालीस-विरागो

विराग-पाद-पोम्मेल्ला, गम्म-तमिल-पोरगा।
गदाणुगद-सोमेल्ला कण्णाडगे पवेसगा।।1।।
होसूर-पच्छ-गदिमाण-इमो त्ति संघो बोम्मा सु सोद-पुर-एग-दिवे पवासं।
सो हेगडे तध वि बेंगसुरं च हल्लिं दिक्खं दिवं च चदुवीस-इधे हि जादे।।2।।
अच्चंत-पागडिग-तित्थ-गुरुत्तकूला पच्छा पवेस-सवणं अदि-पुज्जठाणं।
अग्गे मुणी परम-भत्त-सुसावगादी मंगिल्ल-मंग-सुह-भाव-जयं जएज्जा।।3।।
ओज्झा-णिजा वि मुणिधम्म-सुभूसणो वि अज्जी पसंत-सुपसण्ण-मदि त्ति अज्जी।
णंचारूकित्ति-सवणो भद्दु-धम्मकित्ती वाला-अणेग-बहुमाण-जयं कुणंता।।4।।
रम्माहिरम्म-अदिरम्म-हरिल्ल-खेत्तो पासाण-पव्वद-तरू-हीण-पभास-पुण्णो
उत्तुंग-गोम्मटिस-ठाण-गिरिम्हि बिंवा आवास-भव्व-अदिहिं अदि-रम्म-सीला।।5।।
तस्सिं च आगद-जणा मुदएंति सव्वे अत्थे विरागचरणे अदिणम्म भूदा।
पुण्णं च अज्तण-कुणंत-विराग-भावं णो केवलो त्ति लहिदुं अवि वीदरागं।।6।।

विराग के चरण, विराग की ओर बढ़ते गए तमिल के ग्राम, पुर आदि से पार। वे सौम्य, सौम्य की ओर गमनशील कर्नाटक में प्रवेश कर गए।।1।। होसूर तमिल के अंतिम स्थल के पश्चात् यह संघ गतिमान रहा। वह बोम्मासोदा एक दिन प्रवास को करता है। जो सुरेन्द्र हेगड़े का स्थान था। वहाँ से बैंगलोर, फिर चेन्नेहल्ली पहुँचा। जहाँ पर 3/12/2006 को 24वाँ मुनि दीक्षा भी आचार्यश्री का मनाया जाता है।।2।। अत्यन्त प्राकृतिक तीर्थ धवलतीर्थ श्रवणबेलगोल से पहले पड़ता है, जो गुरुकूला नाम वाला था, वहाँ पहले प्रवेश होता है, इसके पश्चात् पवित्र एवं पूज्य स्थान श्रवणबेलगोला की ओर गतिशील होता है, मुनियों एवं परम भक्त श्रावकों के अग्र होने के साथ। वे सभी मंगल भावना युक्त जय-जयकार करते हैं।।3।। इसमें अग्रगामी थे उपाध्याय निजानंदसागर, मुनिधर्मसेन, मुनि धर्मभूषण, आर्यिका प्रशान्तमति, आर्यिका प्रसन्नमति, श्रवणबेलगोल के कीर्तिमान भट्टारक स्वस्ति चारूकीर्ति, भट्टारक धर्मकीर्ति आदि थे। अनेक बालक भी अति सम्मान देते हुए जयकारे कर रहे थे।।4।। यह स्थान रम्याहिरम्य, अतिरम्य हरियाली से पूर्ण है। पर्वत प्रदेश पाषाण की पवित्रता व्यक्त करने वाला था। तरू विहीन, फिर भी अत्यंत प्रभास पूर्ण था। उत्तुंग गोम्मटेश के स्थान के गिरि पर अनेक बिम्ब हैं। जहाँ आवास भी भव्य अतिथियों को अतिभव्य बनाने वाले रमणीय हैं।।5।। यहाँ पर सभी आगतजन प्रसन्न होते हैं। वे आज विराग चरणों में नम्रीभूत हैं। जो पुण्यार्जन करते हुए विरागभाव की कामना मात्र नहीं करते हैं, अपितु वीतराग भाव की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील होते हैं।।6।।

साहू जदि त्ति समसील-विरागमुत्ती झाणं तवं च परमं परमत्थ-सुत्तं।
झाएज्ज बिंझगिरि-चंदगिरिस्स ठाणे णं भद्दबाहु-तवचाग-इमे पवादे।।7।।
अत्थे दिसंबर-दिवे दिवसं विरागं चोव्वीस-तित्थ-अहिसिंचण-पूजणं च।
धम्मप्पहावण-सुदं च गुणं च गुंजे पच्छा चरेज्ज मुणिसंघ-अणेग-गामे।।8।।
साहूण बुड्ढ-समणाण सुसेव-जुत्तो अगो चरेदि मडकूर-पुरं गुणं च।
णंदीसहेव मिलएज्ज विराग-मुत्तो हुम्मच्च-पोम्मवदि-खेत्त-विसिट्ठ-पत्तो।।9।।
देविंद-कित्ति-भड-भट्ट-पमाण-जुत्तो कल्लाण-भाव-परिपूर्ण-विचारसुत्तो
अग्गे वरूर-णयरं च पवेस-जादो पच्चासि-पिच्छ-चारि-अग्ग-विराग-भूदा।।10।।
कुंथु त्ति पोम्म-गुरुदेव-सुणंदि-णिच्छो वेरग्ग-देव-कुमुदो वि गुणो कुसग्गो।
कामो उवज्झय-मुणित्ति विकेसवो दु सूरी मुणी वि विलसंत-वरूर-खेत्ते।।11।।
सूरि विराग-मुणिसंघ-विसाल-रूवे जत्थेव गच्छदि तधेव जणाण दिट्ठी।
जाएज्ज चिंतण-खणं अणुसासणं च एगादु एग-तव-झाण-कुणंत-चंदं।।12।।

जो भी सम/समत्वशील, विरागमूर्ति साधु हों या यति यहाँ ध्यान, तप, परमार्थ-सूत्र को तत्परता से ध्याते हैं विन्धायागिरि और चंद्रगिरि के स्थानों पर। सो ठीक ही है भद्रबाहु स्वामी का तप-त्याग यही तो कह रहा है कि आप सभी वाद में मत उलझो, अपितु भद्र बनो। बाहुबली भगवान बनो।।7।। यहाँ दिसम्बर में आ. विरागसागर के 24वें दीक्षा दिवस पर चौबीस तीर्थंकरों का अभिषेक-पूजन आदि किया गया। श्रुत प्रभावना और गुणों का गुणानुवाद किया गया। इसके अनंतर श्री संघ अनेक ग्रामों की ओर अग्रसर हो गया।।8।। आचार्य विरागसागर जहाँ भी जाते वहाँ पर संघ/मुनिसंघों का मिलन होता है। मडकूर में आचार्य गुणनंदि के साथ मिलन विराग को मूर्त बना गया। इसके अनन्तर 3/1/2007 को हुम्मचा पद्मावती क्षेत्र को प्राप्त हुए।।9।। भट्टारक देवेन्द्रकीर्ति के साथ भट्ट-भट्ट प्रमाण युक्त विचार हुए। अर्थात् देवेन्द्रकीर्ति ने एक भट्ट/सूरि से भट्ट/उत्कृष्ट प्रमाण युक्त परिचर्चा हुई। पंचकल्याणक तो वरूर में था। इसलिए यहाँ कल्याण से परिपूर्ण सूत्र के भाव वाले विचार सामने आए। वरूर में प्रवेश हुआ तो वहाँ पर 85 पिच्छिकाओं के समूह आगे होकर विराग से विरागमय बन गए।।10।। आ.कुन्थुसागर, आ.पद्मनंदि, आ.देवनंदि, आ.निश्चयसागर, आ.वैराग्यनंदि, आ.देवसेन, आ.गुणधरनंदि, आ.गुणनंदि, आ.कुशाग्रनंदि, उपाध्याय कामकुमार, मुनि केशवनंदि आदि सूरि तो सूर्य की तरह देदीप्यमान थे। मुनि विलसंत सागर आदि भी वरूर क्षेत्र में विरागसागर के आगमन पर उनके स्वागत के लिए आगे आए।।11।। आचार्य विरागसागर का विशाल संघ जहाँ जाता वहाँ लोगों की दृष्टि केन्द्रित हो जाती हैं वे उनके चिंतन के क्षणों और अनुशासन पर विचार करने लगते हैं क्योंकि वे सभी एक से एक तप और ध्यान के चन्द्र को गति दे रहे थे।।12।।

कुंथुत्ति आइरिय-माणस-भाव-पेहा रामो हवेदि अणुजं पडिलक्खणं च।
आवट्टणेंति परिवट्टण-पिच्छिगाए णामेज्ज पच्छिकल-सद्द-सुहंग-भूदा।। 13।।
तित्थे णवग्गह-णए णयणेहि णंदं पस्सेज्ज खेत्त-हरि-णंदण-रण्ण-सम्मं।
पुत्ती उवप्पह-पडिहा पडिहा जएज्जा सा आडवाणि-तणया जण-पेम्म-सीला।।14।।
सत्ते सणे इग-किदी परमागमं च सव्वोदयी हि दिग-अंबर-धम्म-जुत्ती।
पुज्जो त्ति कुंथु-गणाणयग-णंद-पुव्वो सोहत्थि-साहग-जणाण पमुंचदे तं।।15।।
णिच्चं विहार-गद-संघ-अणेग-गामं पत्तेज्ज धम्मणयरिं च विसेस-ठाणं।
ओरंग-वाद-चदु-विंसय-पुव्व-दिक्खं अज्जेव सम्मदि-गुरुं गुरु-मेल-जादं।।16।।
भत्तिं विणा जणमणा परमादरो हि जाएज्ज आइरिय-सुत्त-पसंत-भावे।
संघो विसाल-गण-तंत-मुदे पसंसे णिग्गंथ-गंथ-परमं परमत्थ-दंसे।।17।।
तावी वि सम्मदि-मुणीसर-सम्म-दिट्ठी सूरी-विराग-मुणिराज-सुसासगा हि
जे अत्थि ते सयल-माणिद-सुसासगा हि आसीस-सील-परमागम-मग्ग-चारिं।।18।।

आचार्य कुन्थुसागर के बुद्धि और मन के भाव व्यक्त करते हैं- राम रूप यह अग्रज आज अनुज लक्ष्मण के लक्ष्य को देख रहा है। वे आपस में पिच्छिका आवर्तन करते हैं और एक-दूसरे के प्रति पक्षि कलख के शब्द से पूर्ण शुभांग/आलिंगन भूत हो जाते हैं।।13।। वरूर क्षेत्र में उपप्रधानमंत्री (पूर्व केन्द्र सरकार) श्री आडवाणी जी व उनकी पुत्री इस क्षेत्र में नामानुकूल प्रतिभा तो अपनी प्रतिभा दिखलाती है परन्तु इस नवग्रह तीर्थ पर ये संत नयनों से नय (द्रव्यार्थिक नय) विधि से जहाँ क्षेत्र को हरिनंदन/तीर्थ के प्रभावक नंदन बन कर आनंद उत्पन्न करते हैं वहीं यह क्षेत्र अपने हरित कारणों से तथा प्रभु के नंदनवन होने के कारण अत्यंत रम्य ही दिखाई देता नेत्रों से।।14।। 26/1/07 को आचार्य कुन्थुसागर अति आनंदपूर्वक शोधर्थियों साधकजनों के योग्य **'सर्वोदयी दिगम्बर जैनधर्म'** पुस्तक का विमोचन करते हैं।।15।। आचार्य श्री का संघ सदैव विहार करता हुआ अनेक ग्रामों को प्राप्त हुआ। 7 मार्च 2007 को औरंगाबाद नगरी में प्रविष्ट हुआ जिसका धर्मनगरी के रूप में विशेष स्थान है। यहीं 24 साल पूर्व आ.श्री की मुनि दीक्षा हुई थी, जहाँ आचार्य सन्मतिसागर से आज गुरु-शिष्य का विधिवत् मिलन हुआ।।16।। जिस क्षेत्र में जैनों का अभाव है, वहाँ के लोग भक्ति के बिना भी अत्यंत आदर देते हैं यह तो आचार्य के सूत्र में है और उन प्रशान्त मुद्रा में है। संघ विशाल है, गणतंत्र/अनुशासन मुद्रा एवं सभी तरह से योग्य है। निर्ग्रन्थ है तभी तो परमग्रन्थ/आप्तप्रणीत आगमों से परमार्थ दृष्टि की ओर उन्मुख है।।17।। तपस्वी आचार्य सन्मतिसागर की सभी मुनि एवं संघ नायकों के प्रति समीचीन दृष्टि रहती हैं वे आ. विरागसागर और उनके संघस्थ मुनिराजों के शासन से प्रभावित थे। जो भी मुनि थे, वे सभी मान्य एवं जिनशासन की प्रभावना वाले हैं। उनका आशीष रहता है परमागम मार्ग पर चलने वाले शिष्यों पर।।18।।

अस्सिं च सावग-सिरी हुकमो वि दिक्खं खुल्लक्कपुव्व-समहि अणुपत्तएज्जा।
णामो सदामहि-सदलेहण-जुत्त-पत्तो सम्माणुसीलग-जणो सम-सील-पत्तो।।19।।
जो सागरो परमसम्मदि-सागरो त्ति पुज्जो तवस्सि-समणो अणुसीसएज्जा।
अप्पाण सिस्स-परिवार-विणम्म-कम्मं अस्सिं विराग-मुणि-सव्वं-पदे पदेज्जा।।20।।
पच्छल्ल-पीदि-अणुपीदि-परोप्परे हि गोवच्छ-तुल्ल-अदि-णेह-पदी वि अत्थि।
णं सम्मदी मदिमही सयलाण खंतिं दाएज्ज सुत्त-तणयवव ण अण्णधा वि।।21।।
सो सिस्स-साहु-परिवार-सदा हि झाएं कुव्वेज्ज माण-बहुमाण-णियण्य-सेट्ठो।
अप्पेण संग-पढमं च विराग-पुत्तं काराइवेदि मुद-भाव-जणेहिं णिच्चं।।22।।
संघो विसाल-गद-सल्ल-जध परेदि भू भाग-भूजण-सदा हि पलण्ण-चित्ते।
णेंति त्ति णो अविदु पुण्ण-फलेहि तेहिं आहार-पाण-विहि-मंगल-मंगदाई।।23।।
पत्तेज्ज दिक्ख-थलए जध सव्व-साहू तत्थेव माधव-हिदे पउमाणि फुल्ले।
खत्तिल्ल-बंह-वणिगा अवि सुद्द-आदी तं बाल-बाल-तरूणं पद-सूरि-पस्से।।24।।

इसी समय हुकुमचन्द नामक एक श्रावक को क्षुल्लक दीक्षा दी गई, वे समाधिसागर से अलंकृत विधिवत् सल्लेखना को प्राप्त हुए। जो समीचीनता का अनुशीलन करने वाला मनुष्य होता है वह तो सम/समत्वशील का पात्र होता है।।19।। जो सागर भी, परम बुद्धिशाली भी, वे आचार्य सन्मतिसागर पूज्य तपस्वी श्रावक वंदनीय हैं, समादरणीय हैं। जो अपने शिष्य परिवार विनम्रता के कर्म को सिखलाते हैं। इसी औरंगाबाद में आ.श्री का आ.सन्मतिसागर का एक ही मंच पर आगमन हुआ। जहाँ पर विरागसागर एवं मुनिसंघ के सभी मुनि पद-पद पर उन्हें सम्मान देते हैं।।20।। वात्सल्य, प्रीति एवं अनुप्रीति परस्पर में होती है, यह सत्य है, किन्तु गोवत्स की तरह अति स्नेह प्रदान करने वाली प्रीति यहाँ दिखाई दे रही थी, सो ठीक ही है - सन्मति यदि पृथ्वी पर व्याप्त हो जाए तो वह अपने सूत्र पुत्र की तरह होंगे, जो अन्यथा नहीं होंगे, अपितु वे क्षान्ति को उत्पन्न करेंगे।।21।। आचार्य सन्मतिसागर अपने शिष्य परिवार का उचित ध्यान रखते हैं। वे अपने मान, सम्मान से श्रेष्ठ उनका मान-सम्मान चाहते हैं। वे अपने साथ विराग पुत्र की पूजा करवाते हैं मुदित भावजनों से सदैव क्योंकि वे स्वयं मुदित भाव वाले दूसरों को भी उसी तरह का देखते हैं।।22।। संघ विशाल, फिर भी शल्य रहित जहाँ विचरण करता है वहाँ पर वहाँ के भूभाग एवं भूजन को सदा ही प्रसन्नता उत्पन्न करता है। वे प्रसन्न होते हैं, यही नहीं, अपितु उनके पुण्य फल से उस स्थान पर आहारचर्या आदि की विधि मंगलमय हो जाती है, वही लोगों में उत्साह उत्पन्न करती है।।23।। जैसे ही सभी साधु आचार्य श्री के दीक्षा स्थल पर पहुँचते हैं, वे सभी एवं वहाँ के क्षत्रिय, ब्राह्मण, वणिक एवं शूद्र आदि सभी मानवों के हृदय पद्म की तरह खिल जाते हैं। सो ठीक है उस बाल/अज्ञानी तरूण बालक को आज सूरि पद पर स्थित देख रहे थे। अरूणोदय के समय पद्म कली सूर्य की किरणों से पूर्ण खिलते हैं।।24।।

सज्झी पहा-किरण-सुंदर-सागरादी धम्मे सहाइ सह-राजिद-एग-मंचे।
वाणी विराग-अधुणा अवि वीदरागं दाएज्ज सम्म-सुद-मंगल-देसणाए।।25।।
चिंतामणी उवपुरे दु विराग-वाणी तं ठाण, अज्ज-गुण-सज्ज पमाणंमाणी।
उज्जाण-णाम-मुणि-दिक्ख-सुकालणामी तित्थो हवेदि गुरुपाद चरंत-गामी।।26।।
विशुद्ध-विभव-विमद-सूरि-सूरी कल्लाण-जम्म-महवीर-महुच्छए हि।
सत्ते सणे दुसहसे हि विराग-दिक्खा सूरी हवे पवयणे बहुघोस-वादे।।27।।
माहुच्छवं च तय आइरियं च इट्टं सिस्सं पसिस्स-परिवार-गणा हि तं च।
दंसेविदूण गण-राज-सुवण्ण-मज्झे लंकेज्ज तं च गणाइरियं च जोग्गं।। 28।।
सो अज्ज खेत्त-सुहगे सुह-देसणम्हि संगेण सम्मदि-मुणीसर-संचरंतो।
तावेण लंकिद-महावदि-सूरि-धम्मं पालंत-णंतगुण-सागर-आगमत्थे।।29।।
तापी इमो तपिद-णिच्च-तवं कुणंतं णं सूरि-सागर-गहीर-चलायहेदुं।
साहस्स-रासि-किरणाण पचंड-रूवं पारिक्ख-माण-अघुणा वइसाइमाहे।।30।।
चंडो दिवायर-दिवायरचंद-जादो चंदो समो पसम-संत-पसंत-सीदं।
दाएज्ज दाहिण-पुरेसु अणेग-णामे आणंद-चंदण-सुगंध-पसारमाणो।।31।।

धर्मसभा में साध्वी प्रभा किरण, साधु सुन्दरसागर आदि मुनि भी एक साथ एक मंच पर स्थित थे, जो इस इक्कीसवीं शताब्दी में विराग युक्त वीतराग भाव को उत्पन्न कर रहे हैं, वे सम्यक् रूप से अपनी श्रुतमंगल देशना से वाणी से विराग बना रहे हैं।।25।। चिंतामणि कॉलोनी में विरागवाणी वहाँ होती है जहाँ समस्त संघ उपस्थित है वह स्थान इस बात का साक्षी है जहाँ गणमान्य लोग हैं। वहाँ के उद्यान में मुनि दीक्षा अपने उत्तम भाव प्रकट कर रही है।।26।। आ.विशुद्धसागर, आ. विभवसागर एवं आ.विमदसागर, जो अपने गुरु के मुनि दीक्षा के स्थान पर आचार्य पद को प्राप्त हुए थे। महावीर जयन्ति महोत्सव 2007 के अवसर पर।।27।। त्रय आचार्य प्रतिष्ठा के महोत्सव पर पूज्य गुरुवर को शिष्य – प्रशिष्य रूपी विशाल अनेकों गण उपसमूहों के नायक के रूप में देखकर त्रय नवीन आचार्यों व विद्वानों, श्रेष्ठियों, राजनेताओं, समाज से भरी सभा में पूज्य गुरुवर को **'गणाचार्य'** की उपाधी से विभूषित किया।28।। वे आज इस सुभग क्षेत्र में सुखपूर्वक देशना में प्रवृत्त आ.सन्मतिसागर के साथ गतिमान है, वे ताप से अलंकृत महाव्रती सूरी तो सूरिधर्म को पालन करते हुए अनंतगुणों के सागर आगम के अर्थ में प्रवृत्त हुए।।29।। यह तापी/सूर्य वैशाखमास में अपनी हजारों किरणों की राशि को प्रचंड रूप दे रहा परीक्षार्थ ही। इन तप करते हुए आचार्यों को। ये सूरिसागर गंभीर होते हैं मानो उसी गंभीरता को चलायमान करने के लिए ऐसा कर रहा था।।30।। चंड दिवाकर इन तपस्वियों रूपी दिनचन्द्र के कारण दिव्य हो गया था क्योंकि ये दक्षिण के नगरों एवं अनेक ग्रामों में आनंद रूपी चंदन की सुगंध फैलाते हुए चंद्र सम स्थित प्रशम, श्रान्त, प्रशान्त एवं शीत भाव को ही दे रहे थे।।31।।

खे मंडले खगचरा चरभाव-मुत्ता रूक्खाण णीड-णिलए परिसंत सुत्ता।
णो कूल-कूज-कल-कंदण-कज्जकत्ता सामित्त-सामि-सयला तव-तत्त-तत्ता।।32।।
संचार सुब्भ-घण-खे अणुचिंतदे वि सूरीइमो तवणकूर-कुणंत-णिच्चं।
अत्थागदे वि तवणं रजणी-अगणी-समो त्ति संदेसदे विलहुभादु-करग्ग-भूदो।।33।।
एगादु एग-घण-मित्त-सुमेह-जोहा हत्थी-ससो मगर-मच्छ-सुमोल-रिच्छा।
णेगाविहं बहुकिदिं च पदं च किच्चा णीलंबरे गमणसील-सु-सीद-जुत्ता।।34।।
उण्णो तवो पवल-पावग-पाग-पत्ता रूक्खाण हिंड-अवरूज्झ-तवंत-जुत्ता।
काले कराल-विगराल-इमे हि सव्वे मूरो करो दिवयरो खण-सुण्ण-तत्तो।।35।।
इंगाल-कम्म-जुद-तावस-सुज्ज-तेजो संसार-कम्म-गद-साहग-सूरि-तत्तो।
खेत्ते रदा वि किसगा कस-हत्थ-जुत्ता खे अंबरे किसण-वारण-माणवा वि।।36।।
कल्याण-पंच-पदु-मल्लि-महुच्छवे हिं दाएज्ज आइरिय-वेहव-वच्छ भावं ।
वच्छल्ल यंच रदणागर-सम्म-णामं णंदेज्ज णंदण जणांण गणाण सव्वं ।।37।।

इधर उष्ण काल में आकाश मंडल में विचरण करने वाले पक्षी अपनी उड़ान भूल गए थे, वे वृक्षों के नीड या एकान्त निलय में परिश्रान्त/थके हुए अब सो गए थे। अब कूलों पर नदी किनारों या निलय के उच्च भागों में उनके कलरव करने के कार्य नहीं रह गए थे। ऐसे समय में समित्व के स्वामी ये सभी मुनिगण तो उस तपन से तप्त अपने को तप और तत्त्व/आत्म तत्त्व की ओर ही स्थित किए हुए थे।।32।। इधर तपन/सूर्य की तपन है। यह एक गगन में विचरण करने वाला मेघ देखता है और सोचता है। यह सूर्य तो अपनी तपन क्रूर ही करता जा रहा है। यूँ सूरि भी उग्र तप करते हुए स्थित हैं। यह सूर्य दिन में तपता है और रात्रि में भी अस्ताचल के बाद अग्नि के समान तपन छोड़ देता है। यही सोचकर वह मेघ शीघ्र अपने छोटे भाईयों के हाथ पकड़ लेता है।।33।। एक के बाद एक प्रगाढ़-मैत्री युक्त मेघ समूह आ जाते हैं। वे हस्ति, यश, मगर, मत्स्य, सुमोल, भालू आदि अनेक प्रकार की आकृति एवं पद करके नीलाम्बर में गमनशील शीतलता युक्त हो जाते हैं।।34।। ऊष्मा/उमस बढ़ती है, तपन भी, अत्यंत पावक/अग्नि की तरह पकाने वाली हो जाती है। वृक्षों का चलाय रूक जाता है, वे भी ताप युक्त हो जाते हैं। काले-काले घने मेघ से क्रूरकर/किरण युक्त दिनकर क्षणभर में ताप से शून्य हो जाता है।।35।। यहाँ अंगार बनाने वाला तापस सूर्य का तेज है, संसार कर्म रहित साधकों एवं सूरि विराग सागर की तपस्या भी है। क्षेत्र/खेतों में रत कृषकों के हाथ हल युक्त हो गए हैं और नील गगन के खुले अंबर में कृषक/काले मेघों के आवरण से मनुष्य हर्षित हो गए हैं।।36।। शीरडशााहपुर 2007 का पावन श्री मल्लिनाथ पंचकल्याणक का प्रोग्राम पू. गुरुवर के आशीर्वाद व सान्निध्य से सानंद सम्पन्न हुआ तभी आ.विभवसागर के ससंघ व सम्पूर्ण क्षेत्र की निकटवर्ती समाज द्वारा पूज्य गुरुवर को असीम वात्सल्य की साक्षात् मूर्ती के रुप में देखकर उन्हें **'वात्सल्य रत्नाकर'** की उपाधि से सम्मानित किया गया।।37।।

आसाढ-मास-गुरु-पुण्णिम-अट्ठि-पुण्णे वासो विवास-सद-सण्णदुवे पवासो।
साहस्सविंस-मणुजा मणमोद-जुत्ता पुण्णाहि-पावस-जलप्पहे हि णंदा।।38।।
सत्तप्पवास-चदुमास-फलप्पदाई जाएज्ज णिच्छय-इधेव पसण्ण-पाई।
मंगिल्ल-मंग-कलसं हविदूण अज्ज राजीव-लोचणजणा वि मणा समेज्जा।।39।।

आषाढ़मास की आष्टाह्निक, गुरु पूर्णिमा, वर्षावास 2007 का प्रवास बीस हजार मनुष्यों के मन में उत्साह लिए हुए वर्षा के जल पथ में अर्थात् अत्यधिक बरसते मेघ जल से प्रसन्न हो उठते हैं।।38।। सन् 2007 का चातुर्मास का प्रवास अनेक फल प्रदान करने वाला होगा क्योंकि स्थापना के समय मेघों ने जल वर्षाकर जो प्रसन्नता उत्पन्न की है वही इस बात का प्रमाण है। मांगलिक कार्यक्रमों के साथ मंगल कलश को स्थापित कर राजीव लोचन जन के मन भी श्रम से सार्थक हो गए हैं।।39।।

इति छियालीस विरागो समत्तो।

सेंतालीस-विरागो

धम्मो समोदु आरामो, आसमो बहुणंदगो। दंसण-णाण-चारित्तं, चरेज्ज सूरि-साहगो।।1।।
जत्ता मुणीसर-विराग-विराग-पुण्णा रागी-जणाण हिदयाण पवट्टमाणा।
दाहिण्ण-ऊद-पुर-गाम-पवासमाणा वे आइरीय-मुणिसंग-विराजमाणा।।2।।
सोहग्ग-सील-मणुजा मणुजत्त-दंसी दाहिण्ण-भाग-उदए उदएज्ज सूरि।
दंसेज्ज दंसण-दयी दमणत्थ-इंदं मज्झप्पदेस-गुज-उत्तर-णेग-भागे।।3।।
ठाणम्हि कुंजवणए वणएक्क सिंहो णो अत्थि तिण्णि पणसत्तरि-सावगा वि।
मज्च्छेर ए अदिसए इध खेत्त भागे मग्गी इमा परम-पावण-कुंज-तित्थे।।4।।
आगच्च माणव-बहुत्त-सु-सेवभावी रत्तिं च संवहण-मद्दण-णेह-मद्दं।
सो सम्मदी जदिवरो अणुपेह-सीलो एत्तो विरत्त-उववास-पदे हि चिट्ठे।।5।।

समत्व धर्म है, आराम स्थल है, आश्रम है, अति आनंददायी स्थान है। जिसमें हैं दर्शन, ज्ञान और चारित्र। उसी ओर सूरी एवं साधक गतिशील रहते हैं।।1।। आ. विरागसागर की विराग यात्रा रागीजनों के हृदयों के स्थलों को छूती हुई उन्हें विरागपूर्ण बना रही थी। दक्षिण प्रवास युक्त वे दक्षिण के अनेक ग्रामों, नगरों आदि को इस ओर ले जा रहे थे। दक्षिण का ग्राम ऊदग्राम 2007 में आचार्य सन्मतिसागर एवं आ.विरागसागर के उभय संग से शोभायमान मानो संग/परिग्रह से 'वि' रहित राजमान/विराजमान विराग ही देने आया था।।2।। सौभाग्यशील हैं वे मनुष्य जो मनु यात्रा के दर्शी हो रहे हैं अर्थात् आ.सन्मतिसागर और विरागसागर की मननशील यात्रा को कर रहे हैं। वे दक्षिण भाग में उदित हुए उदय रूप इन सूरी के दर्शन कर रहे हैं पूर्व श्रद्धाभाव पूर्वक इसलिए कि वे अपनी इन्द्रियों के अर्थ/विषय को दमन कर सकें। इस भाग में (ऊदगॉव में) आते हैं मध्यप्रदेश, गुजरात, उत्तरप्रदेश आदि अनेक भागों के लोग।।3।। इस कुंजवन के स्थान में एक सिंह नहीं, अपितु तीन सिंह अपने पचहत्तर सिंह साधक युक्त थे। इस अतिशय क्षेत्र में आश्चर्य है कि ये परम पावन कुंज रूप तीर्थ पर तीर्थमार्गी हैं।।4।। अनेक समागत लोग सेवाभावी बनते हैं रात्रि के समय, संवहन, संमर्दन, स्नेह मर्दन हेतु। पर वे विरक्त इसकी अपेक्षा नहीं करते हुए अपने आत्मस्वरूप में स्थित रहते हैं, क्योंकि वे उपवासी उपवास/आत्मा में निवास करना चाहते हैं। आचार्य सन्मति सागर अनुप्रेक्षा शील आचार्य किसी की अपेक्षा नहीं करते हैं।।5।।

वेज्जाइविज्ज-गुण-सावग-कज्ज-णिच्चं सूरिं उवज्झ-मुणि-साहग-साहिगाओ।
जे सम्मदी-समय-भाव-मुणी हवेंति ते पेक्खएंति णिय-आढ-असेव भावी।।6।।
आयारवंत-मुणिणयग-सम्मदि त्ति सिस्साण सिस्सदि सदा णिय-आद-पेक्खं।
देहे समागद-जुरदि-जरादि-किसं च रोगं तस्सिं च काल-लहु-मह-भुल्ल-किदेज्ज सेवं।।7।।
आसीस-जुत्त-इणमो वि विराग-सूरी सोवीस-दिक्ख-मुणि-पुण्ण-कुणंत णंदं।
पच्चीस-दिव्व-दिवसे दिव-दंत-माणो वासं जणाण रजदं रजदं विरागं।।8।।
अस्सिं च चादुसमए मुकुडो हि पव्वो दिक्खत्थिणो हि परिसोहण-जत्त-जादा।
रक्खासुबंधण-दिवे विहि-पंच-भूदो पच्छा हवेज्जदि सुदिक्ख-इणं दिवे हि।।9।।
वच्छल्लसागर-मुणीसर-सम्मदित्तु सं सम्मदिं च परिदाण-रदे हि दंसे।
सूरिं विराग-मुणिराज-विसेस-सिस्सं पत्तेज्ज पत्त-पढमो अणुपेह-रक्खे।।10।।
पज्जूसणस्स समए विहि-पुण्ण-पूजा आराहणा अवर सम्मदि-संग-लुंचो।
जाएज्ज एग सह सोलह-साहु-प भाव-पुव्वो अज्झप्प-णीर-सरिदं पवहेंति पव्वे।।11।।

श्रावक का कर्तव्य है वैय्यावृत्ति करना। वे आचार्य, उपाध्याय, मुनि, साधक एवं साधिकाओं की करते हैं, परन्तु जो होते हैं सन्मति के समय/सिद्धान्त के भाव वाले मुनि, वे आत्मा में स्थित असेवभावी ही दिखते हैं अर्थात् वैय्यावृत्ति की अपेक्षा नहीं करते हैं। आ.सन्मति सागर आत्मा में स्थित असेव/वैय्यावृत्त को नहीं चाहते हैं।।6।। आचारवंत मुनिनायक आ.सन्मतिसागर, शिष्यों के सदैव आत्मानुशीलन का उपदेश देते हैं। हाँ! यह ध्यान देने की बात है कि वे शरीर में समागत ज्वरादि रोग, जटा/वृद्धावस्था या शरीर शक्ति हीन होने पर उसी समय छोटे-बड़े का भेद भूलकर सेवा/वैय्यावृत्ति करना चाहिए ऐसी शिक्षा भी देते है।।7।। आ.सन्मतिसागर के आशीष से युक्त आ. विरागसूरी चौबीस वर्ष के मुनि दीक्षाकाल को पूर्ण कर चुके थे। वे मुनि आज भी प्रसन्नता को प्राप्त पच्चीसवें समय में दिव्य दिवस युक्त मानो दिन प्रतिदिन दांतवान् बने रहना चाहते हैं, फिर भी लोगों की भावना रजत दीक्षा मनाकर रज के अंत को करके विराग दर्शन के लिए प्रयत्नशील हो जाती है।।8।। इस चातुर्मास (2007) के समय मुकुट सप्तमी पर्व मनाया गया। दीक्षार्थियों की शोभा यात्रा निकाली गई। रक्षाबंधन के दिन पंचकल्याणक विधान हुआ और इसी दिन दीक्षाएँ भी हुई।।9।। वात्सल्य रत्नाकर के रत्न आ.सन्मतिसागर तो उत्तम सन्मति के दान देने में रत ही दिखाई देते हैं। वे आज भी आ.विरागसागर को पूर्व के शिष्य (28 वर्ष पहले के शिष्य) की तरह ही पाते हैं तब, जब वे समागत पत्रों को आचार्य सन्मतिसागर को पहले देखने को रखते हैं।।10।। पर्यूषण पर्व के समय पर विधि पूर्ण पूजा, आराधना आदि तो हुई ही साथ ही हुए केशलोंच। आ.सन्मतिसागर के पर्यूषण प्रारंभ के साथ सोलह साधुओं के केशलोंच सम्यक् प्रभाव डालने में समर्थ हुए। पर्व पर अध्यात्म नीर की सरिता को तीनों ही आचार्य बहाते हैं।।11।।

कारूण्ण-सील-गुरुवरो करूणं पदेज्जं अग्गेसरो जण-जणाण पसूण णिच्चं।
एगं च कुक्कर-सिसुं दुहि-जम्म-खीणं मंतं सुणेदि भव-सोहण-सम्म-हेदुं।।12।।
साणो वि पुण्णपवलेण अप्पं जम्मं धण्णं कुणेज्ज कध किं ण कुणेज्ज आम्हे।
सव्वाण सेट्ठ-मणुजाण इमो हि मंतो पादे सरेज्ज अवरण्ह-सुसंझकाले।।13।।
जे अज्झसील-बल-बड्ढगदा हि बाला सम्मं सरेंति इमणं अवसो हि बुद्धिं।
सत्तिं च णाण-परिवड्ढण-कारणंच पत्तेंति णिच्च सरएज्जण को वि हाणी ।।14।।
पुज्जो हि अत्थि अरहंत-सुणाण-पुण्णो सो केवली परम-णाण-पहू पहुत्तो।
धदिं च कम्मसयलं खदूदूण लोए सव्वण्हु-सव्व-दरिसी परमप्प-पंथी।।15।।
सिद्धो पणिद्ध-घणघादि-अघादि हरिणो लोयग्ग भाग-ठिद-णाण-सरूव-लोए।
आकार-हीण-अण-अक्खर-अक्खद-दाणसीला सिद्धो हि वण्ण-सम-दायग-पुज्ज-सिद्धो।।16।।
आयार-पंच-परमं अणुपालएं ति सूरी मुणीसर-गणी गण-णायगा जे।
ते अत्थि आइरिय-झाणि-तवी तवस्सी इट्ठे पदे हि परिचिट्ठिद-सुत्त-लेही।।17।।
सूरी गणाइरिय-णाण-दिवायरो त्ति रट्ठस्ससंत-सुद-वंत-मुणीसरो त्ति।
पंचेव पंच-परमत्थ-विराग-मंतं दाएज्ज साहग-मुणीण सुसावगाणं।।18।।

आ.विरागसागर तो करूणाशील हैं, शील के गुरुत्व से श्रेष्ठ करूणा प्रदान करते हैं। वे प्रत्येक जन को करूणा दान करते हैं वे पशुओं को भी करूणा दान करते हैं। एक दिन एक कुत्ते के बच्चे को दु:खी और जन्म के अंतिम क्षणों को प्राप्त होने वाले के लिए णमोकार मंत्र सुनाते हैं उसके भवशोधन, उत्तम भव प्राप्ति के कारणों तथा दु:ख से मुक्त होने के लिए।।12।। श्वान पुण्य की प्रबलता से अपना जन्म सफल कर लेता है, फिर हम लोग क्यों नहीं? सभी मनुष्यों के लिए, यह मंत्र प्रात:, अपरान्ह् एवं संध्या समय स्मरण करना जन्म को सार्थक करता हैं।।13।। जो भी अध्ययनशील, विकासशील या वृद्धिंगत बालक है यदि वे इसे अच्छी तरह स्मरण करते हैं तो निश्चित ही बुद्धि, शक्ति एवं ज्ञान परिवर्धन के कारण को प्राप्त होते हैं। इसके स्मरण से किसी तरह की हानि नहीं है।।14।। णमोकार मंत्र में अरहंत शब्द है, उसमें अरह पूज्य का प्रतीक है, इसलिए वे पूज्य हैं, पूर्ण ज्ञान वाले अरहंत हैं। वे हैं केवली, परम ज्ञान प्रभु, पूर्ण प्रभुत्व युक्त भी। वे घातिया कर्म को पूर्ण क्षय करके लोक में सर्वज्ञ, सर्वदर्शी और परमार्थ पथ वाले हैं।।15।। सिद्ध तो घाति और अघाति कर्म की समाप्ति के पश्चात् लोकाग्र के भाग में स्थित ज्ञात स्वरूप दिखाई देते हैं। वे आकार हीन अनक्षर भी अक्षर के अक्षय दान देने वाले हैं। सिद्धोवर्णसमाम्नाय तो पूर्ण वर्ण ब्राह्मी लिपि और अंकलिपि के सम्पूर्ण गणितीय आधार को दिखाने वाले हैं वे पूज्य सिद्ध इस मंत्र में सिद्धि तो देंगे ही।।16।। सूरी, मुनीश्वर, गणि, गणनायक, आचार्य, ध्यानी, तपी, तपस्वी आदि जो भी हैं वे इष्ट पद पर स्थित सूत्र लेखी भी होते हैं। वे पंच आचार के उत्कृष्ट भाव को पालते हैं।।17।। सूरी गणाचार्य, ज्ञान दिवाकर, राष्ट्रसंत, मुनीश्वर तो पाँचों ही को पंच बनाते हैं। ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप और वीर्य के मार्ग की प्रेरणा देते हैं। साधकों, मुनियों एवं उत्तम श्रावकों के लिए।।18।।

सम्मत्त-चादु-समयो बहुणंद-पुव्वो धम्मिल्ल-भाव-परिपुण्ण-सुसंत-सम्मो।
आराहणाइ रद-माणव-संत सीला जाएज्ज सीदल-सुचंदण-वंदणेणं।।19।।
गामे उदे रजद-दिक्ख-महुच्छवे हि देसेज्ज तं गुरुवयार-दिवं च सम्मं।
आसीस-सम्मदि-सूरिणा य भडारगाणं पण्णाण सेट्ठिवराण वदं वरेज्जा।।20।।
तं रट्ठसंत परमे पद-रंजिदं हि सूरी सम्मदिवरो बिजुगारियं च ।
सेट्ठे सिरोमणि-सुलंकिद-सम्मदीइ सुज्जो कुसग्ग-कुमुदो गणि णिच्छयो हि ।। 21।।
अरिसं चं काल-परमे परमो तवी हि सीसो उवेज्ज हरेज्ज हि पिच्छि पत्रं ।
ततो हि तं विमलकित्ति-पदेण रंजे सिद्धंत चक्कवरदिं गणि-गारवं च ।। 22।।
पंच च वास-रजदं विहि-णेग-रूवे पिच्छिं पदेज्ज मह-मंत-उमंग-भावे।
णेगाइणेग-मणुजा मण-भाव-सीला आगच्छि दूण गुणएज्ज गुणं च सव्वं ।। 23।।
मादुश्रि गेह-गुरुवरस्स वि खुल्लिगा हि रोगंत-पीडिद-मणं अवलोगिदूणं ।
सा अज्जिगं च परमं च पुणीद-दिक्खं संता विसंत सुसमाहि-सुमिच्च-पत्रं ।। 24।।

सम्यक्त्व पूर्वक चातुर्मास भी आनंदपूर्वक समाप्त हो गया। धर्मिक भावना से परिपूर्ण अत्यंत शांत मानों सम्यक् पथ, आराधना में रत मानवों के लिए शांतशील बन गया था। आज सभी वंदन से शीतल चंदन की तरह हो रहे थे।।19।। ऊदगाँव में ही 12/12/07 - 14/12/07 तक राष्ट्रीय स्तर पर पू. गुरुवर का राष्ट्रीय रजत दीक्षा महोत्सव 'गुरु उपकार दिवस' के रूप में पू. आ. तपस्वी सम्मतिसागर जी के विशेष आशीर्वाद से ऐतिहासिक अलौकिक रूप में विशाल जनमेदनी, भक्तगणों, महाराजगणों, आचार्यगणों, विद्धानों, श्रेष्ठियों, राजनेताओं आदि की उपस्थति में बड़े हर्षोल्लास से सम्पन्न हुआ।।20।। पाँच आचार्यों (आ. सन्मतिसागर जी, आ. कुशाग्र नंदी, आ. कुमुदनंदी, आ. निश्चयसागर, आ. सूर्यसागर) व एक ग. आर्यिका विमल प्रभादि के ससंघों व स्वयं के शिष्यों व दूर-दूर से आये श्रेष्ठियों, विद्धानों ने अपनी भावाजंलि पू. गुरुवर के चरणों समर्पित की।।21।। इसी बीच तपस्वी सम्राट श्री आचार्य सन्मतिसागर जी ने अपने शिष्य को उपहार स्वरूप विशेष आशीष व अपना ही पिच्छि-कमण्डल भेंट किया तथा उन्हें **'विमल कीर्ति'** की उपाधि से विभूषित किया, तभी पू. गुरुवर को **'सिद्धांत चक्रवर्ती', 'आचार्य गौरव' व 'राष्ट्रसंत'** की उपाधि से विभूषित किया। पू. गुरुवर ने भी आचार्य श्री सन्मतिसागर जी की इस युग में श्रेष्ठ उच्चतम तपस्या को साक्षात् देखकर **'युगाचार्य शिरोमणी'** की उपाधि से अंलकृत किया।।22।। अनेकानेक सांस्कृतिक व सामाजिक कार्यक्रमों, पिच्छि परिवर्तन से यहाँ राष्ट्रीय रजतदीक्षा महोत्सव का वर्ष प्रारम्भ हुआ जो 1 वर्ष तक चलता रहेगा।।23।। पू. गुरुवर की गृहस्थ अवस्था की मातु श्री जो वर्तमान में पू. गुरुवर से दीक्षित हो क्षु. विशांतश्री के रूप में संघस्थ थी, उनका स्वास्थ्य अचानक एकाएक गिरता गया और 2/1/08 के दिन आर्यिका दीक्षा लेकर देव-शास्त्र-गुरु की साक्षात् सन्निधि में णमोकार श्रवण करते हुए उनका ऊदगांव में ही विधिवत् समाधिमरण हो गया।।24।।

सो संघ-संघ-समदं समदत्त-हेदुं दिण्णत्थं-गाम-पुर-अंगण-सव्व-भागे।
आहार-दाण-चरिया-परहीण-जादा आगच्छि-दूण बहरेंति फलं च सुक्कं।। 25।।
अग्गे समप्प-फल-णम्म-भवा हि सव्वे जाणेज्ज णो चरियहीण-इमे हि कम्मी।
कज्जे रदा ण हु कि जाण-जणी वि अम्हे पासुक्क-सव्व-धिद-लोण-लवंग जुत्ता।।26।।
अम्हे दिगंबर-मुणी दिवसे इगकाल-भुंजे पासुक्क-सुद्ध-गिह-सज्झ-अवग्ग-जुत्ता।
जे सत्त-कुव्विसणमुत्त-सुसावगा ते धम्मिल्लमग्गि-जिण-भत्ति-गुणाणुरत्ता।।27।।
ते गेहि-गेह-असणं फल-दक्ख-काजुं दाणं विणा दुहिमणा उवदेस-मंतं।
जाणेज्ज विंसइग-काल-पहुत्तअभत्तख-भुंजे अम्हाण सक्किदिमहा उवकिज्ज-अम्हे।। 28।।
सुज्जोदयादु किरणादु समो हि सूरी चारेज्ज गाम-पुर-अण्ण-विराम-मुत्ता।
मुत्ता इमे मुणिगणा मणिकंत-सुज्जो भत्तागणा गिहगणी णमएज्ज सुत्ता।।29।।
पुंजग्ग-हत्थ-सयला णमएंति णिच्चं आभं णएदु-णय-मग्ग-गुणं च सच्चं।
मग्गे इगो वि मणुजो बहुभत्ति-जुत्तो मिट्ठोगुडो पणय-किल्ल-पमाण-पुण्णो।।30।।

संघ साथ है, समता को लिए हुए समत्व के कारणों के प्रदान करने वाला। ग्राम, पुर या किसी भी क्षेत्र में आहार दान की चर्या में लीन, मुनिचर्या रहित आते हैं वहाँ जहाँ संत होते हैं। वे आकर सूखे फलों आदि को बहराते हैं, भेंट चढ़ाते हैं।।25।। वे आगे समर्पित करते हैं फल नम्रभाव पूर्वक ही। वे चर्या विहीन इस कर्म को जानते हैं, वे अपने कार्यक्षेत्र में लगे हैं, उनकी गृहणियाँ भी यह नहीं जानती कि आप क्या लेते हैं? फिर भी उन्होंने इन्हें प्रासुक किया, इन्हें घृत, लोण, लवंग आदि युक्त किया।।26।। गुरुदेव समझाते समागत जनों के लिए कि हम दिगम्बर मुनि हैं दिन में एकबार भोजन लेते हैं, वह भी प्रासुक, शुद्ध, घर पर विधि पूर्वक तैयार किया गया। उनमें भी जो श्रावक आहार दान करते हैं वे भी तो सात व्यसन मुक्त श्रावक गुणधरी, धर्मिक, जिन मार्गी, जिन भक्ति युक्त तथा गृहस्थ के आवश्यक गुणों में रत भी होना चाहिए।।27।। वे गेही हैं, घर में रहते हैं, घर के खाने में से काजू दाख आदि फल लाए हैं, वे दिए बिना दु:खीमन उपदेश मंत्र-गुरुदेव आचार्य विरागसागर के अभिप्राय को समझते हैं और इक्कीसवीं शताब्दी में जो अभक्ष्य भोजन को महत्त्व दे रहा है, ऐसे समय में हमारी महान् संस्कृति में ऐसा भी है। हम उपकृत हैं यही सब कहते हैं।।28।। सूरी तो सूर्योदय की किरणों से किरणभूत ग्राम, पुर एवं अनेक अन्य स्थानों की ओर विराम रहित विचरण करते हैं अपनी चर्या के साथ। मुनिगणों की मुक्ताएँ हैं और सूरी तो सूर्यकान्त मणि हैं तभी तो भक्तगण गृहीजनी सुक्ताओं वाली पुत्र-पुत्रियों सहित नम्रीभूत होते हैं।।29।। हमारी संस्कृति में दर्शनार्थी पुंज हाथ में लेते हैं सभी लोग यही भावना करके कि हम नयमार्ग से विहीन इनके सत्यगुण को ले सकेंगे। विहार मार्ग में एक मनुज अत्यंत भक्तियुक्त मिष्ठान रूप गुड़ वो भी पाँच किलो प्रमाण से पूर्ण आता है।।30।।

अग्घं समप्पिद-णमं च अणेग-वारं कुव्वेज्ज संति-सरलं मुद-हास-भावं।
दंसेज्ज अज्ज मण-कज्ज-सुइट्ठ-सव्वं जेसिं णमेज्ज मह मादु-णिरोग-भूदो।।31।।
बाबा तुमं परम-वच्छल-पुण्ण-दयादि-मुत्ती तं दंसणं च कुणिदूण मणे जणणिं णिरोगं।
घंटेग-पुव्व-मह-कामण-भावणो मे सम्मं च देस-अणुदेसय-दूरभासे।।32।।
भत्तीमणो धणविहीण-जणो दु मण्णे तुं दंसणेण दूध काल-इणं च जादि।
अच्देर ओ पहुपहाव-विसेस-रूवे तुम्हेरकेर मुणि-माहण-साहगेहिं।।33।।
इमे दिगंबर-वणग्ग-वणीसरो हि सीहो समो अणुचरेदि धरेदि झाणं।
क्रूरा अरण्ण-पसुणो णहु बाहएंति सूरा ण अवर रक्खग-सम्म-सव्वे।।34।।
मेहाकवाल-विकराल-कलूट-कूडा आगार-हीण-अणगार-समोखी वि।
अत्थंचले वि गदिसील-विराम-सीलो विस्साम-हीण-वरूणो रज-कण्ण-पुण्णो।।35।।
खुल्लंबरो रजकणेहि विदाण-भागं उच्चेज्ज7णेज्ज गगणे बहणीर-रागं।
हुं हंकरं गदिधरं ण विराम-रामं किण्णुत्ति सो मुणिवराण परिक्खणत्थं।।36।।

वह पाँच किलो गुड़ का अर्घ गुरु चरणों में अनेक बार नमन करके समर्पित करता है, वह शान्ति को प्राप्त करता है। वह अत्यंत सरल मुदित हास्य भाव को प्राप्त होता है, तब, जब वह उनके दर्शन करता है। मन में माँ के निरोग होने के इष्ट भाव थे, जो इन्हें **'नमोऽस्तु'** करने पर पूर्ण हुआ मानता है। वह गुरुदेव को अपनी मातुश्री को निरोग होने की सूचना देता है।।31।। बाबा! आप परम वात्सल्य पूर्ण हो, आप दया की मूर्ति हो। मैंने एक घंटे पूर्व आपके दर्शन करते हुए मन में महान् भावना की थी, मेरी माँ ठीक हो जाए। अभी एक घंटे बाद दूरभाष पर यह सूचना प्राप्त हुई थी।।32।। यह व्यक्ति धनविहीन है, पर अपार भक्ति युक्त हूँ, क्योंकि आज इस काल में ऐसा हो सकता है? आश्चर्य है! आप चमत्कारी बाबा हैं। आपका प्रभुत्व प्रभाव भी विशेषताओं को लिए हुए है। जो आज आप जैसे मुनियों, माहनों एवं साधकों से हमारे लिए प्राप्त हो रहा है।।33।। ये दिगम्बर मुनि और वन में अग्रगामी ये वनीश्वर/सिंह तो सिंह समान हैं। वे सिंहवृत्ति करते हैं और यहाँ ध्यान भी निश्चित करते हैं? ये क्रूर अरण्य पशु हैं पर इन्हें बाध नहीं पहुँचाते हैं? सो ठीक है जो सभी की रक्षा करते हैं उनके रक्षक के प्रति अन्य (हिंसक) भाव नहीं होता है।।34।। पुर, ग्राम आदि में विहार भी इन आगार हीन अनगार की परीक्षा लेना चाहता है। मेघ काले-काले विकराल रूप लिए हुए दिखाई देने लगे। आगारहीन मेघ, आगारहीन रवि और आगारहीन वरूण भी अब अनगार बन गए थे। मेघ विकराल हो गए, सूर्य अस्तांचलगत होने लगा और वरूण ने रजकण की चादर फैलाना प्रारंभ कर दी। यह विश्राम हीन वरूण धूली ही धूली से आसमान को आच्छादित करने लगा।।35।। खुला आकाश तो रजकणों का वितानभाग उड़ाने लगा, वह उन्हें गगन की ओर ले जाने लगा। नीरधरा भी राग उत्पन्न करने लगी हूं-हूं आदि के हुंकार गति के साथ धरा का रूप ले लेती है। जो उस समय आराम नहीं चाहती, अपितु मुनिवरों की परीक्षार्थ यह संकेत देने लगी कि अब आप अपने राम को हमारे विराम को याद करें।।36।।

रामो विराम-परमो हि इमो हि आदा सिद्धोसहाव-परमो हि विसुद्ध-आदा।
आराम-राम-जिण-तित्थ-सुमग्ग-मग्गी झाणग्ग-भूद सयला ण हु राम-रामे।।37।।
घोराघड़ा पयडि-अंबर-अंबराणं अच्छादणं कुणदि जो हरूणो बहेदि।
झंझप्पवाह-पवणादु पडेज्ज रूकखा धीरा इमे मुणिगणा मुणणप्पउत्ता।।38।।
धूलीकणा रजद-रूव-धरंत-वाही मुत्तासिरी-सरल-नीर-सुसीदलो हि।
जत्थेव सुकख-धवलं धवलेंति सव्वे विस्साम-साम-रज-राग-समं कुणेंति।।39।।
गामे विगामउमराण-पवेसजुत्ता ऐसो सिरी-सुहद-संघसमो हि पुण्णो।
गच्छेदि गच्छ-परिकच्छपुरे हि णिच्चं सड्ढेज्ज तित्थ-अणुगामि-मुणिं च तेसिं।।40।।
सेदंबरा वि जिण-तित्थ-जिणागमाणं सड्ढेज्ज अणपुरिसा वि जिणेदरा वि।
कल्लाण-मग्ग-अमिदे पहमाण-वाए सच्चप्पहा विसुहि-दंसण-सज्झिगाओ।।41।।
ताओ जिणागम-गुणीउ पुणीद-मग्गी वच्छल्लमुत्ति-जिणसुत्ति-विराग-कम्मी।
आगच्छएंतिसमणी समणीण-पण्णा संगे उवासग-उवासिग-सच्छ-जण्णा।।42।।
सूरीविराग-परमागम-वारिधी वि सो वीदराग-अणुसासग-सागरो वि।
सागार-गार-परिमुंचण-चत्तणं च भासेदि जो परम-सुत्त-पमाणयारी।।43।।

राम है परम विराम, आत्माराम, जो सिद्ध है, परम स्वभाव है और विशुद्ध आत्मा है, आराम-विशुद्धदर्शन, विशुद्धज्ञान और विशुद्धचारित्र रूप राम-परमात्मा है, वे जिन तीर्थ है, उनका मार्ग उत्तम मार्ग है, उस मार्ग के मार्गी तो ध्यानाग्रभूत होते हैं, वे नहीं है, राम राम मात्र आत्मा आत्मा करने वाले।।37।। घटाएँ घनघोर आई, प्रकृति के अम्बरों को अम्बर देने, आच्छादन करने भी, जो वरूण भी प्रवाहमान करना है। झंझाप्रवाह रूप पवन से वृक्ष धराशायी हो सकते हैं, परन्तु ये धीर मुनिगण तो सदैव मनन में प्रवृत्त रहते हैं।।38।। धूलीकण तो रजत रूप धरण करते हुए जो उड़ रहे थे, वे मुक्तश्री रूपी सरल नीर से शीतल हो जाते हैं। जैसे ही वे बरसती हैं, वैसे ही शुष्कता रूपी धवलता को भी वे धवल कर देती हैं। यह विश्राम था उन रजकणों का जो अपने रजरूपी राग को श्रम दे जाती हैं जो सम-समत्व धारण करते हैं वे रागरूपी कर्म को भी शमन कर देते हैं।।39।।यह भी संघ समत्वपूर्ण बना रहता है, जिस गच्छ, कच्छ, नगर, ग्राम, पुर आदि में प्रवेश करता है, वहाँ लोगों में श्रद्धा उत्पन्न कर देता है। ग्राम उमराना में भी श्रद्धालुजन उनके प्रति श्रद्धा उत्पन्न करते हैं क्योंकि उनके लिए मुनि तो तीर्थ मार्ग के प्रवर्तक होते हैं।।40।। इस संसार में जो भी वे चाहे जिनागमों या तीर्थों को मानने वाले श्वेताम्बर हों या जैनेतर जो भी हैं वे कल्याणमार्ग पर चलने वाले अमृत रूपी वाणी प्रवाह की इच्छा करते हैं। उन्हीं में साध्वी श्री सत्यप्रभा और विशोहि दर्शना जैसी साध्वियाँ भी तीर्थमार्ग और आगमों की प्रभावना बढ़ाने वाली थीं।।41।। उपासक और उपासिकाएँ स्वच्छयत्न से युक्त आती हैं वहाँ जहाँ श्रमण-श्रमणियों के प्राज्ञ भाव होते हैं। वे साध्वियाँ तो जिनागम के गुणों की इच्छावाली, पुनीतमार्गी, वात्सल्यमूर्ति जिनसूत्री, विरागकर्मी थीं।।42।। सूरी विरागसागर परमागम के वारिचि विराग के परम भाव को दर्शाते हैं, वे वीतराग मार्ग के अनुशासक सागर भी हैं तो वे हैं सागर के गारे/कीचड़ में लिपटे जनों के गारे/कीचड़ (सप्तव्यसन) के छुड़ाने एवं अरूण करने वाले, क्योंकि उन्होंने जो मार्ग अपनाया परम है, सूत्र के अनुसार प्रमाणकारी है।।43।।

सज्झीसमागम-समागद-समगाणं देसेज्ज जाण-परिचिट्ठिद-सावगीणं।
णिग्गंथगा तध दिगंबर-अंबरा के जे मुच्छिगा रदिपमार-करिं च चिट्ठे।।44।।
वच्छल्ल-पीदि-अणुरीदि-सुदाणुगामी धम्मप्पहावग-पधी पध-तित-कम्मी।
पीऊस-पाण-कुणमाण-कुणंतेज्जा णेज्जाणदी-पसर-णीर-पपुण्ण-धम्मी।।45।।
पच्छा गुरुं च चरियं असणं च पाणं दंसेज्ज सज्झि-उहया अदिभोद-जुत्ता।
तं सूरि-साहु-परिवार-समत्त-संघं आमंतएज्ज सद-सावग-साविगाहिं।। 46 ।।
सो ठाणगं च अणुगामि-जणेहि जुत्तो गच्छेदि सुत्त-परमागम-सम्म-वत्तं।
तत्थेव पत्त-गुरु-सागर-सार-दाणं गंभीर-अच्चहिग-पावण-आद-मुत्तं।।47।।
उण्हे तवे तवण-उण्ह-इणं च सूरिं कादुं च इच्छगदिमाण-सुचित्त-चेत्ते।
मासे वि सो अवर-सुज्ज-मणे विचिंते भा भासुरो परम भासुर-सूरि-एसो
तत्ते वि सीद-कर-पावग-खीण-हेदुं।।48।।
सच्चप्पहा तध विसोहि-सुदंसणा वि हीणो त्ति अज्ज पवणेण विणा हि चिट्ठे।
अण्णे जणा पसयमाण-पसीण-जुत्ता हत्थंकए विजण-इच्छमणे विसण्णा।।49।।

साध्वियों का समागम श्रावकों और श्राविकाओं का अत्यधिक संख्या में आगमन होता है। वे मानों श्रावक के व्रत रूपी यान में स्थित होती हुई उपदेश सुनती हैं, फिर सोचती हैं कि जो रति एवं प्रमाद रूपी करि पर स्थित हैं वे मोही हैं। निर्ग्रन्थ दिगम्बर ऐसे होते हैं और अम्बर वाले ऐसे होते हैं।।44।। वे कहती हैं कि यहाँ तो है वात्सल्य अंग, प्रीति की परम्परा श्रुतानुसार चलने की परंपरा। ये श्रुत रूपी अमृत का पान स्वयं करते हुए दूसरों को भी कराते हैं। ये अत्यधिक नीरस पूर्ण नदी है, जो पूर्णसागर रूपी धर्म तक ले जाने वाले हैं।।45।। इसके पश्चात् दोनों साधिवयाँ अशन-पान रूप आहार चर्या को देखती हैं, वे इससे प्रसन्न होती हैं। फिर श्रावक-श्राविकाओं के द्वारा आ.विरागसागर एवं समस्त संघ को आमंत्रित करती हैं।।46।। वह संघ लोगों के साथ अनुगमन करता हुआ उत्तम स्थान को प्राप्त होता है। वहाँ सूत्र ग्रन्थों के परमागम के परम तत्त्व की चर्चा होती है और वहीं पर आ.विरागसागर गुरुत्व सागर रूपी पत्र से रहस्य व्यक्त करते हैं उससे गंभीर/गहरा अति पवित्र आत्ममुक्ताएँ फूट पड़ती हैं।।47।। गर्मी के समय में यह तपन/सूर्य यहाँ उष्णता को लिए हुए है, ये सूरी भी सूर्य की तरह तप को व्यक्त करते हैं, पर इस चैत्र मास में मानों तप के चित्र से चित्त में चिंतन ही दे रहे थे। सूर्य तो इस दूसरे सूर्य पर विचार करता है कि मैं भी के कारण भास्कर हूँ, परन्तु ये परम भास्कर/परमार्थ के भास्कर-रत्नत्रय के सूर्य सूरी तो तपस्या रूपी शीत किरणों से ताप शान्त कर रहे हैं। सो ठीक है रत्नत्रय के तेज में भी पावक की शक्ति क्षीण करने में कारण ऐसे सूरी ही हो सकते हैं।।48।। इधर सत्यप्रभा और विसोहीदर्शना साध्वियाँ, अन्य लोग पसीने से तर इस्तांकक/रूमाल या अन्य हाथ से हिलाई जाने वाली वस्तु से व्यंजन की मन में इच्छा किए हुए हैं वे खिन्न हैं, पर आज आ.विरागसागर परवन से रहित/ व्यंजन की हवा बिना पसीने से रहित बैठे हैं। अर्थात् उष्ण परीषह को सहन कर रहे हैं।।49।।

अण्णे पवाससमए समचक्क चक्को दोचक्क-वाहग-जणा गहिरत्त-कट्ठं।
पत्ते सुणेज्ज गण-गारव-सूरि-वीरो सो चेदभाव-कुण-माणव-मंत-लेहं।।50।।
मिच्चुं मुहं च गमएज्ज जणो वि चेदो जाएज्ज अच्छरिय-माणव-चित्त-णंते।
मंतं ण तंत-मणि-वेज्ज-सहाय-लोए तत्तो वि अज्ज चिद-चेद-पसण्ण-भावं।।51।।
तोसो इमो वि इगले इगभुत्त-सूरी आराम-सुण्ण-असणं विणु संत-धीरो।
पस्सेज्ज मोण-मुणिसंघ-सुझाण-लीणा जे सावगा अणुसुणेंति मणे हि खिण्णा।।52।।
साहूण सम्मचरिया विधि-सुद्ध-सव्वे णीरे असे वसण-सुद्ध-विचार-पुव्वे।
काएज्ज रत्तिसमए ण हु कप्पदे तं पासुक्क-णीर चदुवीस जलं च दवे प्रमाणे ।।53।।
अम्हे वुभुक्खु ण हु भिक्खु-पमाणमग्गी पालेंति सम्म-णियमाण मुणीण अज्ज।
जे हुंति साहग-मुणी समयं समयं गणेंति वीरस्स तित्थयर-मग्ग-सदा हि सेट्ठो।। 54 ।।

एक अन्य प्रवास समय में समयचक्र के चक्र युक्त दो मोटर साइकिल सवारों के कष्ट को सुनते हैं, तब वे सूरी एक योद्धा की तरह उस ओर जाते हैं, फिर चेतना लाते हैं उससे मानव हृदय मन में आ. के प्रति श्रद्धावत होते हैं।।50।। मृत्यु के मुख में जाने वाला मुनष्य चेतना युक्त यदि होता है तो आश्चर्य होना स्वाभाविक है, मानवों के अनंत चित्त में। जहाँ मंत्र, तंत्र, मणि, वैद्य आदि इस लोक में सहायक नहीं होते, ऐसे समय में आज सभी चेतना को प्राप्त मनुष्य को देखकर प्रसन्न भाव को धारण कर रहे हैं।।51।। आ. एवं समस्त संघ इगलपुरी में संतोष युक्त। यह संघ एक भुक्ति है जानते हैं लोग। आराम शून्य अनशन/आहार बिना भी शांत, धीर, मौन एवं ध्यान में लीन मुनि संघ है ऐसे श्रावक देखते हैं और जो भी सुनते हैं वे सभी दु:खी भी होते हैं।।52।। साधुओं की सम्यक्चर्या विधि, सम्यक्शुद्धता होने पर होती है। नीर, अशन, वसन आदि में विचारपूर्वक शुद्धता होने पर भी यदि वह रात्रि के समय की जाती है तो वह उन्हें कल्पती नहीं। प्रासुक जल की मर्यादा चौबीस घंटे तथा घने जल की मर्यादा दो घड़ी प्रमाण होती है।।52।। जो होते हैं साधक मुनि वे समय और समत्व को धयान रखते हैं। वे वीर तीर्थंकर के मार्ग पर सदा श्रेष्ठ होते हैं यही सोचकर मुनियों के सम्यक् नियमों का आज भी पालन करते हैं क्योंकि भिक्षु/साधु प्रमाणमार्गी/ शास्त्रोक्त विधि पर चलते हैं। तभी तो कहते हैं हम बुभुक्षु नहीं भिक्षु/समीक्षण भाव के साथ तीर्थ परम्परा के प्रमाण को आधर बनाने वाले हैं।।54।।

संतमग्ग-अज्ज-सज्ज कंतपुण्ण-सम्म-पत्त।
मंत-तंत-मुत्तं-रज्ज जंत-णंत-सुत्त-सत्त।।
वीदराग-सीद-कज्ज धम्म-झाण-सुक्कलज्ज।
आदिणाध गंथ-चत्त सव्व-कम्म मुत्ति-रज्ज।।
इच्छमाण चारिचंद चारू-सार-पंच-मंत।
वीरदेस सूरिलेह दंसएज्ज लोग-तंत।।

इदि सेंतालीस विरागो समत्तो ।

अडतालीस-विरागो

चरे गाम-धीरा धरे झाणसूरा मुणीण्णाम-णीरा चिदे चित्त-चीरा।
पसंतप्पवीणा विरागे विरागा करे पोत्थ-सुत्ता भजे आद-वीरा।।1।।
वीरा इमे सयल-तित्थपराण पंथी णिग्गंथ-सव्व-परमागम-सुत्त-णंदी।
गंथेंति गंथ-अरहं परमत्थ-अत्थं देसेंति ते अरिहंत-पुणीद-मग्गं।।2।।
दाहिण्ण-कण्णड-मलल्ल-पंतं वादाम-काजू-णरिएल-लवंग-खेत्तं।
धण्णादु धण्ण-परमं परिचत्ति अज्ज रट्ठे महा वि मरहट्ठ-सिवं पुणीदं।।3।।
बोरीवली णयर-मुंबइएग-खेत्तो तेसिं जणाण बहुमाण-सुसावगाणं।
अग्घं च अग्गह-मणं अणुमाण-सम्मं जाणेज्ज सो वि चदुमास-कुणंत-माणं।।4।।
सूरी गणी मुणिवरा हि वरेज्ज कुंद सो वारसाणुपिह-पेक्ख-सदा हि कम्मी।
सव्वोदइं च सर-सक्लिद-टीग-टीगेज्ज णं मुम्बई परमंजण-पदे हि सोहजत्ते ।।5।।

ये हैं उचित चर्या के धीर मुनि, ये हैं धयान में शूरवीर, ये मनन में प्रवृत्त मुनि रूपी स्वच्छ नीर जो सभी के चित्त में स्थित चैतन्य के भाव जगा रहे हैं। ये हैं शान्त संत, विराग में विराग से प्रवीण। इनके हाथों में है सूत्रों की पोथियाँ एक सूत्र में बाँधने के लिए। और ये आत्मवीर हैं जो उसी के सूत्र में निबद्ध शानत संत हैं।।1।। ये वीर हैं, समस्त तीर्थंकरों के पथानुगामी। ये निर्ग्रन्थ हैं, ग्रन्थ/ बाह्य-आभ्यंतर परिग्रह से रहित, समस्त परमागम के सूत्रों में आनंद लेने वाले। ये अर्हत् के परमार्थ रूप अर्थ/समीचीन अर्थ को ग्रन्थ में गूँथते हैं अर्थात् परमार्थ के अर्थ को आज भी अर्हत्/सर्वज्ञ की देशना के अनुसार प्रस्तुत करते हैं तथा ये अरिहंत के पुनीत मार्ग की देशना करते हैं।।2।। मुनिसंघ दक्षिण के कर्नाटक, तमिल, आदि प्रान्त के बादाम, काजू, नारियल, लवंग आदि क्षेत्र तथा धन्य एवं धन से पूर्ण क्षेत्र छोड़कर अब राष्ट्रों में महान महाराष्ट्र के लिए पुनीत शिव/कल्याण मार्ग को दिखलाते हैं। अर्थात् महान योद्धा शिवाजी के क्षेत्र शिवरूप पुनीत भाव देने में प्रवेश कर जाते हैं।।3।। बोरीवली मुंबई का एक क्षेत्र है उनके बहुत श्रावकों की इच्छा अर्घ एवं मनाग्रह को आचार्य श्री ने समझा और उन्हें चातुर्मास की स्वीकृति दे दी।।4।। मुम्बई महानगर में चातुर्मास के पूर्व श्रुतपंचमी के अवसर पर पू. गुरुवर के द्वारा आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी के 2000 वर्ष प्राचीन ग्रन्थ वारसाणुवेक्खा पर **'सर्वोदयी नामक संस्कृत टीका'** का लेखन कार्य नंदीश्वर मंदिर में पूर्ण किया गया। जिसकी खुशी में जुलूस शोभायात्रा धूमधाम से निकाली गई।।5।।

संते पपंत-चरणे सिव-दीण-हीण आगच्छिदूण भवणंत-अदीव-पीडं।
भासेंति जूय-जुद-पण्ण-पहाण-भावं हाणिं च लाह-अणुलाह-असंत-कट्टीं।।6।।
णिम्मोहि-साहग-मुणीसर-संत-चित्तो अप्पाणघाद-पडिघाद-पपाण-मुत्तं।
सव्वे खए धण-धणे जध आद-अप्पे सो अज्ज अण्ण-मणुजे अवसेरू दुक्खं।। 7।।
बोहेज्ज सूरि-इणमो मणुजाण णिच्चं वत्थुं गहेज्ज जध खीयदि णस्सदे हि।
पण्णेहि णो दुहिददे तुह चित्तवीरं अज्जेव भासदि इमो चिदचेद-तुम्हे।।8।।
सो गच्छमाण-पुर-गाम-अणेग-भागे गच्छेदि रट्ठ-महरट्ठ-तम्मिल्ल-पंते।
णो अत्थि दुक्ख-मणसे ण किलेस-देहे देहोत्थि रोग-गिह-मण्ण-सुसाहुचारे।।9।।
आदंग-छाह-गद-देस-पदेस-भागे सम्मंच चारूचरिदं णिर बाहमाणं।
संतं विराग-गण-साहु-सुणाणजुत्तं दंसेंति जे वि मणुजा णमाहिंति पादे।।10।।
माहे णबंवर-पवेस-सुसीद-काले अण्णे पदेस-मणुजा अदिसीद-कंपे।
मुंबाकिवाइ णयरे रिदु-सव्व-सम्मो गोरे हि गाम-मणुजा अदिधण्ण-जादा।।11।।
आदंग-काल-समए अदि-भीद-जुत्ता ताजंगणे सण-सणागद-अग्गि-कंडो।
णेगादिणेग-बहुभाग-असंत-जुत्ता तत्तो वि सो सयल-साहु-सुसाहु-भावी।।12।।

इन संतों के चरणों में शिव/सुखी, दीन-हीन/दु:खी आकर संसार की अनंत पीड़ा को स्वयं ही कठोर कहते हैं। द्यूत युक्त लेन-देन की व्यापारिक गतिविधियों के हानि-लाभ, अनुभाग एवं अशांत हुए कष्टजनों के भावों को व्यक्त करते हैं।।6।। निर्मोही साधक मुनीश्वर तो शान्त चित्त आत्महत्या, प्रतिघात, प्राणों के घात आदि को सुनते हैं। सभी सम्पत्ति से विहीन लोगों को देखते हैं या आज अन्य मनुष्यों पर आए हुए दु:ख को टालते हैं।।7।। इस पर आचार्य श्री लोगों को समझाते हैं कि जो वस्तु जिस तरह से ग्रहण की जाती है वह उसी तरह समाप्त होती है धीरे-धीरे और नष्ट भी होती है। रूपयों पर दु:खित होने पर कुछ भी नहीं प्राप्त होगा। यह शेयर/द्यूत तो वीर चित्त को भी चलायमान कर देता है। अत: आप सभी अपने आत्म स्वरूप का चिंतन करें और जो महावीर ने अपरिग्रह की शिक्षा दी है उसे जीवन में उतारें।।8।। वे एक नगर से दूसरे नगर, ग्राम आदि में जाते हैं। बड़े प्रदेशों तमिल प्रान्त के पश्चात् महाराष्ट्र में प्रवेश कर जाते हैं। उसके मन में किसी तरह दुख नहीं और देह में क्लेश भी। वे तो देह है तो रोग का आवास होगा ही ऐसा सोचकर साधु की सम्यक् चर्या से विचरण करते हैं।।9।।आतंक के वातावरण में देश के अनेक प्रदेशों में विचरण करने वाले सम्यक् क्रिया युक्त आचार्य विरागसागर और उनके समस्त संघ को उत्तम ज्ञान/शास्त्र ज्ञान की ओर लीन पाते हैं तो सभी मनुज उनके चरणों में नमन करेंगे ही।।10।। नवम्बर 2008 में जहाँ अन्य प्रान्तों में शीत अधिक होती थी, वहीं इस क्षेत्र में मानों मुंबादेवी की कृपा से चारों ऋतुओं का कैसा प्रभाव रहता है। बोरीवली के 2008 चातुर्मास के पश्चात् गोरेगाँव में आए उससे लोग अति आनंदित हुए।।11।। आतंक के समय में अत्यधिक भय बना रहता है। आतंककारियों ने ताज होटल एवं अन्य क्षेत्रों को अपना निशाना बनाया। ताज जल उठा, अनेक भाग अशान्त हो गए फिर भी आचार्य श्री एवं उनका समस्त संघ साधुचर्या से विचलित नहीं हुआ।।12।।

णिच्चं च सुत्त-सम-वायण-सिक्ख-सिक्खा आराहणा-परम-भत्ति-जणाण पक्खा।
पुट्ठं कुणेंति किद-कम्म-सुधम्म-रक्खा सड्ढाजणा पवयणे सुदणेह-कक्खा।।13।।
कोडी इगे मणुज-लक्ख-इमे हि जेणा धम्मं कुणेंति णिय-खेत्त-णिवास-भूदा।
ते सव्व-अप्प पुर-आगद-सागदं च कुव्वेज्ज धण्ण-धणचत्त-सदा हि रत्ता।।14।।
पुण्णाणुबंध-पवला मणुजा हि सव्वे धण्णा हवेंति जिणवाणि-सुवायणाए।
तं बाहमाण-गदिमाण-अणंत-सोक्खं सोच्चा विराग-गुण-जुत्त-णियं च णंदं।।15।।
कालोत्थिं सारसमयो समयं पदाणं जत्थेव होदि अणुसासण-सास-तित्थं।
ते गेहि-गेह-रदणं तय-भावणं च णेंति त्थि कुंदधवलं-धवलंकहेदुं।।16।।
संघे णिरंतर-सुदस्स इगेव पोत्थं सज्झाय-जाद-परमत्थ-पगासणत्थं।
गोदे वि गाम समएण सहेव थोदं भत्ताभरस्स महभत्ति-विहाण-कज्जं।।17।।
पच्छा गुलाल-परि-वाडि-पसेस-जादो तत्थेव मंगल-मयं बहुसड्ढ-भावं।
उप्पज्जएज्ज गुरुविराग-विराग-सम्मं दिक्खा-दिवंच रजदं रजदंत-हेदुं।।18।।
सव्वत्थ-संत-हिद-पावण-णंदभावो पक्खाल एंति चरणे गुरु-गारवं चा।
आबाल-बुड्ढ-णर-णारि-सुमाणजुत्ता सज्झाय-सागर-णिमग्ग-पसण्णसीला।।19।।

वहाँ उस आतंक के वातावरण में वे सूत्र की समय पर वाचना एवं उनकी शिक्षा युक्त होते हैं। लोगों की आराधना, परमभक्ति कर्म करते हुए उत्तम धर्म की रक्षा हो ऐसी भावना उत्पन्न करते है। श्रद्धालु प्रवचन में श्रुत स्नेह को दर्शाते हैं और उनकी कक्षा के कक्ष बनते हैं।।13।। इस एक करोड़ की संख्या वाले नगर में जैन भी लाखों की संख्या में थे, वे अपने-अपने क्षेत्र में रहते हुए धर्म करते हैं। परन्तु वे सभी अपने नगर में आगत का स्वागत चाहते हैं इसलिए वे धन-धान्य को छोड़कर धर्मलाभ में लीन रहते हैं।।14।। पुण्यानुबंध का जब प्रबल योग होता है तब सभी लोग ध न्य होते हैं, वे जिनवाणी की वाचना को प्राप्त होते हैं। उसी जिनवचन के प्रवाह रूप अनंत गति/मोक्षगति के सुख को सोचकर लोग विराग गुण युक्त अपने निजानंद को आनंदित करते हैं।।15।। काल तो समय है। समय की सार्थकता समय/सिद्धांत देना ही जहाँ प्रयोजन है वहाँ अनुशासन तीर्थमार्ग की शिक्षा दे जाता है। वे गेहीजन इस रत्न/विराग रत्न से रत्नत्रय की भावना को प्राप्त करते हैं क्योंकि कुंद पुष्प तो धवलता को देता है। यदि उनका समयसार समय जहाँ बन जाता है वहाँ धवलता के कारणों की प्रमुखता होती है।।16।। संघ में निरंतर श्रुत को/एक पुस्तक को स्वाधयाय का अंग बनाया जाता है वह स्व+अधि आत्म अध्ययन के लिए वह भी परमार्थ प्रकाशनार्थ के लिए होता है। भक्तामर का महाभक्ति युक्त विधान के कार्य को भी किया जाता है।।17।। गोरेगाँव के पश्चात् गुलालवाड़ी में प्रवेश होता है। वहाँ पर मंगलमय प्रवेश बहुश्रद्धा भाव को उत्पन्न करता है। वहाँ आ.विरागसागर का सम्यक् विराग के पच्चीस वर्ष रूप रजत जयंति समारोह मानो रज के अंत हेतु ही किया जाता है।।18। सर्वत्र शान्त, हित, पावन एवं नंदभाव होता है। लोग गुरु गारव को बढ़ाते हैं, उनके चरण प्रक्षालन करते हैं। आबाल वृद्ध, नर-नारी आदि सम्मानयुक्त स्वाध्याय के सागर में निमग्न प्रसन्नशील होते हैं।।19।।

आणंद-उच्छव-महुच्छव-सव्व-भागे दोण्हं दिसंबर-सणे अड-साहस्स-दोवि।
भत्ताण सागर-पुरे मह-माणवा-णं भट्टारगाण विवुहाण सुसेट्ठिगाणं।।20।।
पासप्पहुस्स गुणगाण-सुगदि-हेमा णं मंग-अज्जिग-विसिट्ठ सुमंगणं च।
विस्सुट्ठ-सागर-विसेस-मुणी गुणंतं दाएज्ज लाह-सुद-णाद-अणंत-णाणं।।21।।
भत्ती भुणाणुरद-माणव-अज्जसव्वे संसार सागरतरं च विराग-णावं।
णेदूण राग-परिबंधण-छिंदणत्थं मालिण्णंमुत्त-विणयंजलि-दाण-हेदुं।।22।।
पूदो दिवो संजम-विराग-विराग-पुण्णो पासं महा जलहि सेग-सुसंत धरं।
पच्छा हवेदि पणविंसदि-सोहणादी सत्थदि-मंगल-अडं णइदूण चादी।।23।।
एसो विसाल-अणुसासिद-संघ-राजे पाहाभगो विमल सागर-सूरिणो हि।
दाणं विराग-परमं करणत्थ-सव्वे सव्वण्हु-सीस-सुद-राग-पहावणं च।।24।।
पच्चीस-सत्थ-विसदं च णाणदाई तं सावगेहि पणविंस-सुमंग-पुव्वं।
दाए कमंडल-सु-पिच्छि-गणे हि हत्थे णायं च भक्कर-पदं च अलंकिदो सि।।25।।

---

2 दिसम्बर 2008 रजत जयंति महोत्सव तो सभी ओर उत्सव और आनंद को उत्पन्न करता है। इस महानगर में महामानवों का सागर था, भक्तों का सागर था, विद्वानों और श्रेष्ठिजनों का सागर था।।20।। श्री पार्श्वनाथ दि.जैन मंदिर गुलालवाड़ी के प्रभु पार्श्वनाथ का गुणगान किया ब्र.दीदी हेमा ने। आर्यिका विशिष्ट श्री ने तो अपने मंगलाचरण से मानों रजत को अत्यधिक उमंग युक्त मंगलकारी बना दिया था। मुनि विश्रुतसागर एवं मुनि विशेषसागर ने अपने नामानुसार श्रुत वाद/श्रुत के उद्घोष को अनंत ज्ञानमय बनाया और श्रुत लाभ पहुँचाने का प्रयत्न किया।।21।। वे सभी भक्ति के गुणों में रत मानव आज अधिक नम्र होते हुए संसार सागर से पार जाने के लिए विराग रूपी नाव को आधार बना रहे थे राग के पूर्ण बंधन के छेदने के लिए। वे मालिन्य से मुक्त यहाँ विनयांजलि भी विरागभाव के कारणों को लेकर ही दे रहे थे।।22।। पार्श्व प्रभु का महामस्तकाभिषेक शांति धारा आदि तो लोगों को परम शान्ति की धारा दे जाती है। पच्चीसवें रजत जयंती पर पच्चीस सौभाग्यवती नारियाँ शास्त्र, मंगल कलश आदि लेकर विराग की चर्या बढ़ा रही थीं।।23।। यह विशाल संघ अनुशासित संघ है जो अनुशासन की शोभा बढ़ा रहा है। आचार्य विमलसागर का प्रभावक संघ तो परम विराग के प्रयोजन को दर्शाने के लिए ही राग पर है, करण-मन, वचन और काय का सूचक है, परन्तु जो यह विराग है वह तो परम कारणों/वीतराग के कारणों को उत्पन्न करने वाला है। इससे मिलती है सर्वज्ञ की शिक्षा, सर्वज्ञवाणी के श्रुत का सार। यह श्रुत की सीख देने वाला संघ श्रुतराग की प्रभावना को भी दर्शा रहा है।।24।। पच्चीसवें रजत जयंती वर्ष पर पच्चीस शास्त्र श्रावकों के द्वारा प्रदान किए गए विशदज्ञानार्थ। साथ में पिच्छि-कमंडल को हाथों में दिया गया। इसी प्रसंग पर उन्हें **'न्याय भास्कर'** व **'श्रमणसूर्य'** की उपाधि से अलंकृत किया गया।।25।।

णेगाजणा विणय-जुत्त-पुणीद-भावी ते सव्व-पंत-विणयंजलि-भाण-णंदी।
अप्पाधणं चदु दिसंबर-अंबरो वि णं वंदणं च अहिणंदण-सील-चिट्ठे।।26।।
सद्दाण सागर-समत्त-तरंग-जुत्ता मुत्ताइ मुत्तग-मणी सम-धीर-सुत्ता।
सूरी-तवीसर-सम्मदि-सम्मदिं च साहू सुधीसर-धराइ धरंत-मुत्ता।।27।।
विस्सव्विदो तध विवड्ढण-विस्स-जोदी विस्सेस-विस्सुद-मुणी अवि अज्जिगाओ।
तेसिं विसिट्ठ-विदुसी य विभूदि-आदी अस्सीम-खुल्लग-विरंजण-भट्ट-बोधी।।28।।
कण्णाडगो तमिल-णहु-महा हि रट्ठो सव्वे विराग-परिणाम-सुमंडिदो हि।
मज्झप्पदेस-मुणिणाध-विराग-मुत्ती मायापुरीइ चदुमास-चइत्तमायं।।29।।
मायापुरे समिद-भाव-कुणंत-सव्वे णाणामिदं सुदधरं सरिदं पवाहं।
किच्चा पवेसदि इमो गुजराज-पंते गामाणु गामचरमाण-सुमाण-सीलो।।30।।
वापी-महाणयरस्स उवंतभागो अस्सिं च अत्थि विविहाणि सुजंतणाणिं।
तं गुज्जरं पढम-पंत-पदेस-भागं पत्तेज्ज एस मुणिणंदण-सव्व-साहू।।31।।

अनेक जन अनेक प्रान्तों के अपने पुनीत भाव युक्त उन्हें अपनी भाषा में विनयांजलि देते हुए 4 दिसम्बर 2008 को अपने आपको धन्य कर रहे थे। दिसम्बर का अंबर भी मानो उस दिन वंदन एवं अभिनंदनशील दिखाई दे रहा था।।26।। शब्दों के सागर से तो समत्व की तरंगें उठने लगी थीं, उससे मुक्त हुए मुक्तक रूपी मणियाँ तो सम/समानता के साथ धीरता दे रही थीं। आचार्य सन्मतिसागर के उत्तम विचारों ने उन्हें जो सन्मति दी वह साधु, सुधीश्वर के धरा से बहती हुई अनेक मुक्ताएँ देने में समर्थ हुई।।27।। मुनि विश्वविद्, मुनि विवर्धन, मुनि विश्वज्योति, मुनि विशेषसागर, मुनि विश्रुतसागर आदि भी उन्हें मुक्त हृदय के मुक्तकों द्वारा विनयांजलि देते हैं। आर्यिकाओं में से आर्यिका विशिष्ट श्री, आर्यिका विदुषी श्री, आर्यिका विभूतिश्री आदि भी अपनी विराग वृद्धि हेतु शब्दों के सागर को उपसिसि करता है। क्षुल्लक असीम सागर, क्षुल्लक विरंजन सागर एवं भट्टारक लक्ष्मीसेन आदि भी विराग की वृद्धि को भट्ट कहने में समर्थ हुई।।28।।कर्नाटक, तमिलनाडु, महाराष्ट्र आदि प्रदेशों में सभी तरह से विराग परिणाम से मंडित हुए। मध्यप्रदेश के इस आचार्य ने विरागमूर्तियाँ ही उत्पन्न की, इस मायानगरी में माया को छोड़कर।।29।। यह संघ ग्रामानुग्राम विचरण करता हुआ गुजरात प्रान्त में प्रवेश करता है। मायापुरी में समत्वभाव उत्पन्न करते हुए ज्ञानामृत रूप श्रुतधरा के सरित प्रवाह को यहाँ देने के लिए।।30।। वापी महानगर का उपप्रान्त कहा जाता है, यहाँ नाना प्रकार के यांत्रिक कल कारखाने हैं। उस गुजरात के प्रथम प्रान्त के प्रदेश भाग को पाते, मुनिनंदन बन के सभी साधु/मुनिनंदन/आ.विरागसागर का उत्तम क्रियाओं वाला संघ है जो नन्दन वन की तरह है, जिसमें नाना प्रकार के मुनियों के आनंद हैं, वे नंदन हैं मुनि सम्यक् क्रिया के भी।।31।।

संघो पवेसदि पपंत-सुवापि-वापिं सो डूगरी मणुज-माणस-हंस-खेत्तो।
तत्थेव पुण्ण-तिधिं विमलं च सूरिं मण्णेज्ज सम्म-पहवं च पहावणं च।।32।।
अस्सिं च गुज्जर-पपंत-अणेग-भागे णेगाविराग-परिणाम-सुखेत्त-णंदं।
उत्पेज्ज ते अदिसयं महुपास-पासं तत्थेव सागद-विराग-विराग-हेदुं।।33।।
सङ्घाजणा अहमदा-दहि-वावि-भिंडं इंदूर-मुंबइ-दमोह-फिरोजय-सूरदस्स।
सूरो त्ति सूरद-जणेसु जिणंद-सम्मं खेत्ते विराग-परिवार-सुसाहु-साहुं।।34।।
जो अज्ज साडि-णयरी मणिमुत्त-खेत्तो गेहादु गेहिमणुजा सुद-सुत्त-बद्धा।
रागं विगार-कस-पार-विराड-रूवं चत्ता विराग-सुद-सागर-इच्छहेदुं।।35।।
पुण्णोदयादु सयला इग-सुत्त-जुत्ता णम्भीभवा मणिपहा परिपुण्ण-भत्ता।
पारंभ-मास-जणतेविधि, मंगलम्हि आबाल-बुड्ढ-णर-णारि-विराग-पत्ता।।36।।
सो पाडियाइ सुकदार-तधैव पच्छा पत्तेज्ज सूरद-पुरे सुरदं च णासं।
आदिं च पास-भगवं च इगारहं च तुंगं मुत्तिं महाहिसिच-संति-सुमंगलं च।।37।।

संघ प्रवेश उत्तम वापिकाओं युक्त था, तभी तो उसकी व्यापकता को डूंगरी समाज का मानस हंस रूप क्षेत्र आचार्य विमलसागर की 13वीं पुण्यतिथि को मनाते हुए सम्यक् प्रभावना के प्रवाह को बहाने में समर्थ हुआ।।32।। इस गुजरात प्रान्त के अनेक भागों में विराग परिणाम को उत्पन्न करने वाले क्षेत्रों में अतिशय क्षेत्र भी हैं। उनमें दि. जैन अतिशय क्षेत्र महुवा पार्श्वप्रभु के सामीप्य को उत्पन्न करता है। यहाँ पर लोगों द्वारा जो स्वागत हुआ वह तो विराग और विराग के कारणों को उत्पन्न करने वाला बन गया।।33।। इस महुवा अतिशय क्षेत्र में विराग-परिवार के समस्त साधु साधुत्व को सफल बनाने में समर्थ हुए क्योंकि यहाँ पर यह सूर्य सूरत जनों में जिन प्रभु के उत्तम आनंद रूप दीप्ति/विराग भाव को दर्शाना चाहता था। यहाँ पर अहमदाबाद, दहीसर, वापी, भिंड, इन्दौर, मुंबई, दमोह, फिरोजाबाद आदि के सूर/उत्तम जनों का समागम भी था।।34।। जो नगरी शाटिका नगरी है, मणि मुक्ताओं का क्षेत्र हैं वहाँ के प्रत्येक गृह की गृहिणियाँ एवं मनुष्य सूत्र/धागों में उलझे हुए सूत्र/धागा बनाने वाले भी श्रुत के सूत्र बद्ध इस संघ को देख रहे हैं। वे आज राग के विकार, कषाय, पाप आदि की प्रमुखता को छोड़कर विराग रूपी श्रुतसागर की मणिमुक्ताओं की इच्छा के निमित्त आते हैं।।35।। पुण्योदय से समस्त सूरत संघ इस सूत्र युक्त नम्रीभूत, मणिप्रभा वाला/ मन में उत्साह युक्त पूर्ण भक्ति में लीन जनवरी को प्रारंभिक तिथि 3.1.2009 को मंगल प्रवेश में आबाल, वृद्ध, नर-नारियाँ आदि विराग के पात्र बने।।36।। वह संघ सूरत के पाटिया में स्वागत को प्राप्त हुआ। उसके पश्चात् कतारगाँव को प्राप्त हुआ। सूरतनगर में सूरत के नाश हेतु आदिनाथ और पार्श्वनाथ की ग्यारह फुट ऊँची प्रतिमा के महामस्तकाभिषेक ने उत्तम मांगलिक भावना को उत्पन्न किया।।37।।

गोबीपुरे अवठिदो जिणमित्त-खेत्ते सेलेस-कापडिय-सेट्ठ-सुहं च लेहं।
दाएज्ज पच्छ स भडार-सुखेत्त-आदिं संतिं सुहासादिपाण-विराग-भंतं।।38।।
खेत्तं च अंकलिसरं अणुपत्त-सूरी सव्वोदइं च अणुसीलण-पुण्णटीगं।
साररयणं-सुदए दिवसक्किदे हि अत्थेव सो रदणसार-सुदं च टीगं।।39।।
अत्थेव पावण-सुतित-धराइ खेत्ते छक्खंड-आगम-किदिं परिपूरिदो हि।
णं पुप्फदंत-मुणिणायग-सुब्भदंती सुत्ताण सुत्त-सुद-पंचमि-सुत्त-दंती।।40।।
अदिसए हि खेत्तम्हि अंकलेसर-अंकए। पावण-भूमि-पासीम्ह पुप्फंदत-सुदं पुण्णं।। 41।।
गामे पुरे वि णयरे उवपंत-भागे गच्छेज्ज गच्छ-अणुगच्छ-मुणीहि संगी।
पोमोदु पुप्फि-मह पाइम-गणीहि णेहो तं सिंचमाण-णयरं च वडोदरं च।।42।।
पावागढं परमसिद्ध-जिणं च वंदे सो बेढियं बिढयदे सम-सुत्त-णावं।
णिग्गंथ-साहुचरिया सरिदप्पहव्व जादि त्ति वच्छलतणं तणएव्व साहू।।43।।
आणंद-अंगण-सुदाण सुदाण साहू पादारविंद-धरणीइ धरंतधीरा।
वीरा विराग-मुणि-णंदण-णंद-णंदा मण्णेदि सम्मदि-जणं हरिसेज्ज-णीरा।।44।।

संघ गोपीपुर में स्थित '**जैन मित्र**' कार्यालय में शैलेष कापड़िया शुभाशीष को प्राप्त हुए। इसके अनंतर वह संघ भटार आदि क्षेत्र को प्राप्त सुध रूपी सरित के पान के साथ विराग रूपी मंत्र की शान्ति को प्रदान करते हैं।।38।। आ.विरागसागर अंकलेश्वर क्षेत्र को प्राप्त हुए। यहाँ आपने चिंतनपूर्ण कुन्दकुन्दाचार्य के ग्रन्थ 'रयणसार' पर संस्कृत में टीका प्रारम्भ की।।39। इस पावन धरा पर आ.पुष्पदंत ने '**षट्खंडागम**' ग्रंथ पूर्ण किया था। उनकी शुभ्र छवि इस क्षेत्र में विद्यमान है, इसलिए सूत्रों के सूत्र में समाहित आ.विरागसागर श्रुतपंचमी की मूल भावना के सूत्र यहाँ देने में समर्थ हुए।।40।। आपके आ.पुष्पदंत की रचना षट्खंडागम की पूर्ण स्थली अतिशय क्षेत्र अंकलेश्वर के अंक में स्थित पार्श्वनाथ के पावन भू-भाग में मानों श्रुत के पुष्प को ही प्राप्त किया हो ऐसा प्रतीत हुआ।।41।। वे ग्राम, पुर, नगर एवं उपभ्रान्त भागों में गए, जहाँ अनेक गच्छों का समागम हुआ। वे अनेक मुनियों से मिले। आ.पद्मसूरि, पुष्पेन्द्र विजय, महाद्मविजय, वीतराग पद्मविजय आदि से श्रुत चर्चा को प्राप्त बड़ोदरा जैसे नगर को भी विराग पूर्ण जल से सिंचन करने में समर्थ हुए। इधर संघ पावागढ़ सिद्धक्षेत्र के परम तीर्थंकरों की वंदना करता है। इसके अनंतर यह अतिशय क्षेत्र, बेढिया को समत्व रूपी सूत्र की नाव को दिखलाते हैं। सो ठीक है निर्ग्रन्थ साधुचर्या तो सरिता के प्रवाह की तरह है। साधु वात्सल्य तनय की तरह होते है।।43।। आणंद नगर के आंगन में इन श्रुत पुत्रों की श्रुतों की प्रेक्षा लोगों को साधु बनाती है, क्योंकि ये सभी साधु श्रुत पुत्र श्रुत का आणंद में आनंद देते हैं। यहाँ पर इनके चरणारविंद से धरणी तो धीरता धारण किए हुए ये वीरा विराग मुनि अब भी विराग नंदन है तभी तो विराग के नंदन वन में स्थित आणंद की धरा पर आनंद ही आनंद दे रहे हैं। इन्हीं के द्वारा दिया गया सन्मति पाठ आज फरवरी माह में आ.सन्मतिसागर के जन्मदिवस पर जो हर्षरूपी नीर से युक्त वातावरण देने में समर्थ हुआ।।44।।

सुंदेर-पावण-वसुंधर-सव्व-णंदा अस्सिं जदि त्तिजदिणायग-आगमणं च।
सव्वे जणे परम-भाव-पवित्त-जुत्ता पत्तेज्ज भावणयरे सुद-वाहणं च।।45।।
भावणयर-भव्वो हि पढम-दिक्ख भासुरो। चादुमासं च ठाणं च, पच्छा अणेग-कच्छए।।46।।
अदिसए सुखेत्तम्मि, घोघाए सोण खेजए। अज्जुण-भीम जेहिट्ठं मुत्ति-काणं च पालिए।।47।।
भावे वि संति-अदि-वच्छल-जग्गिदो हि घोघा-पुणीद-गढ सोण-पुरे विरागं।
पाली इमो त्ति णिरणार-जिणिंद वंदेआदा विसुद्ध-चरियाइ सुविड्ढ हेदुं।।48।।
णेमी-विराग-थलि-राजुल-भू-विरागो जूणागढो उरजयंतगिरी सुखेत्तो।
बाहत्तरी-सदसदा मुणिराय-मोक्खो झाणत्थली पयडिरम्म-जगे पसिद्धो।।49।।
लोगेस-खुल्लग-सिरी अवि विस्सतित्थो मित्तो चदुत्थ-वर-कूड-पदे पपत्थे।
तिण्हं च एलग-पदं वद-सावगा वि पक्खं तिचिं च गणआरिय-णीरसं च।।50।।
तित्थो इमो त्तु तव-केवलणाण-खेत्तो णिव्वाण-भूगिरिउ-उज्ज-जयंत-सेट्ठो।
णिग्गंथ-सत्त-जिण-दिक्ख-रवित्त-जोगे पुप्फे हि जोग-परमो परमत्थ-णंदो।।51।।

यह वसुंधरा अत्यंत रमणीय है, पावन है, सभी तरह का आनंद देने वाली है। इसमें भी यदि यतिनायक का आगमन होता है तो सभी लोगों को परम पवित्र भाव उत्पन्न करने वाला बन जाता है। उसमें भी भावों के नग/सिरमौर भावनगर में इस तरह के श्रुत वाहन को प्राप्त कर लोग पवित्र भाव बनाएंगे ही।।45।। भावनगर तो भव्य है, जहाँ दीक्षा के पश्चात् दिव्यता दिखाने का समय आया। जो प्रथम चातुर्मास (1984) का स्थान था जो पच्चीस वर्ष पश्चात् यहाँ विहार करते हुए अनेक कच्छ में भ्रमण कर गया।।46।। अतिशय क्षेत्र घोघा के पश्चात् सोनगढ़ में संघ प्रवेश करता है। फिर अर्जुन, भीम और युधिष्ठिर के मुक्तिस्थान पालीताना को प्राप्त हुआ।।47।। भावों में अतिशान्ति, वात्सल्य की जागृति हुई घोघा में, पवित्र क्षेत्रों में, सोनगढ़, पालीताना एवं गिरनार में स्थित तीर्थंकरों की अर्चना की आत्मविशुद्ध चर्या की उत्तम वृद्धि के लिए।।48।। तीर्थंकर नेमिनाथ का यह क्षेत्र विराग परिणाम उत्पन्न करता है, उसमें यदि राजुल जैसी राजकुमारी का विराग हो तो वह विराग निश्चित ही उत्पन्न करेगा। जूनागढ़, ऊर्जयंतगिरि (गिरनार) जैसे पावन क्षेत्र हैं जो 72 करोड़ 700 सौ मुनिराजों का मोक्ष स्थल है, वह ध्यानस्थली जगत् में प्रकृति से रम्य है और प्रसिद्ध भी है।।49।। गिरनार पर्वत की चतुर्थ टोंक पर क्षुल्लक विश्वलोकेश क्षु.विश्वतीर्थ और क्षु.विश्वमित्र ऐलक पद की प्रार्थना करते हैं। जो उन्हें 3/3/2009 को दी जाती है। इसी समय अनेक श्रावक भी श्रावक व्रत धारण करते हैं। आ.श्री भी अष्टमी और चतुर्दशी के दिवस नीरस आहार की प्रतिज्ञा लेते हैं।।50।। यह तीर्थ तप, केवलज्ञान और निर्वाण का क्षेत्र ऊर्जयंत अनंत ऊर्जा देने वाला है, यह श्रेष्ठ तीर्थ है इसलिए यहाँ पर आ.विरागसागर के द्वारा रवि पुष्प योग नक्षत्र में सात निग्रन्थ दीक्षाएँ दी गई जो परम हैं, परमार्थ के आनंद वाली है। ऐ. विश्वविभु सागर-मुनि विश्वविभु सागर, ऐ. विदाम्बर सागर- मुनि विदाम्बर सागर, ऐ. विभास्वर सागर-मुनि विभास्वर सागर, ऐ. विश्वलोकेश सागर -मुनि विश्वलोकेश सागर, ऐ. विश्वतीर्थ सागर-मुनि विश्वतीर्थ सागर, ऐ. विश्वमित्र सागर-मुनि विश्वमित्र सागर, बा. ब्र. विमल भैया- मुनि विश्वास सागर।।51।।

आयार-आइरिय-रम्म-गुणो त्थि लोए तस्सिं विराग-रदणो रदणायरोसि।
सूरीस-णिम्मल-मुहादु विसेस-भावो चागो विराग-परमत्थ-सुसूचगोत्थि।।52।।
णाणप्पवास-पुरवास-पपंत-जत्तं पुण्णं कुणेदि विरमेदि ण संत-सत्ती।
भा-भास-भासर-सुदासर-साहु-सत्ती साहस्सदो णव-चदुस्स-पवित्त-भत्ती।।53।।
आरामए अहमदे अहमुत्त-सूरी भव्वाण मोदकुणमाण-पवेस-जत्ती।
लाहत्थ-लाह-सुदलाह-अणंत-सत्ती उम्हाण-गाम-मणुजा अणुणेंति भत्ती।।54।।
उम्माह खेज परिवास-गणी इमो त्ति सम्झाय-वायण-धवं धवले च किच्चा ।
पच्छा कसाय जय-रीग- मुणेज्ज सूरी अत्थेव वार सणुपेक्ख-सुगंथ-गंथि- जादो।। 55।।
विराग-संत-लाहत्थं विराग-सूरि-पावणं। रागं चत्त विरागत्थीं पसत्थ-राग-भावणं।।56।।

आचार-पंचाचार आचार्य के उत्तम गुण हैं। यदि लोक में जहाँ ये गुण होते हैं वहाँ **'आचार्यरत्न'** की उपाधि रत्नाकर हो जाती है, वह भी आ.निर्मलसागर के मुख से विशेष भाव वाली हो जाती है क्योंकि त्याग, विराग और परमार्थ उत्तम सूचना ही देते हैं।।52।। वह संघ नाना क्षेत्र के प्रवास युक्त ज्ञान के प्रवास से पुरों, नगरों एवं उपप्रान्तों की यात्रा को पूर्ण नहीं कर लेता है और न संत शक्ति स्थिर हो जाती है, अपितु वह भास्कर की प्रभा के समान आभा देती है, श्रुतस्वर ही साधु की शक्ति है। जो 2009 के चातुर्मास में पवित्र भक्ति बनती है।।53।। यह दर्शन, ज्ञान और चारित्र के आराम में रत अहमदाबाद में अहं से रहित सूरी भव्यों को मोद उत्पन्न करता हुआ दिगंबर वेश की यातना को दर्शा देता है। अनंत शक्ति है श्रुत लाभ में, इसलिए उसके सूत्र लाभार्थ अहमदाबाद के उस्मानपुरा वाले भक्ति युक्त उसका लाभ लेते हैं।।54।। उस्मानपुरा में (16 धवल सिद्धांत ग्रन्थों की वाचना के पश्चात्) कषायपाहुड की टीका जयधवला भाग-1 की वाचना सानंद सम्पन्न होती है तथा वारसाणुवेक्खा ग्रन्थ की प्रवचन वर्षा बरसती है।।55।। वे लोग विराग के शान्त लाभार्थी मानों विराग सूरि पावन हो अर्थात् विरागसूरि को पाकर वे सभी विराग का मानस बना चुके थे। तभी ये विरागार्थि राग को छोड़ प्रशस्त राग की भावना को उत्पन्न कर रहे हैं।।56।।

इदि अडतालीस विराग-सम्मत्तो।

उणचास-विरागो

सूरी अहमदावादे उवणयर-चारिणो। जाएज्ज सो विरागत्थं वीदरागत्थ-हेदुओ।।1।।
णाणस्स गोट्ठि-सिविरस्स जोगे सोलाइ आइरिय-पुप्फमुणीस-मेल्लो।
जाएज्ज णिच्च-णियमादु समाइजोगो धम्मप्पहावण-विहाण-तिदिण्व-दिव्वे।।2।।
उम्हाण-खेत्त-परिसिंच-मुणीस-संघो गिम्हस्स वायण-सुदस्स गुरुं च भादुं।
एरोम-विज्ज-अडवीस-मइ त्ति मासे रामण्व मेल्ल भरहो सम-भावणं च।।3।।
सो पुप्फदंत-मुणि-णायग-सोम्म-सीलो गंधेदगं णियकरे गहिदूण विराग-सीसे।
सिंचेज्ज अण्ण-मुणि-अज्जिग-मंडलम्हि पस्सेज्ज हं अवर-माणुज-ओह-सव्वे।।4।।
पुप्फो विराग-पमुदो हि पफुल्ल-पुप्फो पुप्फस्स गंध-सयले पुर-वाति-दिण्णं।
आसीस-सम्म-सुह-पुण्ण-पुणीद-वाणिं दाएज्ज-जम्म-छियलीस-जयंतिकाले।।5।।
जम्मे जयंति-समए बहुमाण-जादो मे माण-पत्त-उवहार-धणं दएज्जा।
जो सेहरो अहमदस्स तमेव माणं अण्णं च सावग-सुहीण-सुमाण-गाणं।।6।।

आ.विरागसागर अहमदाबाद के उपनगरों में विचरण करते हैं। जहाँ वे विरागार्थ ही वीतराग संदेश देते हैं।।1।। अहमदाबाद में ज्ञान की गोष्ठियाँ, शिविर के योग में सदा ही नियमपूर्वक कार्य होते हैं। आचार्य पुष्पदंत सागर के संघ से मिलने का कार्य भी होता है। धर्मप्रभावना युक्त विधि -विधान भी एक से एक दिव्य प्रभावना वाले होते हैं।।2।। उस्मानपुरा क्षेत्र में यह संघ ग्रीष्म वाचना के प्रसंग पर आ.विमलसागर गुरु के दोनों गुरु भ्राता एरोमा स्कूल में 28/5/2009 को राम और भरत के मिलाप की तरह सम-भावना को दर्शाते हैं।।3।। वे आ.पुष्पदंतसागर वास्तव में सौम्यशील थे। उन्होंने गंधोदक को अपने हाथ में लेकर आ.विरागसागर के शीर्ष पर लगाया, इसके अनंतर अन्य मुनियों, आर्यिका मंडल पर गंधोदक सिंचित किया। इसे मैंने (डॉ.उदयचन्द्र जैन) स्वयं देखा और अनेक श्रावक-श्राविकाओं के सभी समूह ने भी देखा।।4।। पुष्प तो पुष्प होता है, एक पुष्प तो दंत है समत्व में रत है और एक पुष्प विराग है जो प्रमुदित है इस प्रसंग पर। दूसरा पुष्प खिला हुआ अपनी गंध से समस्त अहमदाबाद के लोगों को दे रहा है विराग पुष्प/कभी नहीं मुरझाने वाला पुष्प। उनका आशीष है, सम्यक् है, शुभ पूर्ण है और पुनीत वाणी को दे रहा है। आ.विरागसागर के छियालीसवें (46वें) जन्म दिवस यह पावन पुष्प, विराग को अधिक विराग युक्त बना रहा है।।5।। जन्म जयंती के प्रसंग पर बहुमान दिया जाता है, यही तो जन्म जयंती का विशेष उद्देश्य है। इस प्रसंग पर मैं श्रीफल, प्रशस्तिपत्र, शाल एवं इक्कीस हजार की राशि से सम्मान को प्राप्त हुआ। इसी प्रसंग पर अहमदाबाद के डॉ.शेखर जैन का भी सम्मान किया गया तथा अन्य श्रावक, सुधीजन सम्मान एवं गुणानुवाद को प्राप्त हुए।।6।।

पुप्फस्स संघ-सयलो चरएज्ज रट्ठे पंथे इगो हि मुणि-सावग-घाद-पच्छा।
सम्मं समाहि-अणुपत्त-दुहं च णंतं चत्ता जणे परम-धीर-धरे विरागो।।7।।
अस्सिं पुरे इग-भव्वपुरो वि अत्थि संतो पियो परमरट्ठ-पिदुत्ति खेत्तो।
गंधीपुरे पवसदे पवसं विरागं णम्भीभवो इग-जणे णिय-भावणं च।।8।।
मुद्दे विराग-सुद-सासण-वायणा हि रत्तो ससंघ-मुद-पत्त-गुरुणा पादे।
पत्थं च ओसहि-विसुद्ध-सुसेवणत्थं सामत्त-जोग-अणुपेहण-संजमत्थं।।9।।
रागोसहिं भजणिज्ज-कदावि लोए णो भासदे मुणिवदो ण मणोणुकूलं।
देहस्स सेवग-सदा ण णिरोग-भूदा संजीवणी दु गुरु-गारव-दंसणं च।।10।।
कम्मोदयो अधव तिव्व-कसाय-भावो रोगो त्ति णिस्सरदि तं मणसा ममत्तं।
पूदोस ही परम-संत-पदाइ-णिच्चं आसीस-दंसण-गुरुण णिरोगयारी।।11।।
अट्ठण्हिगो परम-पव्व-पहाव पुण्णो गंधीपुरे पढम-विस्स-सुसंति-दाई।
एसो महा महद-मंडल-सिद्धचक्को पुण्णे पुरे अहमदे अणुभाग-सव्वे।।12।।
अस्सिं च साहु-समए पुरए अदि-सङ्ख-भूदा सब्भावणा-जुद-जणा पहु-णेमि-भत्तिं।
पत्तेज्ज सव्व-सुद-सीलण-साहु-सुत्तं णिव्वाण-पव्व-मण-मोदग-दायगो हि।।13।।

आ.पुष्पदंत सागर का पूर्ण संघ महाराष्ट्र की ओर चल पड़ा। परन्तु मार्ग में एक मुनि (अपूर्वसागर) एवं एक श्रावक घायल हुए। वे उसके अनंतर सम्यक् समाधि (स्वर्ग को) को प्राप्त अनंत दु:ख उत्पन्न कर पाए। पर जो परम धीर-वीर होते हैं वे धैर्य धरण करते हैं। आ.विरागसागर भी लोगों को धैर्यभाव प्राप्त कराने में समर्थ हुए।।7।। अहमदाबाद के एक भव्यपुर गांधीनगर शान्तप्रिय परम पूज्य राष्ट्रपिता महात्मा गांधी का क्षेत्र था। जहाँ विराग को उत्पन्न करने के लिए ही मानों विरागसागर के संघ का प्रवेश होता है। यहाँ नम्रीभूत लोगों में एक व्यक्ति विराग-भावना को व्यक्त करता है।।8।। जिनकी मुद्रा में सदैव विराग है, श्रुत शासन की वाचना है, जिनका सम्पूर्ण संघ प्रमुदित गुरुओं के पात्र को लिए हुए चरणारविंद में समर्पित हैं जो पथ्य औषधि को भी विशुद्ध सेवनार्थ प्रवृत्त है, जो समस्त योग से संयमार्थ के अनुप्रेक्षण को महत्त्व देता है।।9।। इस संसार में रागौषधि कभी भी उचित नहीं हो सकती है, न यह मनोनुकूल है। शरीर के सेवक जन कभी भी निरोग नहीं हो सकते हैं, परन्तु जो गुरु गौरव को दिखलाने वाली औषधि होती है वह संजीवनी बन जाती है।।11।। कर्मोदय या तीव्र कषायभाव रोग है, जो मन से उस ममत्व को निकाल देता है वही पवित्र औषधि होती है। जो सदैव अत्यंत शान्त प्रदायी होती है। गुरुओं का दर्शन एवं उनका आशीष निरोगी बनाता है।11।। आषाढ़मास में अष्टाह्निका महापर्व 26/6/09 से 7/7/09 तक अत्यंत प्रभावपूर्ण हुआ। गांधीनगर में प्रथम बार विश्वशान्ति को प्रदान कर सका। यही सिद्धचक्र मंडल महाविधन हुआ। जो सम्पूर्ण अहमदाबाद एवं सम्पूर्ण क्षेत्र में प्रभावकारी हुआ।।12।। इस प्रसंग पर अति श्रद्धाभूत लोग सद्भावना युक्त प्रभु नेमि की भक्ति को प्राप्त होते हैं। वे श्रुत अनुशीलन और उत्तम सूत्र को भी प्राप्त होते हैं। इसी समय नेमिनाथ प्रभु के निर्वाण दिवस पर निर्वाण लाडू चढ़ाया जाता है जो मन को प्रसन्न करने वाला हुआ।।13।।

सत्ताजणा पमुह-अज्ज-दहोद-खेत्ते लीमेडि-खेत्तचयणित्त-विधयगो वि।
आगच्छदे हि चरणे सिरिणारिकेलं सामप्पिदो सरस-धम्म-विचार-भूदो।।14।।
पत्ताण पत्त-जण-वाहग-पत्त-पत्ते आहार-सम्मचरियं अणुपस्स-विसेस-णंदे।
ते आमुहे हि पढमे विहि-एग-भुत्ति ठाणं दएज्ज बहुमाण-पवड्ढ-हेदुं।।15।।
गांधीपुरे परम-सच्च-सुसम्म-साहुं सम्मं च सम्मकिरियं पडगाहणादिं।
दंसेज्ज पत्त-परिदंसग-चित्त-लेहं कुव्वेज्ज दिव्व-अणुदिव्व-सुडेसणं च।।16।।
अहिंसं पुरे हि चदुमास-कुणंत-सूरी सुत्ताण सुत्त-परिपुण्ण-विचार-चुण्णं।
चुण्णेदि आगद-जणाण सुदंसएदि णाणंजणं च समलंकिद-सम्म-भागो।।17।।
गांधीपुरे हि चदुमास-विराग, पुण्णा संसीलणे सुद-णिहीइ पक्ति-पण्णा।
दाएज्ज जो अहुव अज्ज इमे हि भाग पच्छा अणेग-पुर-गाम-विराग-हत्ते।।18।।
अहमदा-इहिज्जो हि सागाहार-विरागओ। इगद्धलक्ख विज्जत्थी, विज्जालयो तिसस्सदो।।19।।
आगम-वंचणादीए, रयणसारस्स वित्तिं। रदणत्तय-वयिण्णी, गुरु-गारव-दाइणी।।20।।
सूरि त्ति सूर-सम-गच्छ-सुगच्छ-माणो तारंग-खेत्त-ठिद-तार-सुगोट्ठि-माणं।
सम्मं च दंसण-पहं किदि-कंत-भागं णेदूण सम्म-अणुसीलण-भावपुण्णो।।21।।

इस क्षेत्र में शासक-प्रशासन आदि भी आकर गुरुजनों के आशीष लेते हैं। अष्टाह्निका पर्व पर आगत दाहोद लीमड़ी के विधायक वच्चूभाई किशोदी श्रीफल समर्पित कर धर्म के उत्तम विचारों को प्राप्त हुए।।14।। विविध दैनिक पत्रों के पत्रकार जन अपने पत्रों में आहारचर्या का देखा दृश्य प्रतिपादित करते हैं। वे उससे प्रभावित होते हैं, तभी तो वे प्रथम पृष्ठ पर आहारचर्या एक भुक्ति को स्थान देते। वे निर्ग्रन्थ संतों का बहुमान बढ़ाने में कारण भी बनते हैं।।15।। गांधीनगर की स्थापना 40 साल पूर्व हुई। उस नगर में परम सत्य की सम्यक् भावना, सम्यक् क्रिया एवं पडगाहन आदि की विधि पत्रकारों के लिए पन्नों का केन्द्र बिंदु तो होता ही है अपितु उसका आंखों देखा चित्रण भी चित्रबद्ध किया जाता है। जो दिव्य भास्कर आदि पत्रों में आचार्य श्री के संदेश के साथ प्रकाशित किया जाता है।।16।। इस नगर में चातुर्मास करने वाले आ.विरागसागर तो सूत्रों के सूत्र को पूर्ण करने के लिए उनके एक-एक सूत्र को विचारपूर्ण/चिंतनपूर्ण बनाकर चूर्ण कर लेते हैं। जो आगत जनों के लिए अत्यंत प्रभावकारी होता है। यह चूर्ण ज्ञानांजन को प्राप्त था, तभी तो यहाँ का सम्पूर्ण भाग सम्यक् भावना से अलंकृत हुआ।।17।। गांधीनगर के चातुर्मास के पश्चात् भी विरागपूर्ण वातावरण बना रहा है। आ.श्री श्रुतनिधि से जो प्राप्त करते हैं उसे पवित्र प्रज्ञा युक्त ही करते हैं और उसे लोगों के समक्ष रखते हैं। आज इस गुजरात क्षेत्र के प्रत्येक भाग, पुर, ग्राम आदि में विराग का विराग लोगों का आधार बना हुआ है।।18।। अहमदाबाद में कई ऐतिहासिक कार्य हुए। शाकाहार के विशाल आयोजन में 300 विद्यालय के 150000 विद्यार्थियों ने भाग लिया।।19।। अनेक वाचनाएँ हुई। यहाँ **'रयणसार'** की **'संस्कृत टीका रत्नत्रयवर्धिनी'** पूर्ण हुई, जो गुरु गौरव को बढ़ाने वाली हुई। आ. तो सूरी हैं, वे सूर/सूर्य की तरह गच्छ, अनुगच्छमान तारंगा क्षेत्र को प्राप्त हुए जहाँ पर गोष्ठी को महत्त्व दिया गया। उसमें सम्यग्दर्शन के विविध पक्षों पर विचार किया गया। सम्यग्दर्शन के विशेष कारणों को लेकर जो सम्यक् अनुशीलन हुआ, वह भावपूर्ण था।21।।

मासे तए फरवरी तिरसे हि चोद्दे पण्णंस-दोसहसए दस-काल-माणे।
तारंग-सिद्ध-परमे परमं च दंसं विज्जा-तवोवण-सुठाण-सुधीण मंतो।।22।।
सो ईडरे मुणिवरो सुद-गंग-दाणं किच्चा वि हिम्मदपुरे विजए हि खेत्ते।
संसार-संसरण-सील-गदित्त-गीदी गीदा ण गीद-समयस्स विराग-रीदी।।23।।
भेसज्ज-एग-बहु-अंग-विचार-सीला अज्झावगा प मुह-जंतिग-मंति-गण्णा।
आहार-दाण-पडगाहण-सम्म-भत्ती अच्छेरए कुणदि अम्ह जणाण अज्ज।।24।।
संजमकाल-तीसम्हि, मज्झ-उत्तर-एज्जगे। झारखंड-महारट्ठे, तमिल-कण्णडे गुज्जे।।25।।
दस-पंत-पपंतम्हि, पणतीस्सहस्सए। किलोगीडर-जत्ताए, जिण-अज्झण-भावए।।26।।
जय-कोसंमहाघोसं इग-सद-सत्ताइए। दिक्खं दादूण वीणिं, वीर-सम्मदि-दायगं।।27।।
अमिदमइ-वाणीए जिण-जिणेदरा जणा। सावग-साविगाओ त्ति, विसण-मुत्त-माणुसा।।28।।
वच्छल्ल-पीदि-सुण्णीदी, पुणीद-सुद-संगिणी। जरिसं च संघ-सामग्गे, अज्झप्प-णीर-वाहिणी।।29।।
तमिल-तेलुगे रट्ठे कण्ण-गच्छय-गुज्जरे। मुंबइं चादुमासं च, तित्थाण तित्थ-वंदए।।30।।
गंधीणयर-तल्लोदं छालं ए रखियालयं। ईडर-हिम्मदं मेहं, तारंगं विजयं देवं।। 31।।

सम्यग्दर्शन विद्वत् संगोष्ठी 13, 14 एवं 15 फरवरी 2010 को तारंगा सिद्ध क्षेत्र में हुई जो परमभावों को दर्शा गई तथा विद्यासागर तपोवन में सुधी जनों की मंत्रणा ने एक उचित स्थान प्राप्त किया।।22। आ.विरागसागर ईडर में श्रुत गंगा का दान करके हिम्मतनगर, विजयनगर आदि क्षेत्रों में इस संसार की संसरणशील गति की गीतिका दर्शाते हैं। वह गीता नहीं, वे गीता समयसार के हैं, जो गी/वाणी के समरूप अर्थात् सरस्वती रूपी गीता का दान कर रहे हैं। यही गीति है विराग की रीति। अर्थात् जब वाणी समय/सिद्धान्त के गीत गाएगी तो निश्चित ही विराग पद्धति आएगी।।23।। आ.विरागसागर की चर्या में डॉक्टर, वैद्य, विचारक, अध्यापक, प्रोफेसर, इंजीनियर, मंत्रिगण आदि सभी अग्रणी रहते हैं। वे आहारदान, पडगाहन सभी पूर्ण भक्ति से, ऐसा आधुनिक युग में है, यही सोचकर आश्चर्य उत्पन्न कर रहा था।।24।। संयम के तीस वर्ष में मध्यप्रदेश, उत्तरप्रदेश, राजस्थान, झारखंड, महाराष्ट्र, तमिल, कर्नाटक, गुजरात आदि दश प्रान्तों, उपनगरों में विचरण करते हुए 35000 किलोमीटर की यात्रा पूर्ण की, जिनधर्म की प्रभावना के साथ। आपने जयघोष, महाघोष को करते हुए 127 भव्य आत्माओं को दीक्षा देकर वीरांगी, वीर सन्मति दायक को तैयार किया। आपकी अमृतमयी वाणी से जैन, जैनेत्तर आदि लोग प्रभावित हुए। अनेक श्रावक-श्राविकाएँ श्रावकव्रत धारण करती हैं, अनेक लोग व्यसन मुक्त होते हैं।।28।। आपकी वात्सल्यता, प्रीति, सुनीति तो पुनीत है, जो श्रुत की संगिनी बनी हुई है। जिस संघ के समस्त साधुओं में सदैव अध्यात्म नीर की वाहिनी/नदी है।।29।। जिन्होंने तमिल, तेलगु, महाराष्ट्र, कर्नाटक आदि के गच्छों में विचरण किया तब वे मुम्बई चातुर्मास को पूर्ण करके गुजरात में अनेक तीर्थ वंदना में तीर्थ/श्रावक-श्राविका, साधु -आर्यिका रूप संघ की महनीयता दर्शा रहे हैं।।30।। गांधीनगर, तलोद, छाला, रखियाल, ईडर, हिम्मतनगर, मेहसाणा, तारंगा, विजयनगर, देवपुरा आदि को प्राप्त हुए।।311।।

तालोद-खेत्र -महिमा मह-जाद अज्ज छव्वीस-दिक्कख-दिवसे महणिज्ज- पतो ।
विज्जाइ-वारीहि- उवाहि समंकिदो सो सुज्जो समो मुणिवरो परिदंस एज्ज ।। 32।।
डूगरपुर-खेरत्थं केसरिया हि आदिणो। विणम्म-सिस्स-मिल्लावो, विराग-सूरिणा सहे।।33।।

तलोद में पू. गुरुवर का 26 वां मुनि दीक्षा दिवस मनाया गया तथा तभी वहाँ की एवं अन्य स्थानों से पधारे समाज के भक्तगणों व विद्धानों ने पू. गुरुवर को '**विद्या वारिधि**' की उपाधि से सम्मानित कर अपने भाग्य हो सराहा।।32।। डूंगरपुर, खेरवाड़ा, केशरिया के आदिनाथ का स्थल विनम्रसागर के शिष्यत्व के मिलाप आ.विरागसूरि के साथ तो दिव्यता दर्शा गया।।33।।

केसरिया केसरिया लालो, भो उसहो! भो उसहो! झालो।
पुज्ज-पुरूत्ते पुर-आबालो बुड्ढणरो माणुस सव्वालो।।
केसरिया केसरिया लालो।। 1 ।।
एग-अणेगा हि विणम्मा लो, णम्म-भवो सम्मउ-सम्भालो।
वच्छलपीदी गउ-विण्णम्मो, साहस-दो साहसदो बालो।
केसरिया केसरिया लालो।।2।।

तुं उसहो तुं रिसहो णाहो, णाहि-सुदो सं मरू-लल्लालो।
मे विणदो मे विणदोसाहू, साहु-विणम्मो णद-पल्लालो।।
केसरिया केसरिया लालो।।3।।

सूरि-विरागो सरिदातुल्लो, तुं गहिरो सागर-संल्लालो।
सुत्त-सुदंसी परमत्थल्लो, आगमदो आगमदो लालो।।
केसरिया केसरिया लालो।। 4।।

केसरितुं केसरितुं रण्णे तुं उवसग्गं विजयी बालो।
गाम-पुरे गागर-भल्लालो, संतिपुरे सेयस-एल्लालो।।
केसरिया केसरिया लालो।।5।।

सागद-सागद

इति उणचास विराग-सम्मत्तो।

परिशिष्ट-I

प.पू. राष्ट्रसंत गणाचार्य श्री 1008 विरागसागर जी के प्रति भावभीनी अभिव्यक्ति

1. जैसा मैं आज इन युवा मुनि विरागसागर को देख रहा हूँ ये इसी तरह प्रखर रहेंगे और पन्द्रह बीस वर्षों के बाद मुझसे भी अधिक ख्याति प्राप्त करेंगे। ये अपनी सरलता और विनयशीलता के कारण अपने समकालीन समस्त दिगम्बर मुनियों की तुलना में अधिक यश पायेंगे। ऐसे शिष्य को दीक्षा देने से मुझे स्वतः जो खुशी हुई है वह वर्णनातीत है। मेरा आशीर्वाद इनके साथ है और आगे भी रहेगा। मेरे न रहने पर भी रहेगा। ये तो निर्ग्रन्थ हैं निष्पृह हैं और आदरणीय आचार्य हैं।

- प.पू.आ.विमल सागर जी महाराज

2. ये तो पंडित शास्त्री है जब देखो तब पढ़ता रहता है। वह एकल विहारी नहीं है। साथ ही उसकी चर्या पूर्णतः आगम अनुसार है वह खेतों की फसल नष्ट कर मंदिर नहीं बनवाता, न पुराने मंदिर - मूर्ति तोड़कर समाज को दुखी करता किसी से चन्दा-चिट्ठा नहीं लेता और न ही उसके पास अनुचित परिग्रह है।

- प.पू.आ.धर्म सागर जी महाराज

3. '**अर्हदादि गुणानुरागो भक्तिः**' गणाचार्य विरागसागर जी में यह भक्ति यथावत देखते हैं। जो गुरु का अनुकरण करने वाले जीव में पाई जाती है। तत्वार्थ सूत्र में बताया है अर्हत् भक्ति, आचार्य भक्ति, बहुश्रुत भक्ति, प्रवचन भक्ति आदि तीर्थंकर प्रकृति के आस्रव का कारण है। यह गणाचार्य विरागसागर जी में ये भक्ति तो है ही, साथ ही उनके शिष्य वर्ग में भी देखीं जा रही है। '**भक्ति भी मुक्ति राहल छै**' अतः उनकी भक्ति दर्शनीय एवं स्तुत्य है। भक्ति से देव भी प्रभावित होकर धर्मध्यान में सहायक होते हैं। पंद्रह सौ किलोमीटर लगातार चल कर आना सरल नहीं है। गुरु भक्ति से दैविक शक्ति की प्राप्ति संभव है। आप आचार्य विमल सागर जी के शिष्य गणाचार्य विरागसागर जी है। आपकी गुरुभक्ति आदर्शता को प्रकट कर रही है।

-प.पू.आ.सन्मति सागर जी महाराज

4. विराग सागर को तो मैंने मेरठ में कहा, बार -बार उसकी बहुमुखी योग्यता-प्रतिभा को देखकर आचार्य पद ग्रहण की बात की, किन्तु उसने नहीं लिया आज आचार्य विमल सागर उसे आचार्य पद की घोषणा कर रहे हैं, आज्ञा-आशीर्वाद दे रहे हैं तो सुनकर प्रसन्नता हुई और प्रकाशचंद जी इस पावन अवसर पर मेरी ओर से प्रदत्त यह पिच्छिका श्री विराग सागर जी को भेंट करना और मेरा आशीष कहना, वह खूब प्रभावना करें।

- प.पू.आ.सुमति सागर जी महाराज

5. क्षु. पूर्ण सागर छोटे जरूर हैं किन्तु नियम में मजबूत है, अस्वस्थ होने पर भी चर्या, स्वाध्याय में शिथिलता नहीं, यह कारंजा से मेरे पास कुम्भोज - बाहुबली आया, मुझे खुशी है पर स्वास्थ्य का ठीक होना साधना के लिए जरूरी है अत: पहले स्वास्थ्य लाभ फिर साधाना। बार-बार यहाँ से वहाँ विहार नहीं करना चाहिये, शास्त्रों में आया है कि स्वाध्याय और स्वास्थ्य लाभ वृद्धि के निमित्त से साधु एक स्थान पर 12 वर्ष तक रूक सकता है। पास में (बिठाकर) अब तुम यहीं रूको, मैंने क्षुल्लक वीरभद्रसागर से तुम्हारी व्यवस्था के लिये बोला हैं।

- प.पू.आ.समंतभद्र सागर जी महाराज

6. सच्चे श्रमण की वीतराग चर्या ही श्रमणत्व के दर्शन करा देती है, ऐसे ज्ञान व वैराग्य से अभिभूत गणाचार्य जी श्रमणत्व की एक ऐसी मिसाल हैं जो श्रमण परम्परा, संस्कृति को निरन्तर वृद्धिगत कर रहे हैं। इनका संघ अनेक श्रमण रत्नों से पूरित है। चतुर्विध संघ की परम्परा प्राचीनकाल से चली आ रही है। आ.महावीरकीर्ति महा.,आ. विमल सागर जी महा. आ.धर्मसागर जी आदि सभी परम्परागत आचार्यों के संघ में आर्यिका रहीं है, आप इस परम्परा में किसी भी प्रकार का परिवर्तन ना करें। किसी की बातों से प्रभावित न होकर अपनी साधाना में दृढ़ रहें। आचार्य विरागसागर जी महा. को मेरा सदैव आशीष है, प्रतिनमोऽस्तु और अभिनंदन है, वे दीर्घायु हों, रत्नत्रय की पूर्ण प्राप्ति हो, ऐसी मंगल कामना हैं।

- प.पू.गणाधिपति गणधराचार्य कुन्थुसागर जी महाराज

7. प.पू.आचार्य विरागसागर जी देव-शास्त्र-गुरु के परम भक्त, धर्मानुरागी, धर्मपरायण, वैयावृत्ति भाव से पूरित श्रेष्ठ आचार्य हैं, उनके साथ हलगा में दो दिन का सहवास मिला, उनकी निर्मल-वैय्यावृत्ति, साधकों के प्रति स्नेहभाव, वात्सल्य भाव बहुत अच्छा था, वे प्रत्येक साधक की समाधि सल्लेखना की भावना रखते हैं। उन्होंनें गणिनी आर्यिका विजयमति माताजी को अभूतपूर्व संबोधन के साथ 12 वर्ष की समाधि सल्लेखना दिलवाई थी। उनकी प्रत्येक रत्नत्रय साधाना, संयम साधाना,समाधि साधना, सुखमय हो। प्रार्थना करता हूँ।

ऊँ शांति, ऊँ शांति, ऊँ शांति

- प.पू. आ. सुबाहुसागर जी महाराज

8. आचार्य विरागसागर जी हमारे अनुज गुरु भाई हैं, जब वे संघ में रहते थे तो इनका विशेष गुण रहा कि सारी रिपोर्ट लाकर पू. आचार्य को बताते थे, चाहे अच्छी हो या खराब। जिससे ये गुरु के स्नेहपात्र बने रहते थे। सभी को अपने से जोड़ने का इनमें एक विशेष गुण रहा। इनके विशाल संघ को देखता हूँ तो खुशी होती है। मैंने जब पन्ना में इसका हाथ देखा तो अपना सिर पकड़ लिया था कि अरे ! इसका तो मुझसे पहले आचार्य पद हो जाएगा। बहुत दीक्षा देकर धर्म प्रभावना करेगा। मैंने एक बार उससे कहा -**'कि विरागसागर तुम आचार्य बन जाओगे तो क्या हमें भूल जाओगे'** तो उसने कहा था- **'जब आप हमें नहीं भूल सकते हैं तो आपको कैसे भूल सकता हूँ। 'विहार के समय उसने मुझसे कहा था कि'** महाराज श्री

कब के बिछुड़े, यहाँ मिले थे, पता नहीं अब कहाँ मिलेंगे' तब मैंने कहा था-'**हमारी शरीर से दूरी हो सकती है पर अंतरआत्मा से नहीं, हमारे शरीर भले ही दो हों पर आत्मा एक ही हैं।**' जब हमारा इनसे 2000 सम्मेदशिखर जी में मिलन होने वाला था तो मन में एक विकल्प था कि इनका 1992 का आचार्य पद हैं और मेरा 1995 का, पता नहीं अब मिलेगा कि नहीं, मिलेगा तो क्या होगा ? पर प्रवेश के समय वह मेरे पास आ गया, नमस्कार किया, आचार्य वंदना की तो मुझे संतोष हुआ, मैं विकल्पों से हल्का हो गया, वही पूर्ववत् सम्मान दिया, कुछ भी अभिमान नहीं। जब मेरा गिरीडीह में स्वास्थ्य खराब हुआ, समाचार सुनते ही 30 किलोमीटर 1 दिन में चलकर आ गये तब मैंने कहा था विरागसागर, मेरा स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता, शरीर में शक्ति नहीं रहती, संघ कैसे चलेगा। तो उसने कहा था कि आप घबरायें नहीं आप हमें आदेश दें, हम आपके साथ रहेंगे, संघ को संभालेंगे और यदि यह संभव न हो तो आप हमारें संघ में आ जायें। हम आपकी पूर्ण गरिमा के साथ सौभाग्य समझकर सेवा करेंगे यह सुनकर एक नया सा साहस मिला था। वह कई दिनों तक वहीं रूके, मेरे रोज आहार करवाते थे वैयावृत्ति का विशेष ध्यान रखते थे। ऐसे ही कई चर्चायें, घटनाएँ हैं जो कि आचार्य विरागसागर के अनेकों गुणों को प्रकट करती हैं।

- प.पू. आ. भरतसागर जी महाराज

9. 1999 भिण्ड में आचार्य विरागसागर से मिलकर बहुत प्रसन्नता हुई थी कि गुरु नहीं मिल पायें तो क्या, गुरु भाई आचार्य श्री विरागसागर जी मिल गये, जिसका हमको संतोष था। हम दोनों आचार्य पुष्पदन्त सागर जी महाराज और विरागसागर अपने गुरुदेव श्री प. पू. निमित्तज्ञानी आचार्य श्री विमलसागर जी के दो हाथ थे, तब उस समय लोगों ने हमें अलग-अलग मंदिरों में रोकना चाहा था, तब इनका समाचार आया कि दो गुरु भाई अलग-अलग रूकेंगे तो समाज पर गलत प्रभाव पड़ेगा, तो मैंने कह भिजवाया था कि हम दोनों एक ही मंदिर में क्या, एक ही कमरे में रूकेंगे। आगवानी के समय लोगों ने दोनों के अलग-अलग थाल में पाद प्रक्षालन करवाना चाहा था पर मैंने कहा कि हम दोनों के चरणों को अलग-अलग थाल में धुलाकर हमें दो हिस्सों में मत बाँटो, जहाँ विशाल थाल हैं वहीं दोनों के एक साथ पैर धुलेंगे और जहाँ छोटी थाली होगी, तो उसमें एक मेरा तथा एक विरागसागर का पैर धुलेगा, पर अलग-अलग थाली नहीं होगी। हम दोनों यहाँ साधु वात्सल्य का प्रत्यक्ष नीर बहाएँगें।

- प.पू आ.पुष्पदन्त सागर जी महाराज

10. विरागसागर के पास आगम ज्ञान के साथ चर्या है और यह खुशी की बात है, ये मेरा अतिथि था, मैं तो इसका अस्वस्थ्यता के कारण आतिथ्य नहीं कर सका पर इसने मेरी निर्विचिकित्सा भाव से वैयावृत्ति की है वह मेरी सल्लेखना क्रिया में सहयोग करें तो मुझे खुशी होगी।

- प.पू आ.कल्प श्रुतसागर जी महाराज

11. क्यों मुनि विरागसागर मुझे धोखा देकर जा रहे हो,मैं वृद्ध हो गया हूँ। आयु के इस मोड़ पर जीवन कब पूर्ण हो जायेगा किसी ने देखा नहीं है। कब समाधि हो जावें कुछ कहा नहीं जा सकता है। मैं तो तुम्हें अपने पास पाकर प्रसन्न था कि कभी अवसर आने पर तुम्हारी योग्यता का उपयोग करूँगा, संघस्थ आर्यिकाओं एवं ब्रहम्चारियों को सम्हालने की योग्यता तुममें दिखती है, मगर तुम जा रहे हो। मैं तो आचार्य पद देना चाहता था अपना।

– प.पू आ.कल्प विवेक सागर जी महाराज

(शिष्य आ. श्री ज्ञानसागर जी, तथा आ. श्री विद्यासागर जी के साथ दीक्षित)

12. विराग सागर जी गोम्टेश्वर के चरणों में आए उनके आने से आचार्यों की संख्या 9 हो गई जो शाश्वत् अक्षय अंक है। संघ निरंतर बढ़ रहा है। बड़ा सुखद संयोग है। हम दोनों एक ही सरीखे हैं दूसरा रूप भले हो सकता है पर एक ही आह्लाद है। इनकी गुरु भक्ति तथा ज्येष्ठ आचार्यों के प्रति अनन्य श्रद्धा विनयभाव अत्यन्त सराहनीय है। यही कारण है कि उनके इतने सारे गुरुभक्ति से भरे शिष्य उनके आशीष से साधनारत हैं।

– प.पू आ.वर्धमानसागर जी महाराज

13 गणाचार्य श्री विरागसागर जी महाराज प.पू. आचार्य श्री विमल सागर जी गुरुदेव के योग्यतम शिष्यों में से है जो वात्सल्य, नम्रता व अनुशासन के धनी है इनसे मिलकर आज मैं साक्षात प.पू. आचार्य श्री विमल सागर जी महाराज के प्रतिरूप को देख रहा हूँ। 22 वर्ष पूर्व आप के साथ मात्र 2 साधु थे पर आज हम देख व सुन रहे है कि आपने अपने करकमलों से 127 भव्यात्माओं को दीक्षित कर मोक्षमार्ग पर लगाया यह गणाचार्य श्री विराग सागर जी महाराज की नम्रता, अनुशासन विनय, वात्सल्य का ही प्रभाव हैं।

– प.पू. आचार्य श्री कनकनन्दी जी महाराज

14. तीर्थयात्रा के दौरान सहज रूप से सहजता के धनी गणाचार्य श्री विराग सागर जी महाराज से मिलन अत्यन्त सौभाग्य व हर्ष कि बात हैं आपके साथ केशरियाजी के 26 दिवसीय प्रवासकाल ने चिरस्मरणीय छवि बनायी हैं। आपका व्यक्तित्व अनुशासन, समय सारणी, धर्म ध्यान कि प्रक्रिया प्रत्येक क्षण ज्ञान से ओत-प्रोत रहती हैं। गुणों की महिमा के सन्दर्भ में गणाचार्य श्री विराग सागर जी महाराज को ज्ञान पुँजशब्द से अलंकृत करना कोई अतिशयोक्ति नही हैं।

– गुजरात सन्त केसरी आचार्य श्री भरत सागर जी महाराज

15. आचार्य श्री विराग सागर जी महाराज अपनी दीक्षा के 24 साल पूर्ण कर 25 वें वर्ष में पदार्पण कर रहे हैं। श्रमण परम्परा में जैन साधुओं का स्थान सर्वोपरी होता हैं। आपका आगम का अध्ययन, आत्मानुशासन की प्रवृत्ति, शिष्यों का संग्रह-अनुग्रह, शिक्षा-दीक्षा और अनुशासन ये सभी प्रशंसनीय हैं।

– प.पू आ.देवनंदी जी महाराज

16. मैं आचार्य हूँ फिर भी कोई मुझसे दीक्षा नहीं लेता और ये विरागसागर मुनि हैं फिर भी इनसे दीक्षा लेने आज मुमुक्षु लोग तैयार हैं तो आज उपस्थित विद्वत्जन, उपस्थित श्रावकजन, साधुगणों के समक्ष इस महान अवसर को देखते हुए मेरी ओर से मुनि श्री विराग सागर जी को आचार्य पद ग्रहण करने की आज्ञा हैं, मेरा आशीष है कि वे पद को ग्रहण करें। अचार्यत्व क्रिया के लिए हम अभी विधि बनाये लेते हैं यदि यह पद अभी उनकी दृष्टि से ग्रहण करना उचित नहीं हैं तो मेरी घोषणा है कि आप भिण्ड समाज के समक्ष आचार्य का पद स्वीकार करें। आपमें इसकी बखूबी योग्यता हैं, आप जैसे साधक ही श्रमणत्व की यशकीर्ति को सभी दिशाओं में वृद्धिगत करेंगे।

– प.पू. आ.वीरसागर जी महाराज

17. अहा! कैसा सुन्दर शीतल, शांत, भव्य प्रेरणा पुंज जन-जन नायक सजीव मूर्ति हमारे गणाचार्य विराग सागर महाराज जिनके दर्शन मात्र से हमारे हृदय की सारी अशांति गायब हो जाती है। जिनके विराट् व्यक्तित्व से हम स्वयं ही मोहित होते हैं। जिन्होंने अपने सान्निध्य में आये हर लोह कण को उज्ज्वल स्वर्ण बना दिया है। आचार्य श्री के नूतन प्रेरक चिंतन से अनेकानेक साधकों की जीवन धारा में अलौकिक परिवर्तन आया आचार्य श्री स्वप्न जगत् में विचरण करने वाले नहीं थे वरन् यथार्थ की धारा पर जीने वाले मुमुक्षु संत साधक है। गणाचार्य विरागसागर जी महाराज जी विलक्षण प्रतिभा के धनी है। सरस्वती, जिनवाणी ने तो मानो आपकी जिह्वा पर ही अपना स्थायी आवास बना रखा है। विभिन्न धर्म संप्रदाय में विभक्त, खंडित मानव समाज को अखंडित, संगठित होने का प्रेरक संदेश प्रदान कर आपने कीर्तिमान स्थापित किया। साथ ही समाज व परिवारों में व्याप्त विषमताओं के बिखरे काँटों को समता एवं शिक्षा की झाड़ू से साफ किया, जिससे आज वहाँ धर्म, प्रेम, सभ्यता आदि के सुमन खिल रहे हैं। सबसे बड़ी विशेषता है समता की आप साक्षात मूर्ति शारीरिक कष्ट के समय भी सदा आप मुस्कुराते रहते है। आपका हृदय आनंद से आपूरित है और वहीं आनंद आपकी वाणी और चेहरे पर स्पष्ट रूप से झलकता हैं। सद्गुरुवर्य गणाचार्य विरागसागर महाराज जी के चरणों में कोटि-कोटि नमोऽस्तु।

– प.पू. आ.कुशाग्रनंदी जी महाराज

18. गणाचार्य श्री विरागसागर जी महाराज का अब तक का 25 वर्षीय मुनि जीवन बड़ी भारी धार्मिक प्रभावना के साथ बीता हैं। अनेको ऐतिहासिक, अविस्मरणीय धार्मिक और साहित्यिक कार्य किये। आपने अब तक 50 से भी अधिक श्रावकों को मुनि दीक्षा, इतनी हीं श्राविकाओं को आर्यिका दीक्षा, इतने ही को ऐलक क्षुल्लक पद प्रदान कर मोक्षमार्ग में आरुढ़ किया है। इतनी ही मात्रा में साहित्य रचना कर जिनवाणी की अपूर्व सेवा की हैं। आपके सदुपदेश से भारत में जगह-जगह धार्मिक शिशु मंदिर प्राइमरी स्कूल, मिड़िल स्कूल, हाईस्कूल एवं पाठशालायें समाज में खुलवाई हैं। अनेकों जगह जिन मंदिरों का जीर्णोद्धार निर्माण कार्य किया है। मूल अम्नाय जिनागम की सुरक्षा, संवर्धन विकास में आपका महनीय योगदान है। भारत भर में आपके वर्षायोग सम्पन्न हुए हैं। आबाल वृद्धों में आपके प्रति अपार आस्था हैं। आपके संन्यास जीवन में घोर उपसर्ग आये। पर आप ऐसे समय में भी अपने पथ पर अड़िग रहें।

आपके जीवन की यही विशेषता रही है कि उपसर्गों के बावजूद भी निष्कषाय पूर्वक उन पर विजय पायी है। आपने संघ सहित वरूर दुबढ़ी में नवनिर्मित विश्वाकर्षक अनोखें नवग्रह तीर्थ के पंच कल्याणक प्रतिष्ठा में उपस्थित हों तीर्थ की महिमा को बढ़ाया है। आपका मुनि जीवन उत्तरोत्तर मोक्ष पथ की ओर बढ़ता रहें यही हमारी शुभ कामना है। आपके द्वारा जैन धर्म की प्रभावना में चार चांद लगते रहें। जिस प्रकार विष्णुकुमार मुनि ने धर्म की रक्षा की है वैसे आपके द्वारा भी हो रही है।

-प.पू.आ.गुणधरनंदी जी महाराज (हुबली)

19. प.पू.आ. श्री विरागसागर जी महाराज दिगम्बर जैन परम्परा के एक वरिष्ठ प्रतिभा संपन्न आचार्य हैं।आपके द्वारा मुनि अवस्था में किये गये उपकार को मैं कैसे भूल सकता हूँ ? उसका ऋण सदैव रहेगा। आपकी अपूर्व समता साधना, अपकारियों के प्रति भी करूणा, क्षमा भाव को प्रदर्शित करती है। हम सदैव आपके साथ हैं जब भी जरूरत हो तो आज्ञा करें, हम तैयार रहेंगे।

- प.पू.आ.सुविधि सागर जी महाराज

20. प.पू.आ. श्री विरागसागर जी महाराज ज्ञानवान् होने के साथ-साथ सरल और निरभिमानी हैं मेरा इनसे कई बार मिलन हुआ। ये हमारी शांतिगिरी कोथली भी आये, बहुत खुशी हुई जैसा प्रथम बार इनके शिष्यों में वात्सल्य, परिचर्या पायी थी उससे कहीं ज्यादा इनमें देखने को मिली, एक दिन इनकी सेवा करने आया था किंतु ये मेरी सेवा करने लगे, देखकर सहज सुख की अनुभूति हुई। इनके बहुत विशाल संघ का बुन्देलखण्ड़ में बहुत नाम हैं।

- प.पू.आ. वरदत्तसागर जी महाराज

21. प.पू.गणाचार्य 108 श्री विरागसागर जी महाराज को आचार्य 108 श्री कल्याण सागर जी का प्रतिदिन का कोटि-कोटि नमोऽस्तु-नमोऽस्त-नमोऽस्तु । आप चारों अनुयोगों के प्रकाण्ड विद्वान् के रूप में जाने जाते हैं। आप अभी तक 117 से भी अधिक दीक्षा दे चुके हैं। आपकी सत्प्रेरणा से अनेक जगह पाठशालाओं का निर्माण हुआ हैं। आप निरंतर अपनी आत्म साधाना में रत रहते हैं। पूज्य श्री के चरणों में नमन ।

- प.पू.आ. कल्याण सागर जी महाराज

22. बुन्देलखण्ड़ के प्रथमाचार्य उपसर्ग विजेता संत शिरोमणि आ. श्री विरागसागर जी महाराज के पावन युगल चरणों में त्रय भक्ति पूर्वक बारम्बार नमोस्तु निवेदन करता हूँ। आ. श्री विरागसागर जी यथानाम तथागुण को धारण करते हुए वैराग्य और ज्ञान के धनी हैं। बुन्देलखण्ड सहित मध्यप्रदेश के सैंकड़ों भव्यात्माओं को आपने महाव्रती बनाकर मोक्ष मार्ग में लगाया हैं। जो भारत के संपूर्ण प्रांतों में उत्तम धर्म प्रभावना कर रहे हैं। उपसर्ग के समय आपकी समता साधुता संयम व धैर्य को देखकर सारा जैन समाज आपको धन्य-धन्य कह उठा। आपने भारत के अधिकांश भाग में ससंघ मंगल विहार कर अनूठी धर्म प्रभावना की हैं।

- प.पू.आ.गुप्तिनंदी जी महाराज

23. मैं अब सल्लेखना चाहता हूँ और मुनि श्री विरागसागर जी भिण्ड नगर के आस-पास हैं ही, तो मैं उन्हें अपना आचार्य पद देकर निर्भार हो, समाधि का वरण करुँगा। मेरी इच्छा हैं वे हमारा आचार्य पद ग्रहण कर हमें समाधि दीक्षा दें, वे ज्ञान और तपश्चर्या के आधार से इस पद के योग्य हैं, उनमें आचार्यत्व की श्रेष्ठ क्षमताएँ हैं।

- प.पू.आ. सुबुद्धि सागर जी महाराज

24. इस युग के ज्ञानी उपसर्ग विजेता आचार्य विरागसागर जी महाराज में वात्सल्य प्रेम बहुत-बहुत है, इनसे उदगाँव, कुन्थुगिरी, वरूर आदि में समय-समय पर मिलन हुआ है, संघ के वात्सल्य भाव व अनुशासन की जैसी चर्चा सुनी थी, वैसा ही वात्सल्य भाव व अनुशासन पाया जिसके कारण सभी शिष्यगण एक ही सांचे में ढले नजर आते हैं। आपका सरल स्वभाव जो स्नेह से भरा है हमको बहुत अच्छा लगा। आप जैसे साधुओं के समागम से हमारी जीवन काया पलट जाती है। आपकी अनुपम मधुर प्रवचनशैली से प्रत्येक श्रोता के ऊपर प्रभाव पड़ता है। आप इसी तरह स्व-पर कल्याण करतें रहें। आपके सान्निध्य में चातुर्मास करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ, मार्ग दर्शन मिला कार्यों में, तथा आगे भी मिलता रहें, ऐसी मेरी इच्छा हैं।
सिद्धश्रुत-आचार्य भक्ति पूर्वक त्रिबार नमोऽस्तु-नमोऽस्तु-नमोऽस्तु।

-प.पू.आ.निश्चयसागर जी महाराज

25. पू.आचार्य विरागसागर जी महाराज जी जिनको घोरोपसर्ग संकट अपमान भी पराभूत न कर पाये अपने साधना पथ से..... उपसर्ग संकटों का मुनियों से चोली दामन का संबंध होता है। परन्तु वे आज तक डगमगायें नहीं? क्योंकि शुद्धाचरण अंतरंग से उनके साथ जुड़ा हुआ था वहीं उन्हें दृढ़ और अकंप बनाए रहा। विरागसागर जी एक अद्वितीय असाधारण व्यक्तित्व के धनी हैं। उन्होंने अनेक मुनियों को सम्यक् राह दिखाई, दीक्षा-शिक्षा देकर उनका आत्मिक परमार्थिक कल्याण कर दिया ..... संत तो दिया होता है दीपक होता है जो प्राणी उनके सम्पर्क में आता है स्वर्गोपम् सुख की दिव्यता उसके कदमों में स्वयं ही आ मिलती है .... ऐसे ही महानाचार्य, अतिशांत, धीर-गंभीर, चरित्र के धारक विरागसागर जी महाराज को मैं आचार्य सूर्यसागर कोटिशः प्रणाम करता हूँ। **- प.पू.आ.सूर्यसागर जी महाराज**

(शिष्य : प.पू.आ.श्री कुन्थुसागर जी महाराज)

26. गणाचार्य विरागसागर जी के चरणों में नमोस्तु करते हुए मैं आशीर्वाद का आकांक्षी हूँ। भला उन जैसे व्यक्तित्व के बारे में मैं क्या लिखूँ जिसे भारतवर्ष की जैन-अजैन समाज सभी जानती हैं। उनकी प्रतिष्ठा में सोलहकारण भावनाओं एवं दसलक्षण धर्म के प्रति आस्था का समावेश हैं। दर्शनविशुद्धि, विनय के साथ अभीक्ष्णज्ञान के प्रचार-प्रसार के अनुक्रम कार्य के लिए गुरुओं ने अनेंकों जो उपाधियाँ दी हैं। वे कम ही पड़ती हैं। उन्हें यदि सहस्त्र उपाधियाँ दी जाएँ तब भी पूरी नहीं हो सकेगी।

समस्त चतुर्विध संघ को यथायोग्य नमोऽस्तु-प्रतिनमोऽस्तु-स्नेहाशीर्वाद वात्सल्य

- प.पू.आ. सौभाग्यसागर जी महाराज

27. गणाचार्य 108श्री विरागसागर जी महाराज ने उस कठिनतम साधना को सरल बनाकर समाज की अनेक अनुकूल प्रतिकूल परिस्थितियों में 25 साल तक निर्दोष पालन करना यह चमत्कार से कम नहीं हैं। आचार्य विरागसागर जी महाराज की साधना एक उदाहरण बनकर हमारे संयम पथ के प्रदर्शक बनना यह उनकी उत्कृष्ट साधना का फल हैं। छोटे-बड़े का भेदभाव न करते हुए आचार्य आदिसागर जी अंकलीकर, आचार्य महावीर कीर्ति, आचार्य विमलसागर जी महाराज जैसा वात्सल्य देखने मिलता है यह उनका आदर्श अनुकरणीय हैं। भारत वर्ष में गिने-चुने संघ नायकों में आपका स्थान हैं। आप आचार्य आदिसागर जी अंकलीकर परंपरा के प्रमुख आधार स्तम्भ हैं। ऐसे जिन मुद्राधारी आचार्य परमेष्ठी की रजत जयंती मनाना सम्यक्त्वर्द्धिनी क्रिया हैं। हम हमारे कुलदीपक आचार्य विरागसागर जी महाराज के चरणों में सिद्ध-श्रुत-आचार्य भक्तिपूर्वक त्रिबार नमोऽस्तु करते हैं।

- प.पू.आ. सूर्य सागर जी महाराज (अगरकर)
(शिष्य : प.पू.आ.श्री सन्मतिसागर जी महाराज)

28. परम पूज्य आचार्य श्री का रत्नत्रय, तपस्या, उनके प्रवचन बहुत प्रभावशाली हैं, ऐसा सुना। उनके कर्नाटक प्रवेश के बाद चातुर्मास मूढ़विद्री में करने का निश्चय हुआ वहाँ से चातुर्मास की बराबर खबर मिलती रही वहाँ यूनिवर्सिटी जैसी शिक्षा चलती थी। सबको बिठाकर पाठ, प्रवचन, स्वाध्याय, सारा विधि-विधान, विशेषकर अध्ययन प्रणाली, हर को परफेक्ट करने का उनका प्रयास काफी प्रशंसनीय है। इतने विशाल संघ का चातुर्मास वहाँ पहली बार हुआ और यह प्रभावशाली ही नहीं, अत्यन्त प्रभावशाली रहा। ऐसा उस इलाके के लोगों का कहना हैं। धर्म स्थल से हेगड़े जी भी आये और सुना रहे थे कि चातुर्मास बहुत अच्छा रहा। सफल रहा मूढ़विद्री के स्वस्ति श्री भट्टारक जी ने भी यही कहा कि हमारा बड़ा भाग्य, जो मूढ़विद्री को मौका मिला। उत्तर भारत से मध्य भारत और वहाँ से विहार करते-करते जो मूढ़विद्री में चातुर्मास किया उसे आचार्य श्री के रहन-सहन, विद्या, प्रवचन, शिक्षा पद्धति संघस्थ साधुओं को पढ़ानें, विद्वान् बनाने, स्वाध्याय, चरित्रवान बनाने, प्रतिक्रमण विधि से धर्म की इतनी प्रभावना हुई जितनी शायद आज तक नहीं हुई। वहाँ के स्थानीय लोगों का कहना है संघ जितना विशाल है उतना ही अनुशासन का भी कठोरता के साथ-साथ वात्सल्य के साथ पालन होता है । माताजी लोगों को भी पढ़ा के विदुषी बनाने का प्रभावक कार्य किया । ऐसे विशाल संघ का प्रवेश यहाँ पहली बार हुआ हैं। हमने आपके स्वागत में किसी मिनिस्टर की रूपरेखा नहीं बनाई किन्तु वे अपने आप ही इतने विशाल संघ को लेकर आए। पूज्य आचार्य श्री का आगमन, 2300 वर्ष पहिले श्रवणबेलगोला में आचार्य भद्रबाहु के आगमन की याद दिलाता है जैसे वे अपने 12000 शिष्यों के साथ आए थे वैसे आचार्य श्री भी आए हैं। आपके आने से महामस्तकाभिषेक शुरू हो गया है। ऐसा लगता है पूज्य आचार्य श्री के आने से आचार्यों की संख्या 9 हो गई है और 9 का अंक शाश्वत है।

- कर्मयोगी स्वस्ति श्री चारूकीर्ति जी भट्टारक, श्रवण बेलगोला, (कर्नाटक)

29. प.पू. 108 श्री विरागसागर जी महाराज ने भारतभर में विहार करके महती धर्म प्रभावना की है। आचार्य श्री से लगभग 150 मोक्षाभिलाषी श्रावक-श्राविकाओं ने दीक्षा ली हैं। इस काल में तीर्थंकर नहीं है। फिर भी प.पू.आचार्य श्री ही लघुनंदन हैं। ऐसे प्रभावकर आचार्य श्री को त्रिवार नमोऽस्तु।

- स्वस्ति श्री लक्ष्मीसेन जी भट्टारक, कोल्हापुर (महा.)

30. मुझे याद है जब आप अपने विशाल संघ के साथ अतिशय क्षेत्र कंबदहल्ली में आये थे। मुझे तो बहुत ही आश्चर्य हुआ था कि आप इस अल्पवय में इतने बड़े संघ को कैसे संभाल रहे है। स्वयं मोक्ष मार्ग पर चलते हुए शिष्यों को भी बड़ी कुशलता के साथ चला रहे हैं। आपका यह नेतृत्व प्रत्येक क्षेत्र के प्रमुख के लिए एक आदर्श हैं। आपका गुणगान करना सूर्य को दीपक दिखाने के समान हैं। आपका वात्सल्य, संघ को चलाने की कला, वक्तृत्व शैली और अनुशासन प्रशंसनीय हैं।

- स्वस्ति श्री भानुकीर्ति स्वामी जी भट्टारक, कंबदहल्ली मठ, कर्नाटक

31. तमिलनाडु प्रांत की पुण्यभूमि पर इस युग में भद्रवाहुस्वामी के पश्चात् प्रथम बार सबसे ज्यादा मुनि संघ का आगमन हुआ, वह हैं प.पू. गणाचार्य श्री विरागसागर जी महाराज का विशाल संघ, हमारे तीव्र पुण्योदय का प्रतीक हैं। प.पू. आ. श्री विरागसागर जी महाराज ने अपने अल्पकालीन जीवन में ही संसार की असारता को समझ, सार्थक मोक्षसुख की प्राप्ति के लिए बहाए गये उत्कृष्ट निर्ग्रन्थत्व अति महत्वपूर्ण मुनि मार्ग का अनुशरण कर गुरुजनों के माध्यम से वैराग्य पथ पर चलने के लिए विरागसागर नाम से ख्याति प्राप्त की। अपने ज्ञान, ध्यान, तपस्या की योग्यता से आचार्य पद पर विराजमान हुए। आचार्य पद तो आगामी काल में इतना वृहद हुआ कि डाली और शाखाओं जैसा फैल गया, आपके अनेक उपसंघ हैं। आज भारत वर्ष में गणाचार्य श्री विराग श्री का संघ विशाल संघों में एक हैं इनकी चर्या, स्वाध्याय शैली वात्सल्यता, अनुशासनता आदि कार्य को देखने से लगता है कि आपके द्वारा जीवन में स्व पर कल्याण बहुत हुए होंगे, होते रहें यही भगवान से प्रार्थना करते हैं। इस सुमंगल अवसर पर मंगलमय कामनाओं के साथ आपके आशीर्वाद से हमारा भी कल्याण होवें इसी भावना के साथ नमोऽस्तु।

स्वस्ति श्री धवलकीर्ति जी स्वामी जी भट्टारक
श्री क्षेत्र अरिहन्तगिरि,जैन मठ, तमिलनाडु

32. प.पू. आचार्य श्री ने अपने गुणों से अपने पूरे त्यागी-व्रतियों को तत्त्वचर्चा, अध्ययन, चिंतन, विनय आदि गुणों से सुसज्जित किया हैं। देखकर मन में संतोष होता हैं कि आज भी ज्ञान, ध्यान, तप में लीन साधु हैं। जब भी आयें तो यहाँ जरूर आयें। आप यहाँ आये तो हमें अच्छा लगा।

- स्वस्ति श्री जिनसेन जी भट्टारक, नादंणी (कर्नाटक)

33. प.पू. आचार्य श्री सिद्धान्तरत्न विरागसागर जी महाराज दक्षिण कर्नाटक में धर्म जाग्रत करने वाले मूल प्रेरक शक्ति है। इस बार हमारा पुण्योदय रहा कि हम आप जैसे संतों की सेवा कर रहे हैं। सारे नगर में, श्रावकों में व्रत, उपवास, धर्मचर्चा और प्रभावना का अपूर्व जयघोष हो रहा हैं। आपने श्रावकों को संतों की सेवा, कर्तव्य परायणता के विशाल चिरस्मरणीय संस्कार दिये हैं। आपके चातुर्मास से आचार्य शांतिसागर जी आदि के चातुर्मास की यादें तरोताजा बन गई हैं। श्रावकों में गुरुभक्ति जाग्रत करने वाले पूज्य आचार्य विरागसागर जी की शांतमूर्ति, हंसमुख मुखमण्डल सर्वदा हमारे मन में उदित रहें।

आपके द्वारा देज़ के अणु रेणु में वैराग्य भावना हमेशा उदितोदित रहें, सारी दुनिया को आपका लाभ मिले। ऐसा पुण्यावसर हमें पुनः मिले, इसी प्रार्थना के साथ त्रय बार नमोऽस्तु....।

- स्वस्ति श्री चारूकीर्ति जी भट्टारक मूढ़बिदी (कर्नाटक)

34. परम पूज्य वात्सल्य दिवाकर, उपसर्ग विजेता, अध्यात्म योगी मेरे हृदयस्थ गुरुवर गणाचार्य श्री 108 विरागसागर जी महाराज के चरण कमलों में त्रिकाल नमोऽस्तु ।

पूज्य गुरुदेव ने अपने संयम काल के 25 वर्षों में जो त्याग-तपस्या की वह अद्वितीय है। इन वर्षों में जो मन-वचन-कायिक उपसर्गों की बौछार को सहन किया वह अपने आप में एक मिशाल है जो प्रदर्शित करती है कि इस पंचम काल में जैन मुनि उपसर्गों को सहन कर कठोर साधना में रत रहते हुए मोक्ष मार्ग पर निरन्तर बढ़ते रहते है।

- स्वस्ति श्री ललितकीर्ति जी भट्टारक कार्कल (कर्नाटक)

35. प.पू.आचार्य श्री के प्रथम दर्शन शिखर जी क्षेत्र पर गए हुए थे व संभावना की झलक ही हमारी ललक की प्यास को जगाती रही। प.पू. आचार्य श्री की आत्मक्रान्ति भगवान महावीर स्वामी के सूत्र को आलोकित प्रकाशित करती है। विश्व मैत्री बंधुता यही यहाँ अभी मूढ़विद्री क्षेत्र पर आने से महसूस हुआ, संपूर्ण संघ का अनुशासन स्मरणीय है। प.पू.श्री की दृष्टि आत्म संयम, आत्मदर्शन पर निरंतर रहती है। उनके ज्ञान की सूक्ष्मता, तत्व की दृष्टि, अध्यात्म की ललक मोक्ष मार्ग को उत्कृष्टता से साधती है पूज्य श्री कि चर्या स्वलक्ष्य है। पूज्य आचार्य श्री 108 विराग सागर जी महाराज को शुद्धात्म सत्कार वन्दना ।

- तारण पंथ संत ब्र. आत्मानंद जी, श्री तारण-तरण अतिशय तपोभूमि

36. प्रथम बार कई सदियों के बाद पू. आचार्य विरागसागर जी महाराज के इतने विशाल संघ का आगमन इस दक्षिण भारत में हुआ यह एक ऐतिहासिक घटना हैं। सरल स्वभाव के साथ-साथ संघ संचालन और समन्वय की आपमें अपूर्व कला है। विशाल हृदय भावना के कारण सर्वत्र समाज में श्रद्धा के केन्द्र बने हुए हैं। धन्य है इनकी चमत्कारी रत्नत्रय मयी साधाना कि हमारे साथ-साथ इन्द्रदेवता ने भी रत्न मोतियोंवत वर्षा से आपका अतिशय क्षेत्र कनकगिरी में अतिशय के साथ स्वागत किया। पहले तो मात्र शास्त्रों में सुनते थे कि मुनियों के आगमन पर मोतियों जैसी वर्षा होती है पर आज साक्षात् देखा भी। अतः आप अतिशयकारी गुरुवर हैं। ऐसे महान संघ नायक पू. आचार्य श्री विरागसागर जी के चरणों में श्रद्धा सुमन अर्पित करते हुए धन्यता का अनुभव कर रहा हूँ।

- स्वस्ति श्री भुवनकीर्ति जी भट्टारक, कनकगिरी (कर्नाटक)

37. प.पू. आचार्य श्री 108 विरागसागर जी महाराज का कर्नाटक राज्य के प्राचीन एवं शांत क्षेत्र जिसका भारतीय संस्कृति एवं इतिहास में बड़ा नाम है श्री हुम्मच पद्मावती अतिशय क्षेत्र में प्रवेश किया था तो उस समय पू. आचार्य के साथ लगभग 40 साधु थे। पूज्य आचार्य श्री यहाँ पर लगभग 2 दिन रूके और अपनी साधना, सामायिक, प्रतिक्रमण, स्वाध्याय, देव वंदन आदि धार्मिक क्रियाओं में संलग्न रहें ।

प.पू. आचार्य श्री 108 विरागसागर जी महाराज एवं उनके सभी साधुगण उत्तम चरित्र, तपस्या, स्वाध्याय, आदि श्रेष्ठ क्रियाओं से प्रेरित होकर भगवान श्री 1008 वृषभादि महावीर पर्यंत 24 तीर्थंकरों के उपदेशानुसार परम पावन जैन धर्म की महान कीर्ति की ध्वजा को आकाश की तरह अनंत ऊंचाई तक फहराने का काम कर रहे हैं। ऐसे आचार्य भगवन् के पावन चरणों में कोटि-कोटि नमोऽस्तु।

स्वस्ति श्री देवेन्द्रकीर्ति जी भट्टारक

- हुम्मच पद्मावती (कर्नाटक)

38. आज के इस चकाचौंध भरे युग में भी दिगम्बर मुनि का त्याग तपोमय जीवन जीना मोक्ष प्राप्ति की प्रबल उत्कंठा का परिचायक है। किसी भी व्यक्ति के लिए संत का जीवन धारण करना निश्चय ही एक दुष्कर तप है, उसमें भी दिगम्बर मुनि जीवन धारण करना त्याग की पराकाष्ठा है। हम आचार्य प्रवर श्री विरागसागर जी महाराज को नमोस्तु निवेदित करते हुए उनकी चरण रज को अपने शीश पर धारण करते है। वे साधना, त्याग और आध्यात्मिक जीवन के आदर्श है।

- चन्द्रप्रभ,ललितप्रभ मुनि (श्वेताम्बर साधु)

39. परम पूज्य गणाचार्य श्री विराग सागर जी महाराज वन्दना-सुखसाता आप श्री का संघ सहित दर्शन मेरे सौभाग्य का विषय है।आप सभी का ससंघ यात्रा का मनोहर वातावरण बहुत सुन्दर था। इस पंचम काल में भी आप श्री प्रतिलेखन - स्वाध्याय-मौन आदि की साधना, कष्टों को सहन, शारीरिक मुसीबत को न देखकर निरन्तर आत्म ध्यान एवं मुमुक्षु जीवों को मोक्ष मार्ग मे ब्रह्मचारी, क्षुल्लक, ऐलक आदि बनाकर उनकी साधना में सहयोग देना, सबके कल्याण की पुनीत भावना, सबको मोक्षमार्ग पर साथ लेकर चलना अनुकरणीय है। हर एक साधना के पीछे आप श्री की यह शिष्या भी परिवार के साथ मोक्ष गति को पा सके, ऐसी हमारी शुभेच्छा।

- आज्ञा वर्तिनी सा... महर्षि रेखा श्री जी महाराज

प.पू.गच्छा.आ.भ.विजय अभय देव सूरी जी म.(श्वे.सा.)

40. मैंने पूज्य आचार्य श्री विराग सागर जी महाराज साहब के विषय में बहुत सुना है। उनके दर्शन पाकर हम धन्य हो गये, वे दिगम्बर परम्परा के एक महान आचार्य है जो वात्सल्य मूर्ति अर्थात् विमल सागर जी महाराज के प्रमुख विख्यात शिष्यों में से एक है इनकी वाणी में सरलता, मधुरता है इनकी वाणी का आस्वादन हमने पहले कई बार श्रवणबेलगोला मे प्रवचनों के माध्यम से सुना है, जब आप बोलते हैं तो ऐसा लगता है कि आगम के शब्द मोतियों की तरह आपके मुखारविन्द से झड़ रहे हो, सुनकर मन में प्रसन्नता होती है। आज हमारा तथा समाज का परम

पुण्य का उदय है कि जो इन महान महाराज की संघ सेवा का अवसर प्राप्त हुआ आपने अपनी प्रभावना से आज सारे उत्तर भारत के श्रावकों को प्रभावित कर अपना शिष्य संघ बनाया है।

– श्वेताम्बर साधु सन्मति मुनि

41. आचार्य भगवंत परम पूजनीय प्रातः स्मरणीय श्री 108 विराग सागर जी महाराज साहब एवं उनके साथ मुनिवृन्द एवं साध्वियों का टिण्डीवनम में आगमन एवं आचार्य भगवंत के केशलोचन को देखने को जो मौका मिला वह टिण्डीवनम वासियों के लिए एक महत्त्वपूर्ण दिन था। टिण्डीवनम के इतिहास में यह एक पहला स्वर्णिम अवसर था जो बहुत भाग्य से मिला। आचार्य भगवंत का सौम्य चेहरा उनकी वाणी में बुलन्दता के साथ जो मार्धुय था, वह बहुत प्रभावशाली था। किसी के प्रति कोई कटाक्ष या कटुवचन न बोलकर सभी सम्प्रदायों को प्रभावित किया। आचार्य भगवंत की वाणी व उनका मधुर व्यवहार हमारे दिलों मे अमिट यादगार बनकर रहेगी।

– डॉ.हीराचंद जी श्वेताम्बर

42. जीवन के मूल्यों का शाश्वत संदेश हमें आचार्य श्री के साहित्य में देखने को मिलता हैं। आचार्य श्री ने मानव धर्म और भगवान महावीर के प्रमुख सिद्धान्त अहिंसा को जन-जन तक पहुँचाने का जो स्तुत्य कार्य किया हैं। उसे कभी विस्मृत नहीं किया जा सकता।

– सुमित्रा सिंह अधयक्ष, राज.विधान सभा, जयपुर (राज.)

43. प.पू. गणाचार्य श्री विरागसागर जी महाराज ने आध्यात्मिक ज्ञान की अविरल धारा प्रवाहित कर समाज को सदैव सद्मार्ग पर चलने की प्रेरणा दी हैं। साहित्य, धर्म, दर्शन एवं ज्ञान की दीक्षा से परिपूर्ण संतों के जीवन से मानव मूल्यों को बल मिलता हैं।

– एस.के. सिंह राज्यपाल, राजस्थान राजभवन, जयपुर, (राज.)

44. प.पू. गणाचार्य श्री विरागसागर जी महाराज के बताये महावीर स्वामी के परम मंत्र **'अहिंसा परमों धार्मः'** को हमें गहराई से आत्मसात् करना चाहिए। इस हेतु समस्त जीव-जन्तुओं पर दया, करूणा एवं उनके अभयदान के कार्यक्रमों को महत्वपूर्ण स्थान दिया जाना चाहिए।

– नवल किशोर शर्मा, राज्यपाल, गुजरात –राजभवन, गांधीनगर (गुजरात)

45. आप जैसे संत ही समाज का और देश का कल्याण कर सकते है, आपके दर्शन से मैं धन्य हो गया हूँ। प. पू. आचार्य श्री विराग सागरजी को शत् शत् नमोस्तु।

– दिग्विजय सिंह भू. पू. मुख्यमंत्री, म. प्र. शासन

45. इस भौतिकवादी युग में जहाँ सर्वत्र हिंसा का नजारा हो और सामाजिक एवं धार्मिक मूल्यों का ग्राफ निरंतर गिर रहा हो ऐसे समय में दिगम्बर सन्त ही समाज को सही राह दिखा संजीवनी बूटी का कार्य कर रहे हैं। इसी वाणी को आचार्य श्री ने जन-जन के मन में स्थापित करने का स्तुत्य कार्य किया हैं। यह और भी खुशी की बात हैं कि आपने बुन्देली भूमि को अपने जन्म से पवित्र कर बुन्देलखण्ड़ के प्रथम आचार्य श्री के पद को सुशोभित किया हैं। हमें गौरव है आपकी साधना पर ।

– शिवराज सिंह चौहान, मुख्यमंत्री, म.प्र.विधानसभा भोपाल (म.प्र.)

47. प.पू. गणाचार्य श्री विरागसागर जी महाराज जैसे साधु संतों की निर्मल वाणी से ही समाज का उद्धार होता हैं। उन्होंने भग. महावीर स्वामी जी, भग. ऋषभदेव जी आदि जैन तीर्थंकरों के समय-समय पर अहिंसा व शांति का संदेश देते हुए समाज का मार्गदर्शन ही नहीं किया हैं, बल्कि नैतिक मूल्यों के निर्वहन हेतु समाज को निरंतर प्रेरणा प्रदान की है।

- घनश्याम तिवाड़ी शिक्षा मंत्री -राजस्थान सरकार जयपुर (राज.)

48. आचार्य श्री का सम्पूर्ण जीवन ज्ञानार्जन एवं ध्यानार्जन में ही व्यतीत हुआ हैं। आचार्य श्री ने बहुत सी दीक्षाऐं करवाई हैं तथा बहुत से ग्रन्थों का प्रकाशन कराया है। आप पर बहुत सारे उपसर्ग आये हैं जिन पर आपने विजय प्राप्त की हैं इसलिए आपको **'उपसर्ग विजेता'** भी कहा जाता है। आपने बहुत सारे पंच कल्याणक भी कराये है अत: आचार्य श्री के लिए यह युक्ति ठीक बैठती है **'यथा नाम तथा गुण।'** आचार्य श्री का जीवन देश, धर्म व समाज के लिए सदैव ही समर्पित रहा हैं।

- महावीर प्रसाद जैन, मुख्य सचेतक राजस्थान, सरकार जयपुर (राज.)

49. आचार्य श्री ने हमेशा राष्ट्र व समाज को अहिंसा का मार्ग दिखलाया हैं। आचार्य श्री के दर्शन मात्र से ही दर्शनार्थियों के कालुष्य का विरेचन हो जाता है। इनके सान्निध्य का सुफल और आशीष का हस्त कमल जीवन को निर्जर और निरामद बना देता हैं। आचार्य श्री का त्याग, साधना, तप, चर्या व असाधारण ज्ञान ने हमेशा समाज को प्रेरणादायक मार्गदर्शन किया हैं।

न्यायमूर्ति नरेन्द्र कुमार जैन (न्यायाधीश)
राजस्थान उच्च न्यायालय जयपुर (राज.)

50. चारित्र शिरोमणि मुनि विरागसागर जी महाराज का अध्यात्म योगी जीवन नि:संदेह विश्व में अहिंसा प्रेम, करुणा, लोक कल्याण के संदेशों एवं आशीर्वचन से लबालब रहा है तथा विश्व जगत को दिशा देता रहा हैं। मैं इस अवसर पर दिगम्बर परम्परा के ऐसे मुनि की कामना करते हुए नमन करता हूँ।

- प्रो. वासुदेव देवनानी, शिक्षा व ग्रामीण विकास
एवं पंचायती राज राज्यमंत्री, राजस्थान सरकार, जयपुर (राज.)

51. पूज्य गणाचार्य कभी पद की दौड़-हौड़ में नहीं रहे और अनेकों बार आचार्यों द्वारा उनका आचार्य पद की घोषणाओं के बाद भी उन्होंने यह कहकर कि मैं 'अभी इस योग्य नही हूँ और मेरे गुरु अभी विराजमान है' कहकर उसे स्वीकार नहीं किया। विनयशीलता, त्याग, गुरुश्रद्धा और अनुशासन के ये अनुपम ऐतिहासिक उदाहरण उन्होंने प्रस्तुत किये।

- विवेक जैन काला राष्ट्रीय अध्यक्ष दिगम्बर जैन महासमिति

52. संयम, ज्ञान, भक्ति की अविरल धारा प्रवाहित करने वाले प.पू. गणाचार्य श्री विरागसागर जी महाराज ने न केवल स्वहित किया हैं बल्कि राष्ट्रहित में भी उनके योगदान को भुलाया नहीं जा सकता ।

- पारस चन्द्र जैन, शिक्षा मंत्री, मध्यप्रदेश शासन, भोपाल (म.प्र.)

53. मुझे यह जानकर अति प्रसन्नता हुई कि परम पूज्य प्रातः स्मरणीय जगत वन्दनीय गणाचार्य गुरुवर 108 श्री विरागसागर जी महाराज को संयम के मार्ग पर चलते हुए मुनि दीक्षा के अनेकों वर्ष व्यतीत हो चुके है। परम पूज्य गुरुवर का सन् 1992 में श्री दि. जैन सिद्ध क्षेत्र द्रोणगिरी में चातुर्मास सम्पन्न हुआ था उस अवसर पर लगातार 6 माह तक मुनि श्री का ससंघ सान्निध्य प्राप्त हुआ था और बहुत नजदीक से आचार्य श्री को देखने तथा समझने का अवसर मिला उस सुअवसर पर दिनांक 8.11.92 (कार्तिक शुक्ल 13 संवत् 2049) के दिन का दृश्य आज भी आंखों से ओझल नहीं होता जब परम पूज्य श्री को आचार्य पद देने हेतु परम पूज्य आचार्य श्री विमल सागर जी महाराज की आज्ञा एवं आशीर्वाद तथा परम पूज्य आ. 108 श्री विद्यासागर जी महाराज, आचार्य श्री सुमति सागर जी महाराज के लिखित आशीर्वाद से चतुर्विध संघ की उपस्थिति में सिद्ध क्षेत्र द्रोणगिरी की पावन भूमि पर देश के हजारों नर-नारियों की उपस्थिति में श्रीमान् पंडित दरबारी लाल जी कोठिया बीना एवं सैकड़ों विद्वानों की उपस्थिति में आचार्य पद देने का निर्णय लिया गया किन्तु परम पूज्य आचार्य श्री विरागसागर जी महाराज इस पद को स्वीकार करने को तैयार नहीं थे। तब उपस्थित विद्वानों, क्षेत्र कमेटी चतुर्विधा संघ ने मुनि श्री को चौकी सहित उठाकर आचार्य पद हेतु जबरन विराजमान कराया, और हजारों नर-नारियों ने करतल ध्वनि से इनका अनुमोदन किया। मुझे भी इस अवसर को सुनने व देखने एवं सहभागिता का अवसर प्राप्त हुआ इसके लिए मैं अपने आपको सौभाग्यशाली मानता हूँ।

- कपूरचंद्र घुवारा, केबिनेट मंत्री म.प्र. शासन (म.प्र.)
अध्यक्ष : हथकरघा एवं लघु शिल्प उद्योग

54. देश, राष्ट्र के लिए गणाचार्य, सिद्धान्तरत्न, वात्सल्यरत्नाकर, उपसर्गजयी गुरुवर विरागसागर जी महाराज द्वारा की गई अहिंसात्मक, क्रान्ति, मुनि दीक्षा महोत्सव, चरित्र निर्माण ने आपके व्यक्तित्व को गौरव प्रदान कर बुन्देलखण्ड़ की पावन भूमि को निर्मलता प्रदान की है। दीर्घअवधि तक आपका आशीर्वाद, मार्गदर्शन अनुयायियों को प्राप्त होता रहे, यही कामना है। आपके सान्निध्य में बुन्देलखण्ड़ के जैन परिवारों को मिली हुई विरासत को इस अंचल में सदैव स्मरण किया जावेगा।

-जयन्त जैन मलैया, उद्योग मंत्री म.प्र. शासन भोपाल (म.प्र.)

55. चरित्र शिरोमणि आध्यात्मयोगी, सिद्धान्तरत्न, श्रमण रत्नाकर, उपसर्ग विजेता, बुैन्देलखण्ड के प्रथम आचार्य गुरुवर 108 श्री विरागसागर महाराज का व्यक्तित्व स्वयं में विराट है। सच तो यह है आप में वात्सल्य भावना कूट-कूट भरी हुई है, क्षमा भाव आपके अन्तस में विद्यमान है। यही कारण है कि अनेक उपसर्गों के आने पर भी आपने प्रतिपक्षों के प्रति समता भाव ध ारण कर क्षमा किया।

- सुनील नायक, विधायक जतारा (म. प्र.)

56. चरित्रारुढ़ गुरुवर ने अनेक ग्रन्थों की वाचनायें कराकर गहरा अध्ययन किया है फलस्वरूप अनेक कृतियों का सृजन आपके द्वारा हुआ है। ज्ञानाराधन के फलस्वरूप ही आप सम्यग्ज्ञान

की ज्योति से ज्योतित: है। संपूर्ण राग द्वेषों से रहित आपने मुनि चर्या का निर्दोष पालन करते हुए अनेक उपसर्गों को धैर्य के साथ सहा है। ऐसे धीर, वीर, गंभीर मुनिराज के चरणों में कोटिश: वन्दन करती हूँ।

– श्रीमती अलका जैन, विधायक, मड़ापारा कटनी (म.प्र.)

57. सन्त जीवन के कई जन्मों का सुफल होता है। सन्त साधना जीवन का चरमोत्कर्ष पड़ाव हैं। क्योंकि ज्ञानाराधना के साथ-साथ अनेक प्रकार के अनुभवों से गुजरना होता है। सर्दी-गर्मी वर्षा सदैव एक से रहते है। इन्हीं चर्याओं का परिपालन कर पूज्य आचार्य श्री विरागसागर जी ने आपको कुन्दन के समान बनाया है।

– छोटेलाल जैन सरावगी, विधायक बुढार (म.प्र.)

58. आचार्य विरागसागर जी की महिमा का बखान कितना भी किया जायें, कम है। उनकी वाणी से ज्ञान का जो नवनीत निसृत होता है उसे श्रवण कर विकार युक्त हृदय भी निर्मल बन जाता हैं। टीकमगढ़ का यह सौभाग्य है कि उसे उनके वाणी रूपी अमृत का पान करने का बार-बार अवसर मिलता है। हम उनके चुम्बकीय व्यक्तित्व को कोटीश: नमन् करते हैं।

– श्रीमती प्रमिला सिंघई, अध्यक्ष नगर पालिका, बडगाँव (म.प्र.)

59. आचार्य श्री के भक्तों में केवल जैन सम्प्रदाय ही नहीं, जैनेजर सम्प्रदाय भी तन-मन-धन से समर्पित है क्योंकि आचार्य श्री के चंद पलों का सानिध्य ही मनुष्य को धर्म के प्रति रूझान पैदा करने में समर्थ है।

– प्रभुसिंह ठाकुर, विधायक

60. आचार्य श्री विरागसागर जी महाराज के जैन काशी मूडबिद्री में विहार किये वे बहुमूल्य क्षण विस्मरण नहीं किये जाते। आचार्य श्री विरागसागर जी के वे शान्त निर्लिप्त वचन भूले नहीं जाते जैन धर्मियों की ही नहीं, सकल जीव-जन्तुओं की मंगल कामना करने वाले ऐसे वीतरागी मुनियों का समागम समाज को हमेशा सुखदायी है, शुभदायी है।

– के. अभयचन्द्र, एम. एल. ए. मूडबद्री (कर्नाटक)

61. It is fortune have the darshan of acharaya virag sagsr ji maharaj today and other mune gana and Aarijikas.

- H. D. Devgoda, Ex. Prime Minister of India 11-07-2005

62. समता स्वभावी पू. गुरुदेव ने बुन्देलखण्ड के पथरिया गाँव में जन्म लेकर अपनी चरणरज से समस्त भारत के जनमानस को अहिंसा, परोपकार का पाठ पढ़ाया। धर्म जिज्ञासुओं की शंकाओं का समाधान कर धर्म मार्ग पर आरुढ किया। स्वयं मोक्ष पथ के पथिक बनकर मोक्षमार्ग को प्रशस्त कर रहे है ऐसे ज्ञान ध्यान में तल्लीन संत कर्मनाश कर कर्मजयी बने।

– शरद कुमार जैन, विधायक, जबलपुर (म.प्र.)

63. सिद्धान्तवेत्ता, वात्सल्य रत्नाकर, अध्यात्मयोगी, श्रमणरत्नाकर, उपसर्ग विजयी आदि उपाधियों से विभूषित प. पू. 108 आचार्य श्री विरागसागर जी महाराज जैन समाज के गौरवशाली सन्त है। किन्तु मैं उन्हें जन-जन के संत के रूप में स्वीकर करती हूँ। क्योंकि वे मानव मात्र के

उपकारी है। आपमें ज्ञानाराधना कर विद्वानों के मध्य अनेक गूढ़ ग्रन्थों की वाचनाओं व शंका समाधान से ज्ञान को परिष्कृत किया है। वही ज्ञान का दीपक अपने सुशिष्यों द्वारा धर्म की प्रभावना अनुकरणीय है। इस युग में ऐसे ज्ञानवान यतियों का सान्निध्य सचमुच समवशरण जैसा प्रतीत होता है। **– श्रीमती सुधा जैन, विधायक, सागर (म. प्र.)**

64. प्रबल पुण्य के उदय से ललितपुर नगरी में परम पूज्य आचार्य श्री 108 विरागसागर जी महाराज का चातुर्विध संघ सहित सन् 1995 में भारी धर्म प्रभावना के साथ चातुर्मास हुआ था। चातुर्मास काल में आचार्य श्री के मुखारविन्द से नित्य ज्ञान की धारा प्रवाहित होती रही उस ज्ञान रूपी गंगा में नहाकर अनेकों जीवों का जीवन धन्य हुआ। जिनकी ज्ञान रूपी ज्योति को पाकर के अनेक जीवों के जीवन में प्रकाश का दीप प्रज्जवलित हुआ। जिनके ज्ञान रूपी मेघों के बरसने पर जन्म जनमान्तरों से प्यासी आत्मा संतृप्त हुयी। ऐसे सन्मार्ग दिवाकर आचार्य श्री के प्रवचनों का प्रभाव अजैनों पर भी पड़ा उन्होंने भी बड़ी एकाग्रता के साथ आचार्य श्री के प्रवचनों को ध्यान से सुना और जैन धर्म के सिद्धान्तों को जाना। 125 चौको से ज्यादा चौके साधुओं की आहार चर्या के लिये लगतें थे, यह आचार्य श्री एवं संघ के प्रति यहाँ के श्रावकों की भक्ति का साक्षात् प्रमाण है। यह सब भी आचार्य श्री द्वारा धर्म प्रभावना का एक कारण था।

– डॉ. अरविन्द जैन, चिकित्सा एवं स्वास्थ्य मंत्री (उ. प्र.)

65. आचार्य विरागसागर का जैसा नाम है वैसा ही उनका व्यक्तित्व भी है। आप साक्षात् ईश्वर के प्रतीक है। दूसरे आप मानव–समाज के पथ प्रदर्शक हैं। आपके द्वारा रचा गया साहित्य निश्चित रूप से समाज के लिये उपयोगी है और मानव समाज को उससे शिक्षा लेनी चाहिये जिससे की समाज में फैली हुई विकृतियाँ दूर हो सकें। उनकी रचनाएँ ही एक प्रकार से उनके व्यक्तित्व का दर्पण है।

– अखण्ड प्रताप सिंह यादव, पूर्व पशुधन राज्य मंत्री, म. प्र. शासन

66. इस पंचम काल में लोग निजी स्वार्थ के वशीभूत होकर ही विकास एवं उत्थान का मूल उद्देश्य रखते है। ऐसे घोर स्वार्थी युग में प्राणी मात्र को विशालतम उत्थान की ओर बढ़ाने वाले एक मात्र संत परम पूज्य आचार्य श्री विराग सागर जी महाराज इस स्वार्थी युग में निस्वार्थी नजर आते हैं। आचार्य श्री का उद्देश्य अपने साथ–साथ ऐसे निस्वार्थ संत प. पू. आचार्य जी के पावन चरणों में मेरा बारम्बार नमन।

– डॉ. गोविन्द सिंह, विधायक, लहार, भिण्ड (म. प्र.)

67. **युग युग तक गुरुदेव तुम्हारी, जीवन गाथा गाये हम।**
तुम्हरे पद चिन्हों पर, श्रद्धा सुमन चढ़ायें हम।।

परम पूज्य वात्सल्य के भंडारी आचार्य श्री 108 विरागसागर जी महाराज से मैं लगभग 30 वर्षों से जुड़ा हूँ, जिनका वात्सल्य और वैराग्य अपूर्व ही है यथा नाम तथा गुण को धारण करने वाले गुरुवर विरागसागर जी का संघ बहुत विशाल है और इतना विशाल संघ प्रथम बार 2000 वर्षों के बाद तमिलनाडू में देखने को मिला । जिस प्रकार पूर्व में आचार्य श्री भद्रबाहु, अकलंकदेव,

पूज्यपाद स्वामी व कुंदकुंद देव व श्री समंतभद्र महाराज आदि आचार्यों ने तमिलनाडु में विहार करके जन सामान्य को धर्म पीयूष का पान कराया उसी प्रकार आचार्य श्री विरागसागर जी महाराज ने भी तमिलनाडु की धारा पर प्रवेश कर अपूर्व धर्म प्रभावना कर रहे है। उन्होंनें यहाँ मंदिरों के जीर्णोद्धार का जो बीड़ा उठाया है वह गुरुवर की तीर्थभक्ति का द्योतक है। संपूर्ण विश्व का एक मात्र कलात्मक दिगम्बर जैन मंदिर, मेलचित्तामूर में रथ मंदिर, नवग्रह मंदिर एवं विशाल पार्श्वनाथ मंदिर गोपुर से युक्त मंदिर आदि विभिन्न स्थानों का जीर्णोद्धार आपकी ही प्रेरणा से मिला है। आपका हृदय सरलता से भरा है तथा आप दूर दृष्टि से कार्य को सफल बना देते है। यह आपके ही व्यक्तित्व की विशेषता हैं। आपके इन्हीं सभी गुणों के कारण ही आप आज इतने बड़े महान पद पर आसीन है। आप जैसे महान संत के चरणों में बारंबार नमन् करता हूँ शत्-शत् वंदना करता हूँ।

– पं. धर्मचंद शास्त्री, दिल्ली

68. रत्नत्रय के सम्राट हैं, कुशल संघ के संचालक हैं, आगम में पारंगत हैं, जैन सिद्धान्तों के संरक्षक हैं, मत-मतान्तरों की विवेचना करने में सक्षम हैं, अतः हे गुरुवर! आप स्याद्वाद केशरी हैं। आज मेरे जन्म के 80 वर्ष पूर्ण होने जा रहे हैं किन्तु मैंने अभी तक किसी को गुरु नहीं बनाया था किन्तु आज मैं आपकी रत्नत्रय साधना से प्रभावित हूँ, एवं प्रसन्न हूँ अतः मैं आपको आ. श्री गुरु बनाना चाहता हूँ, आप मुझे शिष्य दीक्षा दे अनुगृहीत कीजिए। यज्ञोपवीत भी मुझे अपने हाथ से दीजिये। व्यक्तित्व गुणवत्ता की दृष्टि से अनुकरणीय है। आपके द्वारा जन सामान्य के हित में जो कार्य किया जा रहा है वह अपूर्व है।

– डॉ. दरबारी लाल कोठिया, बीना (म. प्र.)

69. प.पू. 108 आचार्य श्री विरागसागर जी महाराज एक अभीक्ष्णज्ञानोपयोगी वीतरागी दिगम्बर संत है। उनकी तपःपूत लेखनी से अभी तक अनेक कृतियों का सृजन हुआ हैं। यह कृतियाँ समाज के लिए नई दिशा प्रदान करती हैं।

प्रो. अभय कुमार शास्त्री, बीना (म.प्र.)

70. स्वाध्याय, चिन्तन और मनन से पाई स्वानुभूति को शब्दों में बांधना अत्यन्त दुरूह है, परंतु आचार्य श्री विरागसागर जी महाराज ने साहित्य की सभी विधाओं में साहित्य सृजन करके, स्वानुभाव को जन-जन तक पहुँचाकर, धर्म को जीवंत करने के साथ-साथ सभी की रूचि को जागृत किया है। स्वाध्याय के साथ-साथ शिविर के माध्यम से आचरण की प्रेरणा अनूठी एवं अनुकरणीय है। आज इनके जीवन का क्षण-क्षण श्रमणचर्या में संलग्न है, अनुशासन एवं चारित्र ही उनका ध्येय है। जिसके कारण समस्त शिष्य एक ही साँचे में ढले नजर आते हैं। वात्सल्य की मूर्ति आचार्य विरागसागर जी महाराज के स्मृति रूप का चुम्बकीय आकर्षक भक्तों को बरबस ही खींच लेता है।

– पं. मूलचन्द्र शास्त्री, प्रतिष्ठाचार्य, टीकमगढ़ (म.प्र.)

71. मेरे जीवन का यह 48 वाँ पंचकल्याणक है पर विशेषता यह कि मेरे जीवन का मल्लिनाथ भगवान के कल्याणक के साथ 43 पिच्छिधारी विशाल साधु संघ के सान्निध्य में यह प्रथम कार्यक्रम है। मैं तो पहले घबरा रहा था कि 43 साधुओं को संभालना, जहाँ चार में ही खटपट

होती है। पर पूज्य आचार्य श्री का अनुशासित संघ एक आदर्श रूप रहा, जहाँ साधुओं में अपार वात्सल्य है। हिलमिल कर रहतें है और आहार चर्या में तो नमक है या नहीं, बूरा है या नहीं, डाला तो ठीक, नहीं डाला तो भी कुछ नहीं। हूँ-हूँ भी नहीं, शांति से आहार। क्योंकि प्राय: साधुओं को देखा कि चौका में नमक नहीं, तो इतना जोर से हूँ करते है कि सामने खड़ा व्यक्ति भी घबरा कर हाथ में लिए बर्तन गिरा दे। पर सही साधुता के दर्शन इतने वर्षों में मुझे मात्र इस संघ के साधुओं में हुये, यह सब भी पूज्य आचार्य श्री की श्रेष्ठ परिचर्या की परिचायक है, जिसे उन्होनें अपने शिष्यों को भी सिखाई है। सचमुच यह बहुत बड़ा आश्चर्य है कि साधुओं मे न पाटे के ऊँचे-नीचे का भेदभाव, न आगे-पीछे का। रोज देखता हूँ पूरा संघ अनुशासित गुरुचरणानुगामी की तरह पीछे-पीछे आता है और चुपचाप यथास्थान एक आदर्श साधु की तरह बैठ जाता है।

- प्रतिष्ठाचार्य पं. श्री अजितकुमार शास्त्री, ग्वालियर (म. प्र.)

72. आचार्य विरागसागर जी महाराज भगवान ऋषभदेव से महावीर भगवान तक जैन प्रवर्तित जैन धर्म की श्रमण परंपरा को अक्षुण्य बनाये हैं। जैन सिद्धान्त ग्रन्थों में वर्णित श्रमणचर्या को जीवन में आचरित कर, जन-जन को अहिंसा, प्रेम, अपरिग्रह वात्सल्य का संदेश दे रहे हैं। स्वाध्याय के साथ ही साहित्य सृजन करके, आबालवृद्धों को वे आत्मोत्थान की प्रेरणा से जीवंत बनाये हैं। नाटक, कथा साहित्य, काव्य संग्रह, पूजाविधि से लेकर, आध्यात्मिक स्वानुभाव तक सभी विधाओं में संयोजना करके अल्प काल में ही शीर्षस्थ विद्वानों को भी चकित किया है। इसी भावना के साथ शत्-शत् नमन।

- पं. बा.ब्र. जयकुमार निशांत, प्रतिष्ठाचार्य, टीकमगढ़ (म. प्र.)

73. सूरज को क्या दीपक दिखाऊ धन्य हैं आचार्य श्री जी,आत्मा साधना में निरन्तर तत्पर रहते हैं।

- पं. लक्ष्मण शास्त्री, ललितपुर (उ. प्र.)

74. मैं तपोनिष्ठ परम पूज्य आचार्य श्री के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ। आ. श्री जैसा व्यक्तित्व विरले ही साधुओं में दिखाई देता है।

- प्रतिष्ठाचार्य पं. दयाचंद शास्त्री, सतना (म. प्र.)

75. आचार्य के प्रति मेरी अगाध श्रद्धा है ज्ञान और चारित्र का ऐसा संगम कम ही देखने को मिलता है, पूज्य आचार्य श्री के चरणों में बारम्बार नमोस्तु।

- पं. रतन लाल बैनाड़ा, आगरा (म.प्र.)

76. आचार्य श्री द्वारा बहुत ही वैज्ञानिक पद्धति से विषयों का प्रतिपादन कर अपनी अपूर्व अध्ययन, क्षमता, चिंतन, मनन एवं आगम ग्रन्थों के द्वारा प्रमाणिता को ही चित्रित किया है।

- पं. सुमत चंद दिवाकर, सतना (म.प्र.)

77. शुद्धोपयोग रचना के पीछे वर्षों का गम्भीर अध्ययन, मनन व चिन्तन व्याप्त है।

- पं. गुलाब चंद आदित्य, भोपाल (म.प्र.)

परम पूज्य गणाचार्य श्री विरागसागर जी महाराज द्वारा दीक्षित शिष्य की सूची

1. प.पू. आचार्य श्री विशुद्धसागर जी महाराज
2. प.पू. आचार्य श्री विशदसागर जी महाराज
3. प.पू. आचार्य श्री विभवसागर जी महाराज
4. प.पू. आचार्य श्री विमर्शसागर जी महाराज
5. प.पू. आचार्य श्री विहर्षसागर जी महाराज
6. प.पू. आचार्य श्री विनिश्चयसागर जी महाराज
7. प.पू. आचार्य श्री विमदसागर जी महाराज
8. प.पू. मुनि श्री विश्वजीतसागर जी महाराज
9. प.पू. मुनि श्री विश्वशीलसागर जी महाराज
10. प.पू. मुनिश्री विहितसागर जी महाराज
11. प.पू. मुनि श्री विश्वयशसागर जी महाराज
12. प.पू. मुनि श्री विश्वलोचनसागर जी महाराज
13. प.पू. मुनि श्री विश्ववीरसागर जी महाराज
14. प.पू. मुनि श्री विश्वपूज्यसागर जी महाराज
15. प.पू. मुनि श्री विनर्घ्यसागर जी महाराज
16. प.पू. आचार्य श्री विनम्रसागर जी महाराज
17. प.पू. उपाध्याय श्री विकर्षसागर जी महाराज
18. प.पू. मुनि श्री विजयसागर जी महाराज
19. प.पू. मुनि श्री विशोकसागर जी महाराज
20. प.पू. मुनि श्री विनिश्चलसागर जी महाराज
21. प.पू. मुनि श्री विश्वरत्नसागर जी महाराज
22. प.पू. मुनि श्री विश्वेशसागर जी महाराज
23. प.पू. मुनि श्री विश्वस्तसागर जी महाराज
24. प.पू. मुनि श्री विवर्धनसागर जी महाराज
25. प.पू. मुनि श्री विशेषसागर जी महाराज
26. प.पू. मुनि श्री विश्वदृष्टासागर जी महाराज
27. प.पू. मुनि श्री विश्वविद्सागर जी महाराज
28. प.पू. मुनि श्री विश्रुतसागर जी महाराज
29. प.पू. मुनि श्री विदाम्बरसागर जी महाराज
30. प.पू. मुनि श्री विभास्वरसागर जी महाराज
31. प.पू. मुनि श्री विश्वलोकेशसागर जी महाराज
32. प.पू. मुनि श्री विश्वतीर्थसागर जी महाराज
33. प.पू. मुनि श्री विश्वमित्रसागर जी महाराज
34. प.पू. मुनि श्री विश्वाससागर जी महाराज
35. प.पू. मुनि श्री विधेयसागर जी महाराज
36. प.पू. मुनि श्री विश्वाक्षरसागर जी महाराज

नाम आर्यिका माताजी

1. पू. आर्यिका विशाश्री माताजी
2. पू. आर्यिका विभाश्री माताजी
3. पू. आर्यिका विन्ध्यश्री माताजी
4. पू. आर्यिका विज्ञाश्री माताजी
5. पू. आर्यिका विशिष्टश्री माताजी
6. पू. आर्यिका विदुषीश्री माताजी
7. पू. आर्यिका विभूतिश्री माताजी
8. पू. आर्यिका विजयश्री माताजी
9. पू. आर्यिका विनीतश्री माताजी
10. पू. आर्यिका विपश्यनाश्री माताजी
11. पू. आर्यिका विबोधश्री माताजी
12. पू. आर्यिका विविक्तश्री माताजी
13. पू. आर्यिका वियुक्तश्री माताजी
14. पू. आर्यिका विजेताश्री माताजी
15. पू. आर्यिका विद्वतश्री माताजी
16. पू. आर्यिका विश्वासश्री माताजी
17. पू. आर्यिका विनतश्री माताजी
18. पू. आर्यिका विधाताश्री माताजी
19. पू. आर्यिका विशाखाश्री माताजी
20. पू. आर्यिका विकक्षाश्री माताजी
21. पू. आर्यिका विमुक्तिश्री माताजी
22. पू. आर्यिका विवक्षाश्री माताजी

23. पू. आर्यिका विदक्षाश्री माताजी
24. पू. आर्यिका विरम्याश्रीमाताजी
25. पू. आर्यिका विकाम्याश्रीमाताजी
26. पू. आर्यिका विकम्पाश्री माताजी
27. पू. आर्यिका विप्राश्री माताजी
28. पू. आर्यिका विप्रभाश्री माताजी
29. पू. आर्यिका वियोजनाश्री माताजी
30. पू. आर्यिका विसंयोजनाश्री माताजी
31. पू. आर्यिका विचक्षणाश्री माताजी
32. पू. आर्यिका विरक्षणाश्री माताजी
33. पू. आर्यिका विदर्शनाश्री माताजी
34. पू. आर्यिका विभालश्री माताजी

पू. ऐलक महाराज

1. पू. ऐ. विराग सागर जी महाराज
2. पू. ऐ. विश्वदृगसागर जी महाराज

पू. क्षुल्लक महाराज जी

1. पू. क्षु. श्री कुंद-कुंदसागर जी महाराज
2. पू. क्ष. श्री विभद्रसागर जी महाराज
3. पू. क्षु. श्री विश्वमूर्तिसागर जी महाराज
4. पू. क्षु. श्री विश्वभूषणसागर जी महाराज
5. पू. क्षु. श्री विहसन्तसागर जी महाराज
6. पू. क्षु. श्री विभंजनसागर जी महाराज
7. पू. क्षु. श्री विरंजनसागर जी महाराज
8. पू. क्षु. श्री विजितेन्द्रसागर जी महाराज
9. पू. क्षु. श्री विश्वभूतेशसागर जी महाराज
10. पू. क्षु. श्री विश्वेश्वरसागर जी महाराज
11. पू. क्षु. श्री विजयेशसागर जी महाराज
12. पू. क्ष. श्री विश्वचक्षुसागर जी महाराज
13. पू. क्षु. श्री विश्वाक्षसागर जी महाराज
14. पू. क्षु. श्री विश्वयोगसागर जी महाराज
15. पू. क्षु. श्री विश्वप्रभुसागर जी महाराज
16. पू. क्षु. श्री विश्वबन्धुसागर जी महाराज
17. पू. क्षु. श्री विदेहसागर जी महाराज
18. पू. क्षु. श्री विमोक्षसागर जी महाराज
19. पू. क्षु. श्री विश्वजित सागर जी महाराज
20. पू. क्षु. श्री विश्वदक्ष सागर जी महाराज
21. पू. क्षु. श्री विश्वभानु सागर जी महाराज
22. पू. क्षु. श्री विश्वहित सागर जी महाराज
23. पू. क्षु. श्री विश्वनाथ सागर जी महाराज

पू. क्षुल्लिका माताजी

1. पू. क्षुल्लिका विशालश्री माताजी
2. पू. क्षुल्लिका विदितश्री माताजी
3. पू. क्षुल्लिका विजितश्री माताजी
4. पू. क्षुल्लिका विदिताश्री माताजी
5. पू. क्षुल्लिका विजिताश्री माताजी
6. पू. क्षुल्लिका विस्मिताश्री माताजी
7. पू. क्षुल्लिका विभूषाश्री माताजी
8. पू. क्षुल्लिका विभाषाश्री माताजी
9. पू. क्षुल्लिका विभूषणाश्री माताजी
10. पू. क्षुल्लिका विरतश्री माताजी
11. पू. क्षुल्लिका विरदश्री माताजी
12. पू. क्षुल्लिका विव्रतश्री माताजी
13. पू. क्षुल्लिका विभक्तश्री माताजी
14. पू. क्षुल्लिका विनोदश्री माताजी
15. पू. क्षुल्लिका विप्रदाश्री माताजी
16. पू. क्षुल्लिका विशुभ्राश्री माताजी
17. पू. क्षुल्लिका विभद्राश्री माताजी

अन्य दीक्षित साधुगण-

1. प. पू. मुनिश्री विक्रमसागरजी महाराज
2. पू. आर्यिका विकासश्री माताजी
3. पू. ऐलक श्री विलोकसागरजी महाराज
4. पू. क्षु. श्री विमार्गणसागरजी महाराज
5. पू. क्षु. श्री विलोचनसागरजी महाराज
6. पू. क्षु. श्री विनिर्भयसागरजी महाराज

बहिष्कृत साधु

1. प. पू. मुनिश्री निर्णयसागर जी महाराज
2. पू. आर्यिका विद्याश्री माताजी

3. पू. आर्यिका विधाश्री माताजी
4. पू. आर्यिका विधिश्रीमाताजी
5. पू. ऐलक श्री विज्ञानसागर जी महाराज
6. पू. ऐ. श्री विमुक्तसागर जी महाराज
7. पू. क्षु. श्री विशंकसागर जी महाराज
8. पू. क्षु. श्री विनयसागर जी महाराज

इलाज एवं स्वास्थ्य लाभ साधुगण

1. प.पू. मुनिश्री विशल्यसागर जी महाराज
2. प.पू. मुनिश्री विश्रांतसागर जी महाराज
3. प.पू. मुनिश्री विवर्जनसागर जी महाराज
4. प.पू. मुनिश्री विनेयसागर जी महाराज
5. प.पू. मुनिश्री विशारदसागर जी महाराज
6. प.पू. मुनिश्री विलसंतसागर जी महाराज
7. प.पू. मुनिश्री विकसंतसागर जी महाराज
8. प.पू. मुनिश्री विज्ञेय सागर जी महाराज
8. पू. आर्यिका विशोधश्री माताजी
9. पू. आर्यिका विदीक्षाश्री माताजी
10. पू. आर्यिका विनेताश्री माताजी
11. पू. आर्यिका विमोहश्री माताजी
12. पू. क्षुल्लक विवेकसागर जी महाराज
13. पू. क्षुल्लिका विलक्षणाश्री माताजी

परम पूज्य गणाचार्य 108 श्री विराग सागर जी महाराज द्वारा दी गई त्यागीगणों को प्रदत्तसल्लेखनाएँ

क्र. स.	दिनांक	स्थान	नाम साधु सल्लेखना
1.	1995	सागर (म.प्र.)	प. पू. मुनि श्री विसर्ग सागर जी महाराज
2.	1995	ललितपुर (उ. प्र.)	प. पू. क्षुल्लिका श्री विसर्जन श्री माताजी
3.	1998	भिण्ड़ (म. प्र.)	प. पू. मुनि श्री विग्रह सागर जी महाराज
4.	1998	शोरीपुर बटेष्वर (म.प्र.)	प. पू. मुनि श्री विश्वलोक सागर जी महाराज
5.	2000	शिखर जी	प. पू. मुनि विश्व धैर्य सागर जी महाराज
6.	2002	सागर (म. प्र.)	प. पू. क्षुल्लिका विर्नगता श्री माताजी
7.	2002	श्रेयांसगिरी पन्ना (म.प्र.)	प. पू. आर्यिका वियोग श्री माताजी
8.	2003	भिलाई (छ.ग.)	प. पू. मुनि श्री विश्व धर्मसागर जी महाराज
9.	2004	नवापारा (छ.ग.)	प. पू. आ. विमान श्री माताजी
10.	25.11.06	चंगम (तमिलनाडू)	प. पू. क्षु. विश्वात्मा सागर जी महा.
11.	02.01.08	कुंजवन उदगाँव (महा.)	प. पू. आर्यिका विशान्त श्री माताजी
12.	16.09.08	बम्बई बोरीवली (महा.)	प. पू. मुनि श्री विश्व प्रियसागर जी महाराज
13.	20.12.09	हिम्मतनगर (गुजरात)	प. पू. मुनि श्री विश्व विभूसागर जी महाराज
14.	28.01.10	तपोवन तारंगा जी (गुज.)	प. पू. मुनि श्री विश्व दृढ़सागर जी महाराज
15.	19.01.11	बांसवाड़ा (खान्दू कॉलोनी)	प. पू. आर्यिका वीर श्री माताजी
16.	23.01.11	बासंवाड़ा (खान्दू कॉलोनी)	प.पू. आर्यिका विरक्त श्री माताजी
17.	23.02.11	नांगलिया (राज.)	प.पू. मुनि श्री विश्वज्योति सागर
18.	29.03.11	भीलवाड़ा (आर.केकॉलोनी)	प.पू. मुनि श्री विश्व शांति सागर

परम पूज्य गणाचार्य 108 श्री विराग सागर जी महाराज द्वारा दी गई श्रावकों को सल्लेखनाएँ

क्र.सं.	दिनांक	स्थान	विवरण
1	1981	परभणी (महा.)	एक जैन महिला को सात प्रतिमा व्रत देकर संल्लेखना कराई।
2	1984	भावनगर (गुज.)	एक वृद्ध माँ की सल्लेखना कराई।
3	1984	नौगांव	व्रति एक माँ की सल्लेखना कराई ।
4	1984	नागफनी के पास गाँव में	एक महिला को सप्तम प्रतिमा के व्रत देकर सल्लेखना कराई।
5	1989	भिन्ड (म.प्र.)	श्री उग्रसेन की माता जी की सल्लेखना कराई।
6	1990	हरदुआ पन्ना	एक जैन वृद्धा माँ को सल्लेखना कराई ।
7	1996	कटनी (म.प्र.)	श्री रमेश चन्द्रजी के पिता की सल्लेखना कराई ।
8	1996	जबलपुर मढ़िया जी (म.प्र.)	श्रीमति पूना बाई जैन धर्मपत्नि श्री उदयचन्द्रजी सल्लेखना कराई।
9	1996	जबलपुर मढ़िया जी (म.प्र.)	फुग्गा वालों की माँ ।
10	1996	जबलपुर मढ़िया जी (म.प्र.)	श्रीमति शान्ता बाई जैन शाहपुरा की सल्लेखना कराई।
11	1999	भिंड, महावीर गंज (म.प्र.)	प.पू. मुनि श्री विश्व लोचन महाराज की माँ की सल्लेखना कराई ।
12	1999	भिन्ड (म.प्र.)	श्री कैलाश जी की माँ की सल्लेखना कराई ।
13	2002	देवरीसागर (म.प्र.)	जैन महिला को 7 प्रतिमा के व्रत देकर सल्लेखना कराई।
14	01.09.08	बम्बई, बोरीवली (महा.)	श्री ब्रह्मचारी वरधीचंद जी को सप्तम प्रतिमा के व्रत देकर सल्लेखना कराई।

योग– मुनि 38 + आर्यिका 34 + ऐलक 2+ क्षुल्लक 23 + क्षुल्लिका 7 + समाधिस्थ 21 + अन्य दीक्षित 6 + बहिष्कृत 8 + इलाज एवं स्वास्थ्य 13 = 162

प.पू. सिद्धांत रत्न गणाचार्य श्री विरागसागर जी के सानिध्य में संपन्न सिद्धांत वाचनायें

क्र.	सन्	कहाँ	काल	ग्रन्थ का नाम	कुलपती/संयोजक का नाम
1.	1990	टीकमगढ़ (म.प्र.)	ग्रीष्मकाल	षट् खंडागम धवल पुस्तक 1 रत्नकरण्ड श्रावकाचार	कुलपति–पं. श्री दरबारी लालजी कोठिया, न्यायाचार्य बीना (म.प्र.) 1. संयोजक: पं. गुलाब चंद्र जी पुष्प न्यायाचार्य प्रति प्रतिष्ठाचार्य , टीकमगढ़
2.	1990	टीकमगढ़ (म.प्र.)	वर्षायोग	षट् खंडागम	कुलपति –पं. श्री दरबारी लालजी कोठिया न्यायाचार्य बीना (म.प्र.)

क्र.	सन्	कहाँ	काल	ग्रन्थ का नाम	कुलपती/संयोजक का नाम
				धवलापु. 2, सर्वार्थ सिद्धि वृहद् द्रव्य संग्रह	संयोजक-पं. गुलाबचन्द्र जी पुष्प प्रतिष्ठाचार्य टीकमगढ़ (म.प्र.)
3.	1991	शाहगढ़ (म.प्र.)	शीत काल	षट्खंडागम धवलापु.7	कुलपति - पं. श्री गोविन्द कोठिया, आहार जी (म.प्र.) वाचना प्रमुख श्री पं. परमानंद सागर जी शास्त्री शाहगढ़ (म.प्र.)
4.	1991	पन्ना (म.प्र.)	ग्रीष्म काल	षट्खंडागम धवलापु. 5	कुलपतित्व-पं. दया चन्द्र जी शास्त्री(म.प्र.) अजयगढ़ पन्ना (म.प्र.)
5.	1991	देवेन्दनगर (म.प्र.)	शीत काल	षट्खंडागम धवलापु.-6	कुलपतित्व- पं. दया चन्द्र जी शास्त्री जिला पन्ना अजयगढ़ (म.प्र.)
6.	1992	छतरपुर (म.प्र.)	ग्रीष्म - काल	षट्खण्डागम धवलापु. 4 एवं कार्तिके-यानुप्रेक्षा	कुलपतित्व - पंड़ित श्री मूलचन्द्र जी शास्त्री, टीकमगढ़ (म.प्र.)
7.	1992	द्रोणगिरी (म.प्र.)	वर्षायोग	षट्खण्डागम धवला पु. 9 एवं पंचस्तिकाय	कुल पतित्व पं. श्री मूलचंद्र जी शास्त्री, टीकमगढ़ (म.प्र.)
8.	1992	शाहगढ़ (म.प्र.)	शीत कालीन	षट्खण्डागम धवला पु.-8	पं. परमानंद जी शास्त्री शाहगढ़ सागर (म.प्र.)
9.	1993	बीना (म.प्र.)	ग्रीष्म काल	षट्खण्डागम, धवला पु.-10	पं. डॉ. दरबारी लालजी कोठिया बीना (म.प्र.)
10.	1994	सतना (म.प्र.)	शीत काल	षट्खण्डागम, धवला पु. 12 एवं सर्वार्थसिद्धि	पं.जगूमोहनलालजी शास्त्री कटनी एवं पं. दयाचन्द्र जी शास्त्री संयोजक :- पं.नीरज जैन सतना (म.प्र.)
11.	1994	बीना (म.प्र.)	ग्रीष्म काल	षट्खण्डागम धवला पु.-13	डॉ. पं. दरबारी लाल जी कोठिया, बीना (म.प्र.)

12.	1994	बीना (म.प्र.)	वर्षायोग	षट्खण्डागम, धवला पु.14 एवं पुरुषार्थ सिद्धुपाय	डॉ. पं. दरबारी लालजी कोठिया बीना (म.प्र.) वाचक- श्री दयाचंद्र जी शास्त्री
13.	1994	मोराजी (सागर)	शीतकाल	षट्खण्डागम, ध.पु.9 शेषभाग प्रवचनसार	कुलपतित्व दयाचन्द्र जी शास्त्री, अजयगढ़, संयोजक-श्री डालचंद्रजी सिं.जीवनलाल जी (सागर)
14.	1995	टीकमगढ़ (म.प्र.)	ग्रीष्मकाल पु.न.-16	पंचमखंड वर्गणा	पं. मूलचन्द्र जी शास्त्री टीकमगढ़ (म.प्र.)
15.	1995	ललितपुर क्षेत्रपाल जी (उ.प्र.)	वर्षायोग	षट्खंडागम, धवल पु.15 अष्ट सहस्त्री	पं. दयाचन्द्र जी शास्त्री पं. लक्ष्मण प्रसाद जी एवं पं. लक्ष्मण प्रसाद जी
16.	1995	ललितपुर अटा मंदिर (उ.प्र.)	शीतकाल	षट्खंडागम, धवल पु.	पं. जीवन लालजी शास्त्री ललितपुर (उ.प्र.)
17.	1996	कटनी (म.प्र.)	ग्रीष्मकाल	षट्खंडागम, धवल पु.16	पं. जीवन लालजी शास्त्री ललितपुर (उ.प्र.)
18.	1996	जबलपुर (म.प्र.)	वर्षायोग	जयधवल पुस्तक-1	पं. डॉ. पन्ना लाल जी साहित्याचार्य सागर (म.प्र.)
19.	2002	सागर (म.प्र.)	ग्रीष्मकाल	राजवार्तिक	पं. दयाचन्द्र जी शास्त्री साहित्याचार्य सागर (म.प्र.) पं. मोतीलाल जी सागर (म.प्र.)
20.	2009	अहमदाबाद (गुजरात)	ग्रीष्मकाल	जयधवल पुस्तक-1 वारसाणुवेक्खा सामायिक पाठ	
21.	2010	सिद्धक्षेत्र तारंगाजी (गुजरात)	शीतकाल	जयधवल पुस्तक-2 सर्वार्थसिद्धि	डॉ.नेमीचन्द्र जैन, खुरई

22.	2010	अति.क्षेत्र केसरियाजी (राज.)	ग्रीष्मकाल	जयधवल पुस्तक-3 पद्मनंदि पंचविशतिः	डॉ. रतनलाल जैन, बियाड़ा
23.	2010	लोहारिया (राज.)	वर्षाकाल	जयधवल पु.3 लब्धिसार सर्वार्थ सिद्धि पद्मंदि पंच विंशतिः	पं. रतनलालजैन, बियाड़ा
24.	2011	बांसवाड़ा (राज.)	शीतकाल	जयधवल पुस्तक-4 पद्मनंदि पंचविशतिः	पं. रतनलालजैन बियाड़ा

प.पू. गणाचार्य 108 श्री विरागसागर जी महाराज द्वारा श्री सिद्धक्षेत्र एवं अतिशय क्षेत्र की वंदना

क्र.सं.	सन्	स्थान	सिद्धक्षेत्र	अतिशय क्षेत्र
1.	1982	रामटेक		√
2.		मुक्तागिरी	√	
3.		भातकुली		√
4.		कारंजा		√
5.		शिरपुर		√
6.		जिंतुर		√
7.		ओंढ़ा		√
8.		शिरड़शाहपुर		√
9.		कचनेर		√
10.		एलोरा		√
11.	1983	पेठण		√
12.		मांगीतुंगी	√	
13.		गजपंथा	√	

क्र.सं.	सन्	स्थान	सिद्धक्षेत्र	अतिशय क्षेत्र
14.		कुम्भोज		√
15.		कारंजा		√
16.	1983	शिखरजी	√	
17.		मंदारगिरी	√	
18.		चम्पापुरी	√	
19.		नवादा	√	
20.		गुणावा	√	
21.		राजगृही	√	
22.		कुण्डलपुर(बिहार)		√
23.		नालंदा		√
24.		रत्नपुरी		√
25.		बनारस, काशी,		
		चन्द्रपुरी, सिंहपुरी		√
26.	1983	कारंजा		√
27.		जिंतुर		√
28.		कचनेर		√
29.	1984	एलोरा	√	
30.		जिंतुर		√
31.		मुक्तागिरी	√	
32.		भातकुली		√
33.		अंकलेश्वर		√
34.		पावागढ़	√	
35.		पालीताना	√	
36.		घोघा		√
37.	1985	पालीताना	√	

क्र.सं.	सन्	स्थान	सिद्धक्षेत्र	अतिशय क्षेत्र
38.		गिरनार	√	
39.		तारंगा	√	
40.		भीलोड़ा		√
41.		नागफणी (पार्श्वनाथ जी)		√
42.		केसरियाजी		√
43.		अणिंदा पार्श्वनाथ		√
44.		मोरफड़ी		√
45.	1987	पद्मपुरा		√
46.		चूलगिरी (जयपुर)		√
47.	1988	सांगानेर		√
48.	1988	निवाई महावीर जी		√
49.	1989	पावई		√
50.		वरही		√
51.		वरासो		√
52.		ग्वालियर गोपाचल	√	
53.		हस्तिनापुर		
54.	1990	वरासो		√
55.		सोनागिरी	√	
56.		करगुवाँ (झांसी)		√
57.		पपौराजी		√
58.		आहारजी	√	
59.		बड़ागाँव	√	
60.		नैनागिरी	√	
61.		बड़ागाँव	√	
62.		पपौराजी		√

क्र.सं.	सन्	स्थान	सिद्धक्षेत्र	अतिशय क्षेत्र
63.		देवगढ़		√
64.		थूवोनजी		√
65.	1991	चंदेरी खंडारगिरी		√
66.		सिरोंज		√
67.		आहारजी	√	
68.		पपौराजी		√
69.		आहारजी	√	
70.		द्रोणगिरी	√	
71.	1991	नैनागिरी	√	
72.		कुण्डलपुर		√
73.		श्रेयांसगिरी		√
74.	1992	अजयगढ़		√
75.		खजुराहो		√
76.		द्रोणगिरी	√	
77.	1993	गिरार		√
78.		मालथान		√
79.		बालावेहट		√
80.		नैनागिरी	√	
81.		श्रेयांसगिरी		√
82.	1994	बड़ागाँव	√	
83.		देवगढ़		√
84.		थूवोन जी		√
85.		बजरंगगढ़		√
86.	1995	आहारजी	√	
87.		पपौराजी		√

क्र.सं.	सन्	स्थान	सिद्धक्षेत्र	अतिशय क्षेत्र
88.		कानपुर		√
89.	1996	नवागढ़		√
90.		बड़ागाँव	√	
91.		द्रोणगिरी	√	
92.		खजुराहो	√	
93.	1996	श्रेयांसगिरी		√
94.	1997	कोनीजी		√
95.		कुण्डलपुर		√
96.		नैनागिरी	√	
97.		बड़ागाँव	√	
98.		करगुवा झाँसी		√
99.		वंधा		√
100.		सोनागिरी	√	
101.	1998	वरासो		
102.		वटेश्वर	√	
103	2000	सिंहोनिया		√
104.		वरासो		√
105.		वरही		√
106.		सोनागिरी	√	
107.		अयोध्या		√
108.		चन्द्रपुरी,सिंहपुरी बनारस(काशी)		√
109.		आरा पटना	√	
110.		नालंदा		√
111.		कुण्डलपुर		√
112.		पावापुरी	√	

क्र.सं.	सन्	स्थान	सिद्धक्षेत्र	अतिशय क्षेत्र
113.		राजगृही	√	
114.		गुणावा	√	
115.		शिखर जी	√	
116.	2001	मंदारगिरी	√	
117.		चम्पापुर	√	
118.		गुणावा	√	
119.		कुण्डलपुर		√
120.		पावापुर	√	
121.		राजगृही	√	
122.		कोल्हुआ पहाड़		√
123.	2002	बनारस (काशी),		
		चन्द्रपुरी, सिंहपुरी		√
124.		प्रयाग (इलाहाबाद)		√
125.		कौशांबी		√
126.		श्रेयांसगिरी		√
127.		कुण्डलपुर		√
128.		गढाकोटा		√
129.		रहली(पटना)		√
130.		बीनाबारा		√
131.		नैनागिरी	√	
132.		बड़ागाँव	√	
133.		पपौरा		√
134.		आहारजी	√	
135.		द्रोणागिरी	√	
136.	2003	खजुराहो		√

क्र.सं.	सन्	स्थान	सिद्धक्षेत्र	अतिशय क्षेत्र
137.		रापहाड़ी		√
138.		बड़ागाँव	√	
139.		नवागढ़		√
140.	2003	बालावेहट		√
141.		चाँदपुर, जहाजपुर		√
142.		देवगढ़		√
143.		बीनावारह		√
144.		लखनादौन		√
145.		आमगाँव		√
146.		डोंगरगढ़ (चन्द्रगिरी)		√
147.	2004	मुक्तागिरी	√	
148.		भातकुली		√
149.		कारंजा (लाड़)		√
150.	2005	जिन्तुर नेमगिरी		√
151.		कुन्थलगिरी	√	√
152.		दहीगाँव		√
153.		कुंथुगिरी		√
154.		उदगाँव (कुंजवन)		√
155.		कुंथुगिरी		√
156.		कुम्भोज बाहुबली		√
157.		अक्कीवाट		√
158.		बोरगाँव		√
159.		कोथली		√
160.		वरूर क्षेत्र		√
161.		वनवासी		√

क्र.सं.	सन्	स्थान	सिद्धक्षेत्र	अतिशय क्षेत्र
162.		हुमचा		√
163.		वारंग		√
164.	2005	कार्कल		√
165.		मूढ़विद्री		√
166.		वैडूर		√
167.		वेलतंगडी (रत्नत्रय)		√
168.		धर्मस्थल		√
169.	2006	श्रवणबेलगोला		√
170.		गोम्मटगिरी		√
171.		कनकगिरी	√	
172.		पैनूरमलय		√
173.		सलुकई		√
174.		एस.वी.नगर		√
175.		अरहन्तगिरी (तिरुमलै)		√
176.		मैलचित्तामूर		√
177.		श्रवणबेलगोला		√
178.	2007	हुमचा (कर्नाटक)		√
179.		वरूर क्षेत्र		√
180.		बदामी		√
181.		बीजापुर		√
182.		सावरगाँव		√
183.		तेर		√
184.		कुंथलगिरी	√	
185.		पांचालेश्वर		√
186.		पैठन		√
187.		कचनेर		√

क्र.सं.	सन्	स्थान	सिद्धक्षेत्र	अतिशय क्षेत्र
188.	2007	नेमगिरी जिंतुर		√
189.		शिरडशाहपुर		√
190.		नवागढ़		√
191.		उदगांव, कुंजवन		√
192.	2008	कुंडल		√
193.		उदगांव (कुंजवन)		√
194.		गजपंथा	√	
195.		मांगी-तुंगी	√	
196.		महुआ पार्श्वनाथ जी		√
197.	2009	सजांद		√
198.		अंकलेश्वर		√
199.		पावागढ़	√	
200.		घोघा		√
201.		पालीताना	√	
202.		गिरनारजी	√	
203.	2010	उमता		√
204.		तारंगाजी	√	
205.		तपोवन क्षेत्र		√
206.		भीलोड़ा		√
207.		ठाणी क्षेत्र		√
208.		नागफणी पार्श्वनाथ जी		√
209.		केशरिया जी		√
210.		प्रगति आश्रम (उदयपुर)		√
211.		अडिंदा		√
212.		सालेणा		√
213.		चंवलेश्वर		√
214.		कोटडी		√
215.		शाहपुरा		√

प.पू. 108 गणाचार्य श्री विरागसागर जी महाराज के सानिध्य में सम्पन्न श्री मज्जिनेन्द्र पंच कल्याणक एवं गजरथ महोत्सव

क्र.सं.	स्थान	अवधि	विशेष विवरण
1.	रायपुर	1980	श्री पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव, प.पू. गुरुदेव के साथ
2.	कुंथलगिरी (महा.)	1982-83	श्री पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव, प.पू. गुरुदेव के साथ
3.	औरंगाबाद (महा.)	1984	लघु पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव, प.पू. गुरुदेव के साथ
4.	भुसावल	1984	लघु पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव, प.पू. गुरुदेव के साथ
5.	भावनगर (गुजरात)	1984	लघु पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव, प.पू. गुरुदेव के साथ
6.	पालीताना (गुजरात)	1984	लघु पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव, प.पू. गुरुदेव के साथ
7.	ईडर (गुजरात)	1985	लघु पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव, प.पू. गुरुदेव के साथ
8.	सुजानगढ़ (राज.)	1986	लघु पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव, प.पू. गुरुदेव के साथ
9.	केसरियाजी (राज.)	1985	लघु पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव, प.पू. गुरुदेव के साथ
10.	नागौर (राज.)	1986	श्री पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव, प.पू. गुरुदेव के साथ
11.	जयपुर (राज.)	1987	लघु पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव
12.	जयपुर (राज.)	1987	लघु पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव
13.	जयपुर (राज.)	1987	लघु पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव, प.पू. गुरुदेव के साथ
14.	निवाई (राज.)	1988	लघु पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव, प.पू. गुरुदेव के साथ
15.	श्री महावीरजी (राज.)	1988	लघु पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव, प.पू. गुरुदेव के साथ
16.	मोरेना (म.प्र.)	1988	लघु पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव, प.पू. गुरुदेव के साथ
17.	पद्मपुरा (राज.)	1988	लघु पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव, प.पू. गुरुदेव के साथ
18.	सोनागिरी जी (म.प्र.)	1989	लघु पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव, प.पू. गुरुदेव के साथ
19.	पथरिया, दमोह (म.प्र.)	1990	श्री पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव
20.	सोनागिरी जी (म.प्र.)	1990	लघु पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव, प.पू. गुरुदेव के साथ
21.	बीना, सागर (म.प्र.)	1993	श्री पंच कल्याणक प्रतिष्ठा एवं गजरथ महोत्सव
22.	साढूमल	1994	श्री पंच कल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव प्रतिष्ठाचार्य पं. श्री गुलाब चंद जी, टीकमगढ़ (म.प्र.)
23.	श्री अतिशय क्षेत्र पपौराजी (म.प्र.)	1994	श्री पंच कल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव प्रतिष्ठाचार्य पं. श्री विमल कुमारजी सौरया, टीकमगढ़ (म.प्र.)
24.	जतारा, टीकमगढ़ (म.प्र.)	1995	पंच कल्याणक प्रतिष्ठा एवं त्रय गजरथ महोत्सव प्रतिष्ठाचार्य पं. श्री विमल कुमार जी सौरया, टीकमगढ़ (म.प्र.)
25.	श्री क्षेत्रपालजी ललितपुर (उ.प्र.)	1995	श्री पंच कल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव प्रतिष्ठाचार्य श्री मुन्नालालजी
26.	श्री सि. क्षेत्र द्रोणगिरी (म.प्र.)	1996	श्री पंच कल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव प्रतिष्ठाचार्य पं. बाबूलालजी पठा (म.प्र.)

27. देवेन्द्रनगर, पन्ना (म.प्र.)	1996	श्री पंच कल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव श्री बाबूलालजी पठा वाले, टीकमगढ़ (म.प्र.)
28. टीकमगढ़ (म.प्र.)	1997	श्री पंच कल्याणक प्रतिष्ठा एवं त्रय गजरथ महोत्सव प्रतिष्ठाचार्य पं. विमल कुमार जी सौरया टीकमगढ़ (म.प्र.)
29. महावीर कीर्ति स्तम्भ, भिण्ड (म.प्र.)	2000	श्री पंच कल्याणक प्रतिष्ठा एवं त्रय गजरथ महोत्सव प्रतिष्ठाचार्य पं. विमल कुमार जी सौरया, टीकमगढ़ (म.प्र.)
30. श्री अतिशय क्षेत्र करगुवाजी (उ.प्र.)	2000	पंच कल्याणक प्रतिष्ठा एवं त्रय गजरथ महोत्सव प्रतिष्ठाचार्य पं. विमल कुमार जी सौरया, टीकमगढ़ (म.प्र.)
31. श्री शिखर जी	2000	श्री पंच कल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव
32. सिलवानी (म.प्र.)	2002	श्री पंच कल्याणक प्रतिष्ठा एवं त्रय गजरथ महोत्सव प्रतिष्ठाचार्य पं. विमल कुमार जी सौरया टीकमगढ़ (म.प्र.)
33. श्रेयांसगिरी (म.प्र.)	2003	श्री पंच कल्याणक प्रतिष्ठा एवं त्रय गजरथ महोत्सव प्रतिष्ठाचार्य बाल ब्र. धर्मचन्द जी शास्त्री, दिल्ली
34. बीना सागर (म.प्र.)	2003	श्री पंच कल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव त्रय गजरथ प्रतिष्ठाचार्य पं. नरेन्द्र कुमार जी खरगापुर (म.प्रा.)
35. कारंजा (म.प्र.)	2004	श्री पंच कल्याणक प्रतिष्ठा, त्रय गजरथ महोत्सव
36. कुंथुगिरी क्षेत्र (म.प्र.)	2005	श्री पंच कल्याणक प्रतिष्ठा, त्रय गजरथ महोत्सव
37. मूढ़बिद्री (कर्ना.)	2005	श्री पंच कल्याणक प्रतिष्ठा, त्रय गजरथ महोत्सव
38. श्रवणबेलगोला (कर्ना.)	2006	श्री पंच कल्याणक प्रतिष्ठा, त्रय गजरथ महोत्सव
39. कनकगिरी (कर्ना.)	2006	लघु पंच कल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव
40. वरुर (कर्ना.)	2007	श्री पंच कल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव
41. शिरड-शहापुर (महा.)	2007	श्री पंच कल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव
42. उदगाँव कुंजवन (महा.)	2008	लघु पंचकल्याणक प्रतिष्ठामहोत्सव, प.पू.श्री गुरुदेव के साथ
43. श्री केशरियाजी (राज.)	2010	लघु पंचकल्याणक प्रतिष्ठामहोत्सव, प्रतिष्ठाचार्य श्री सुधीर मार्तण्ड केशरिया जी (राजस्थान)
44. लोहारिया (राज.)	2010	श्री पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव प्रतिष्ठाचार्य श्री सुधीर मार्तण्ड केशरिया जी (राज.)
45. चंवलेश्वरजी (राज.)	2011	श्री पंचकल्याण प्रतिष्ठा एवं त्रय गजरथ महोत्सव प्रतिष्ठाचार्य बा.ब्र.श्री ऋषभ कुमार जी नागपुर (महा.)
46. शाहपुरा (राज.)	2011	श्री पंच कल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव प्रतिष्ठाचार्य बा. ब्र. श्री ऋषभ कुमार जी नागपुर (महा.)

उपसर्ग विजेता प.पू. गणाचार्य श्री 108 विरागसागरजी महाराज द्वारा लिखित, सम्पादित एवं संकलित तथा श्री सम्यग्ज्ञान दिगम्बर जैन विराग विद्यापीठ द्वारा प्रकाशित प्रवचन सत् साहित्य

सं.	नाम	मूल्य	पृष्ठ

लेखन साहित्य (संस्कृत टीका साहित्य)

1. सर्वोदयी संस्कृत टीका (वारसाणुवेक्खा) — **150**

प.पू. आचार्य कुंदकुंद स्वामी के 2000 वर्ष प्राचीन वारसाणुवेक्खा ग्रंथ पर 'प्रथम बार' लिपिबद्ध की गई 'सर्वोदयी संस्कृत टीका'। जो कि 21वीं सदी की प्रथम विशद् व्याख्यान सहित टीका है। जिसमें सभी अनुयोगों के अनेक ग्रंथों से लिये गये आगमोक्त प्रमाणों के साथ मर्मस्पर्शी, विशद् तथा सरस, सुगम व्याकरण की परिशुद्धता के साथ–साथ अनेक उद्धरण व नवीन चिंतनों को अनुपम लेखन शैली के माध्यम से आगम के अमृत को परोसा गया है। इस ग्रंथ का विषय विश्लेषण, आध्यात्मिक विकास का अमोघ सोपान है, मात्र 3 माह 18 दिन में पू. गुरुवर द्वारा रचित यह कृति अपने सरलीकरण एवं भाषा सौष्ठव के कारण न केवल जनमानस, अपितु बड़े–बड़े मूर्धन्य विद्वानों के लिये आकर्षण का केन्द्र बनेगी।

2. रत्नत्रयवर्धनी संस्कृत टीका – रयणसार

आर्ष परम्परा के उद्भट आचार्यश्री कुंदकुंद महाराज द्वारा रचित 2000 वर्ष प्राचीन रयणसार जी ग्रंथ पर 'प्रथम बार' अपनी अनुपम लेखन रचनाचातुरी का प्रयोग कर 'रत्नत्रयवर्विनी टीका' का प्रणयन कर प.पू. गणाचार्यश्री 108 विराग सागर जी महाराज ने अपने अथक परिश्रम व श्रुतभक्ति से प्रेरित होकर किया है जिसमें संस्कृत भाषा का प्रयोग सरल व स्वाभाविक ढंग से कर उसे एक उत्कर्ष प्रदान किया है, जो आगमिक प्रमाणों से समन्वित, सयुक्तिक तथा भूत तथा गूढ़ात्मक विषयों का स्पष्टीकरण सहित है। जिसे अंकलेश्वर से प्रारम्भ कर मात्र 9 माह 15 दिन की अल्प अवधि में गाँधी नगर (गुजरात) की पुण्यधरा पर पूज्य आचार्यश्री ने इसे पूर्ण किया है तथा आगम के मंथन में प्राप्त सुन्दर चिंतनों रूपी यह टीका अपने सरलीकरण व हृदयस्पर्शी चिंतनों के कारण दिग्दिगन्त में जयवंत रहेगी।

(शोधपूर्ण साहित्य)

3. शुद्धोपयोग — **40** — **147**

शुद्धोपयोग विषयक भ्रान्तिओं का जड़ से उन्मूलन करने वाली, लगभग 51 शास्त्रों के अन्वेषणपूर्ण गहन–मनन चिंतन तथा उनके लगभग 315 उद्धरणों से निर्मित आगमोक्त प्रमाणों से युक्त शोधपूर्ण कृति। जिस पर देश के विभिन्न प्रांतों के लगभग 150 से अधिक मूर्धन्य विद्वानों के समीक्षात्मक श्लाघनीय अभिमत प्राप्त हुए। जिसके अध्ययन से विद्वान् जगत को एक सम्यक्दिशा का बोध मिला।

4. सम्यग्दर्शन — **35** — **128**

द्वितीय शोधात्मक कृति, जिसमें सम्यग्दर्शन विषयक अनेकानेक शंका–समाधानों तथा अगमिक और अध्यात्म भाषा के द्वारा सराग–वीतराग, निश्चय– व्यवहार,

सं.	नाम	मूल्य	पृष्ठ
	प्रथमोपशम, द्वितीयोपशम आदि लाक्षाणिक भेद-प्रभेद, उत्पत्ति आदि गहन विषयों का लगभग 54 आगमोपदिष्ट शास्त्रों के 322 उद्धरणों से पूरित, मिथ्यात्वांधकार का विनाश कर आत्मरुचि रूप सम्यग्दर्शन को उत्पन्न करने वाली अमूल्य कृति है।		
5.	**आगम चक्खू साहू** दिगम्बर मुनियों की समाचार विधि, आर्यिका चर्या, पात्रभक्ति तथा यज्ञोपवीत संबंधी विषयों पर देश, समाज-संघ की पंथ-परम्परा के हठाग्रह से दूर, लगभग 50 ग्रंथों के सूक्ष्म अध्ययन से निकाले गए 257 उद्धरणों से परिपूर्ण संघस्थ साधु-साध्वियों की तत्त्ववार्ता रूप में एक अतिशयवान आगमोक्त शोधपूर्ण कृति।	22	135
6.	**सल्लेखना से समाधि** आराधना, समाधि सल्लेखना विषयक लगभग 168 विषयों पर, भगवती आराधना आदि 25 शास्त्रों के खोजपूर्ण, अनेकानेक उद्धरणों से युक्त, मृत्यु महोत्सव की कला सिखाने वाली शोधपूर्ण अद्‌भुत कृति। जिसमें क्षपक निर्यापकों तथा निर्यापकाचार्य की क्रियाविधि, सल्लेखना-आत्मघात नहीं आदि भ्रान्तियों का निर्सन करने वाली सुन्दर यह प्रस्तुत कृति अति प्रशंसनीय है।	30	178
7.	**संत साधना के प्रेरक प्रसंग** साधना काल के दौर में गुजरते महत्त्वपूर्ण निज अनुभवों, प्रसंगों का लेखन। जिसमें साधक के पूर्व व पश्चात् परिणति, आत्मप्रभावना से दूर, धर्मप्रभावना ख्याति की भावना क्यों ? कैसे होती है ? इन सब वास्तविक स्थितियों का अनुभव परख लेखन है।	20	80
8.	**परम दिगम्बर जैन मुनि** **(हिन्दी, मराठी, कन्नड़, तमिल, अंग्रेजी)** सम्प्रति काल में दक्षिण भारत जैसे देश के अनजान लोगों के लिए दिगम्बर संतों की अचल साधना-आराधना, परिचर्या, गरिमा-महिमा तथा उनके सम्मान व निंदा के फलों को परिज्ञान हेतु लगभग 68 ग्रंथों के तथा अन्य पत्रकों के आलेखन कर अथाह कठोर प्रयास से इस शोधपूर्ण कृति का सृजन हुआ, जिसमें हिन्दू, इस्लाम, सिक्ख, बौद्ध आदि धर्मों ने भी दिगम्बर मुनियों का समय-समय पर सम्मान किया है इसका विवरण है।	45	192
9.	**सर्वोदयी दिगम्बर जैनधर्म** यह कृति जैनधर्म का गागर में सागरवत् संक्षिप्त परिचय के साथ ग्रंथों-पुराणों-कुरानों, उपनिषदों, इतिहास के पन्नों, प्राचीन-पुरातत्व विभागों, दर्शनों तथा विदेशी विद्वानों की दृष्टि में भी शाश्वत दिगम्बर जैनधर्म का सार्वभौमिक सम्माननीय अस्तित्व को उजागर करने वाली अलसक दीपस्तंभ सदृश। पू. गुरुवर द्वारा लिखित धर्म की असीम व्याख्याओं से परिपूर्ण है।	30	88
10.	**तीर्थंकर दिव्य-दर्शन** हमारे तीर्थंकर भगवंतों के जीवन चरित्र से परिचित/अवगत कराने वाली लगभग 200 प्रश्नों के समाधान एवं त्रेसठ शलाका पुरुषों के विषय में विस्तृत अनेक ग्रंथों के प्रमाणों से पूर्ण, जानकारी के साथ यह एक अनमोल, सारगर्भित कृति है।	30	178
11.	**तीर्थंकर दर्शन** तीर्थंकर दिव्य-दर्शन पर ही आधारित 24 तीर्थंकरों के परिचय से परिपूर्ण लघु कृति है।		

सं.	नाम	मूल्य	पृष्ठ
12.	**व्यसन विचार** व्यसन मुक्ति के मार्ग का दिग्दर्श कराने वाली हिन्दी, मराठी, इंग्लिश भाषाओं में रूपान्तरित सामाजिक उत्थान की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण कृति है जिसमें व्यसन से होने वाली हानियों तथा उनमें प्रसिद्ध व्यक्तियों की भयानक स्थितियों का चित्रण, आगम–विज्ञान तथा महापुरुषों के दृष्टिकोण से प्रस्तुत किया गया है।	25	102
13.	**फूल नहीं, है काँटें** सप्त व्यसनों का ज्ञान, त्याग से लाभ–हानि, संबंधित कथाओं का विवरण।		50
14.	**संस्कार सुरभि (हिन्दी, गुजराती)** बालकों के लौकिक विकास के साथ नैतिक विकास में सहायक एक सुरभिवत् बेहतरीन कृति है जिसमें माता–पिता एवं बालकों के जीवनोपयोगी दैनिक चर्या तथा कर्त्तव्यों, संस्कारों का सम्यक् प्रकार से बोध कराया गया है।	18	87
15.	**जिनेन्द्र दर्शन–जिनेन्द्र पूजन** एक श्रावकोचित् प्रभावक कृति, जिसमें सद्गृहस्थ के आवश्यक करने योग्य भगवान के दर्शन–पूजन की सागोपांग विधि का वर्णन है।	10	58
16.	**आध्यात्मिक शंका–समाधान** शोधात्मक/खोजात्मक आयामों से परिपूर्ण, पक्षव्यामोह, दुराग्रह से दूर आगमोक्त अध्यात्म में प्रवेश कराने वाली एक लघु कुंजीवत्, साधनोपयोगी शोधपूर्ण कृति है। जिसमें नय, निश्चयनय, व्यवहारनय आदि 12 विषयों का पूर्ण विवरण 358 प्रश्नों के समाधान रूप में लगभग 42 शास्त्रों के अन्वेषण मनन से किया गया है।	30	140
17.	**आध्यात्मिक तत्त्व–चर्चा** आगम और अध्यात्म के विवाद ग्रस्त विषयों पर तुलनात्मक अध्ययन रूप में एक वार्ता। जिसमें मुख्यतः मोक्षमार्ग विषयक 17, सम्यक्त्व विषयक 45, स्वात्मानुभूति विषयक 56–62 तथा स्वरूपाचरण विषयक 63–83, शंकाओं का समाधान काल्पनिक युक्ति से दूर, आगम प्रमाणों से किया गया है। इस कृति का उद्देश्य शिष्यों तथा साधकों को ठोस ज्ञान से परिपक्व कराना है।	15	84
	(चिंतन साहित्य)		
18.	**चैतन्य चिंतन** **भाग–1**	15	100
	भाग–2	15	100
	भाग–3	15	104
	साधकोचित् पू. गुरुवर के निज आत्मचिंतन की सरिता से उद्भूत हुए रत्नों सम चिंतवनों का लेखन।		
	(बालोपयोगी साहित्य)		
19.	**बाल विज्ञान** **भाग–1**	10	37
	भाग–2	10	56
	भाग–3	10	56
	भाग–4	10	84

सं.	नाम		मूल्य	पृष्ठ
	धर्म परिज्ञान के प्रथम सोपान के रूप में बालकों तथा युवाओं के लिए प्रारम्भिक क्रमशः जानकारी से परिपूर्ण कृति है। जो हिन्दी, इंग्लिश, मराठी, कन्नड़, गुजराती भाषा में रूपान्तरित हो जन-जन में लोकप्रिय है।			
20.	**कर्म विज्ञान**	**भाग-1**		**40**
		भाग-2		**44**
		भाग-3		**44**
	हिन्दी, इंग्लिश भाषा में उपलब्ध, करणानुयोग में प्रवेश करने के इच्छुक स्वाध्याय प्रेमियों के लिए यह प्रथम पायरी है, जिसमें कर्म सिद्धांत विषयक प्रारम्भिक विषयों का सरल ढंग से लेखन किया गया है।			
	(कथा साहित्य)			
21.	**नैतिक कथा मंजूषा**	**भाग-1**		**85**
		भाग-2		**122**
		भाग-3		
	आगमोक्त रुचिकर कथाओं का जनमानस में परिज्ञान कराने के लिए विभिन्न शास्त्रों से संकलित कर शिक्षाप्रद-बोधपूर्ण रूप में लिखी गई कथाओं का संग्रह। जिससे समाज में नैतिकता-धार्मिकता का विकास हो सके।			
	(अनुवाद साहित्य)			
22.	**वारसाणुवेक्खा**			**144**
	आचार्यश्री कुन्दकुन्द स्वामी रचित वारसाणुवेक्खा ग्रंथ का सरल सुबोध अनुवाद।			
23.	**परमरत्नार्चना संग्रह**		**20**	**129**
	विनयपाठ से अर्घावली, विसर्जन पाठ तक सम्पूर्ण पूजाविधि का अर्थ-अनुवाद।			
24.	**सामायिक पाठ (गुजराती)**		**10**	**48**
	सम्पूर्ण आद्योपांत सामायिक विधि एवं सामायिक पाठ का अन्वयार्थ तथा भावार्थ।			
	(पद्य साहित्य)			
25.	**भावों के विशुद्ध क्षण**		**15**	**104**
	साधना काल के अमूल्य विशुद्ध, अनुभवों-क्षणों का पद्य रचना लेखन।			
26.	**मुक्ताञ्जलि - भाग-1, 2**			
	अनेकानेक शिक्षापूर्ण मुक्तकों के लेखन का संग्रह।			
27.	**नवदेवता निर्वाण क्षेत्र पूजा**			
	पू. गुरुवर द्वारा रचित नवदेवता निर्वाण क्षेत्र पूजा।			
	(संकलित/सम्पादित साहित्य)			
28.	**साधना से समाधि**		**20**	**123**
	समाधि सल्लेखना के समय महत्त्वपूर्ण हिन्दी पाठ-स्तुतियों का संकलन।			
29.	**विमल नित्य पाठावली**		**25**	**200**
	जिनेन्द्र पूजन, 150 व्रतों की पूजन एवं विधि, सामायिक, प्रतिक्रमण आदि विषयों का संक्षिप्त रूप से संकलन।			

सं.	नाम	मूल्य	पृष्ठ
30.	**आराधना** श्रमणों व श्रावकों द्वारा किये जाने वाले नित्योपयोगी संस्कृत के पाठों का संकलन।	35	534
31.	**सुभाषित सहस्रं** नैतिक व धार्मिक मर्मों से परिपूर्ण सहस्र सुभाषित गाथाओं का संकलन।	40	336
32.	**आप्त अर्चना** जिनेन्द्र पूजन –पाठ आदि का संकलन।		
33.	**मानतुंग की अमर भक्ति** (सचित्र भक्तामर) भक्तामर स्तोत्र के काव्यों, यंत्रों–मंत्रों के सचित्र सुन्दर चित्रण।	65	100
34.	**साधना** जनोपयोगी हिन्दी भाषा के अनेक पाठों का संकलन।	30	288
35.	**अनुप्रेक्षा** आत्मचिन्तनोपयोगी अनित्यादि बारह भावनाओं की गाथाओं का अर्थ सहित संकलन।	10	40
36.	**जिनागम दीप** आगम के नित्य पठनीय 25 ग्रन्थों का अर्थ सहित–सम्पादन।	251	728
37.	**सम्मेदशिखर विधान** तीर्थराज सम्मेदशिखर जी विधान का संकलन।		
38.	**चारित्र शुद्धि व्रत** चारित्र शुद्धि व्रत की पूजा, जाप तथा कथादि की जानकारी का संकलन।	25	140
39.	**करुणामूर्ति संत** करुणा अवतारी प.पू. आचार्यश्री 108 विमल सागर जी महाराज की जीवनी का संकलन।		341
40.	**तपस्वी सम्राट** तपस्वी सम्राट प.पू. आचार्यश्री 108 सन्मति सागर जी महाराज के जीवन का लेखन।		72
41.	**यज्ञोपवीत विधि** यज्ञोपवीत संस्कार विधि की उपयोगिता, महिमा तथा ग्रहण विधि का संकलन।		
42.	**साधना के सोपान**		
43.	**पद्म पुराण प्रश्नोत्तरी**		
	(एकांकी/नाटक साहित्य)		
44.	**सत्यमित्र–सत्यदृष्टि** पू. गुरुवर द्वारा रचित पात्रों की मुख्यता से नाटक का लेखन।		
45.	**प्रद्युम्नहरण** प्रद्युम्नहरण' नामक नाटक का लेखन, जिसमें पात्रों के पाठों का अलग–अलग विवरण है।		
	(पू. आचार्यश्री पर आधारित साहित्य)		
46.	**विरागाभिवंदन अभिनंदन** सर्वाधिक पृष्ठों वाला, विभिन्न स्तरीय साधकों, भक्तगणों आदि के पू. गुरुवर की आलौकिक व्यक्तित्व छटा पर हृदयोद्गारों का संकलित, सचित्र/राष्ट्रीय रजत मुनि दीक्षा वर्ष की बेला में प्रकाशित वृहद् दर्पण जीवनी।		

सं.	नाम	मूल्य	पृष्ठ
47.	**निस्पृही संत** **भाग–1** **भाग–2** जन्म से सम्प्रतिकाल तक के सम्पूर्ण जीवन–चरित्र का साहित्यिक सुबोध लेखन।	60	243
48.	**(अ) विरागसेतु (महाकाव्य) भाग–1 (हिन्दी, गुजराती, प्राकृत)** **(ब) विरागसेतु (महाकाव्य) भाग–2 (हिन्दी, प्राकृत)** प्राकृत भाषा की पद्यरचना से गुंथित पू. गुरुवर के आदर्शमयी जीवन पर महाकाव्यमयी रचना।	100	344
49.	**संत काव्य की परम्परा में आचार्य विराग सागर** पू. गुरुवर के व्यक्तित्व व कृतित्व पर डी. लिट् उपाधि से पुरस्कृत डॉ. लोकेश खरे की एक अद्‌भुत शोधपूर्ण कृति।	65	175
50.	**कमल से महाकमल** अरविन्द से आचार्य विराग सागर तक की जीवन–यात्रा का लघु प्रभावक लेखन।		
51.	**घटनायें ये जीवन की** सम्पूर्ण जीवन में घटी अनेकानेक रोचक महत्त्वपूर्ण घटनाओं का लेखन।	80	336
52.	**दिगम्बरत्व के चितेरे** सचित्र, बालगोपाल को आकर्षित करने वाला कॉमिक्स रूप में जीवन चरित्र।		150
53.	**विराग सिन्धु की उर्मिया** पू. गुरुवर की अनुपम जीवन पर आधारित सरस–सरल काव्यरचना।	15	91
54.	**विराग वाटिका** पू. गुरुवर द्वारा दीक्षित शिष्य–सुमनों का सविस्तृत सचित्र परिचय।	41	154
55.	**भक्ति की झंकार** गुरुभक्ति से पूरित धार्मिक बहुताधिक भजन–गीतों का संग्रह	25	158
	(प्रवचन साहित्य) (पू. गुरुवर के प्रवचन सहित)		
56.	**धर्म पीयूष** दशलक्षण पर्व में उत्तमक्षमादि दस धर्मों पर मुखरित पीयूष वाणी का संकलन।	30	136
57.	**ऐसे चलो मिलेगी राह** दिशाविहीन जीवन को सम्यक् दिशा–बोध कराने वाले मार्मिक प्रवचनों का संकलन।	40	180
58.	**दूर नहीं है मंजिल** निज ध्येय का बोध करा मंजिल तक पहुँचाने (मोक्ष) वाले सारगर्भित प्रवचनों का संकलन।	30	227
59.	**उड़ रे पंछी** पू. गुरुवर के मुखारविंद से गुंजित प्रवचनों का संकलन।		
60.	**तीर्थंकर वर्धमान** भगवान महावीर स्वामी का विभिन्न दृष्टियों एवं आगम के परिप्रेक्ष्य में जीवन परिचय।	15	80
61.	**पहले देव–पूजा, फिर काम दूजा** जिनेन्द्र प्रभु की पूजा, अर्चनाविधि के महत्त्व को उजागर करने वाले प्रवचनों का संकलन।	25	180

सं.	नाम	मूल्य	पृष्ठ
62.	**तीर्थंकर ऐसे बनो** तीर्थंकर प्रकृति बंध में हेतु सोलहकारण भावनाओं का संकलित सविस्तृत प्रवचन।	60	157
63.	**तट की ओर** हृदयस्पर्शी जीवन की सच्चाई का दिग्दर्श कराने वाले प्रवचनों का संकलन।		54
64.	**सिर्फ दो प्रवचन** महत्त्वपूर्ण विशेष प्रवचनों का संकलन।		10
65.	**इष्टोपदेश** अध्यात्मप्रेमियों के आध्यात्मिकता के विकास में सहायक इष्टोपदेश ग्रंथ पर संकलित प्रवचन।		
66.	**मानतुंग की अमरभक्ति** भक्तामर स्तोत्र पर भक्ति से ओत्-प्रोत्, भावभीने प्रवचनों का संकलन।	150	241
67.	**कल्याणक महोत्सव** अनेकानेक स्थानों पर हुए गर्भादि कल्याणकों के विशेष प्रवचनों का संग्रहीकरण।	20	104
68.	**दान तीर्थ** आहारदान की आद्योपांत महिमा, विधि, गुण, दोष, पात्र, फल आदि का वर्णन।	20	88
69.	**धर्म के दश सोपान** मूडबद्री में हुए दश धर्मों के प्रवचनों का सरस-संक्षिप्त संकलन।	20	105
70.	**जीवों पर दया करो, शुद्ध शाकाहार करो** अहिंसा शाकाहार सम्मेलनों में हुए आगमिक व वैज्ञानिक तुलनात्मक प्रवचनों का संकलन।	20	106
71.	**बुराईयाँ ही जेल, अच्छाईयाँ ही मुक्ति** विभिन्न जेलों में हुए, अपराध बोध कराने वाले मार्मिक प्रवचनों का संकलन।	10	45
72.	**प्रवचन वर्षा** महत्त्वपूर्ण वर्षभर के जैन पर्वों पर होने वाले उपदेशामृत का संकलन।	15	121
73.	**कर्तव्य मेव कर्तव्य** श्रावकों के षडावश्यक कर्त्तव्यों पर आधारित हृदय उद्गारों का संकलन।	25	120
74.	**श्रद्धा प्रसून** मोक्षमहल की प्रथम सीढ़ी सम्यग्दर्शन के आठ अंगों के प्रवचनों का संकलन।	25	128
75.	**मोक्ष की राह** मोक्षपथिकों को मोक्षपथ का पाथेय प्रदान करने रूप प्रवचनों का संकलन।		125
76.	**विरागामृत** पू. गुरुवर की अमृतवाणी से मुखरित अनेक विषयों पर संकलित उद्धरण।		150
77.	**समाधि तंत्र** अध्यात्मरस से परिपूर्ण समाधि ग्रंथ पर हुए सविस्तृत प्रवचनों का संकलन।		
78.	**समयोचित् शिक्षायें** **भाग-1** **भाग-2** **भाग-3** व्यक्तित्व विकास में कारण, समय-2 पर दी गई अमिट शिक्षाओं का संकलन।	20 20 20	105 46 58

सं.	नाम	मूल्य	पृष्ठ
79.	**विराग मंथन** लघु, पर ज्ञान को विकसित करने वाले आकर्षिक उद्धरणों से पूरित कृति।	5	32
80.	**रजत पुष्प** सद्गुणों के विकासादि विषयों से परिपूर्ण जनोपयोगी प्रवचनों का संकलन।	51	184
81.	**कहानी सबसे सुहानी** पूज्य गुरुवर के प्रवचनों में से संकलित मनभावन कहानियों का संकलन।	30	240
82.	**अक्षय निधि** हृदय पर सीधा प्रभाव करने वाले गूढ़ रहस्यात्मक प्रवचनों का संकलन।	10	36
83.	**संस्कार की लहरें** नैतिक तथा धार्मिक सुसंस्कारों की सुरभि से महकित प्रवचनों का संकलन।	20	85
84.	**चलो चले प्रभुदर्शन को** आगमिक तथा वैज्ञानिक तथ्यों के आधार पर प्रभुदर्शन की आद्योपांत विधि रूप प्रवचन।	30	88
85.	**आध्यात्मिक धर्म प्रवचन** दशलक्षण धर्म से संबंधित गाथाओं, कहानियों, मुक्तकों तथा उद्धरणों का विस्तृत प्रवचन संग्रह।		147
86.	**घर–घर की कहानी** पारिवारिक एक–दूसरे सदस्यों के कर्त्तव्यबोध कराने वाले प्रवचनों का संकलन।		103
87.	**वारसाणुवेक्खा प्रवचन**		
88.	**पर्यूषण निधि**		
89.	**पं.पं.विं.अ. 1 : धर्मोपदेशामृतम्**		
90.	**पं.पं.विं.अ. 2 : दानोपदेशम्**		
91.	**पं.पं.विं.अ. 3 : अनित्यपञ्चाशत्**		
92.	**पं.पं.विं.अ. 4–5 : एकत्व सप्ततिः तथा यति भावनाष्टकम्**		
93.	**पं.पं.विं.अ. 6 : उपासक संस्कारः**		
94.	**पं.पं.विं.अ. 7 : देशव्रतोद्योतनम्**		
95.	**आचार्य विरागसागर साहित्य दर्शन**		
96.	**मेरी भावना प्रवचन**		

प्राप्ति स्थानः

1. **श्री सम्यग्ज्ञान दिगम्बर जैन विराग विद्यापीठ**
   बताशा बाजार, भिण्ड (म.प्र.)
2. **आचार्य विराग सागर विद्यापीठ** (बी.एड. कॉलेज)
   विराग भवन, पुष्प विहार कॉलोनी, बीना जिला–सागर (म.प्र.)
3. **विराग फाउण्डेशन**
   c/o श्री अरुण कोटड़िया, II-A, विक्रर नगर सोसायटी, उस्मानपुरा
   अहमदाबाद – 380018 (गुज.)
4. **श्री भूपेन्द्र शांतिलाल शाह**
   12-B, वर्धमान सोसायटी, डेरी रोड़, मेहसाना–2 (गुज.)